PACK 365 (TM)
PACK 365
PACK 365 (TM)

किसानों के लिए प्रौढ़ शिक्षा

जगदीश चन्द्र माथुर

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
१७-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ,
१७-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग,
नई दिल्ली-११०००२

१९७७

पुस्तक शृङ्खला : ११४

मूल्य : 15.00 रुपये

मुद्रक :
कैक्स्टन प्रेस, प्रा० लि०,
रानी झांसी रोड,
नई दिल्ली-११००५५

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ
१. हरित क्रान्ति में किसानों के लिए प्रौढ़ शिक्षा	१
२. नये उपागम के परिणाम	१५
३. किसान प्रशिक्षण पद्धति	३०
४. व्यावसायोपयोगी साक्षरता (इसके लाभ तथा अभिप्राय)	४६
५. किसानों में सूचना तथा संचार सेवा	७४
६. जन शिक्षा उपकरण--साक्षरता प्रसार के सहायक	१०४
७. प्रशिक्षक तथा उनका प्रशिक्षण	१२५
८. किसान महिलायें और युवक	१५६
९. अनुसंधान और विश्वविद्यालयों की भूमिका	१८१
१०. किसानों के लिए एक सार्वभौमिक विश्वविद्यालय	२३०
११. स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका	२४१
१२. भारत में किसान की शिक्षा की वृद्धि	२६०

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक में, विकाशसील देशों के शिक्षानीति निर्धायकों, प्रशासकों, शिक्षकों तथा प्रौढ़ शिक्षाविदों को कृषि की वर्तमान उन्नति की सार्थकता, और उस संदर्भ में किसानों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता, सम्भावनाओं विधियों एवं साधनों से अवगत कराने का प्रयास किया गया है।

पश्चिमी देशों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप प्रौढ़ शिक्षा प्रसार समाज का उत्तरदायित्व बन गया। श्रमिकों की दीन दशा, उनके न्यून वेतन और दीन दशा में उनके जीवनयापन और पिछड़ेपन का मूल कारण उनकी निरक्षरता, अज्ञानता और तुच्छ व्यवहार ही था। इसी आधार पर इंगलैंड और अन्य पश्चिमी देशों के विद्वान समाज सेवी लोगों में उनके प्रति सेवा भावना जाग्रत हुई और श्रमिक शिक्षा योजना का प्रारम्भ हुआ। अनेक विश्वविद्यालय और बाद में कई राज्य इस योजना में शामिल हो गये।

पूर्वी योरूप में जब औद्योगिक श्रमिकों ने साम्यवादी क्रान्ति का आन्दोलन छेड़ा तो प्रौढ़ श्रमिकों की शिक्षा साम्यवादी समाज का मुख्य कार्यक्रम बन गया। खेतीहर मजदूरों की ओर से तो कार्यकर्त्ताओं का ध्यान इसके बहुत बाद में गया।

पश्चिमी जनतन्त्रीय देशों में उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप धन-धान्य की भरमार और कल्याणकारी राज्य की भावना के साथ-साथ प्राथमिक और उच्च शिक्षा की प्रगति हुई। और इसी कारण उन देशों की स्थिति बीसवीं शताब्दी के आगमन तक उन्नतशील हो गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि शताब्दि के मध्य तक श्रमिक शिक्षा की बजाय व्यावसायिक लोगों की आजीवन सतत शिक्षा पर बल दिया जाने लगा ताकि उनमें कला ज्ञान का विकास होता

रहे और तीव्र गति से विकसित होने वाले मशीनी उद्योग से सम्बन्धित समाज में उनकी सूझबूझ और मानसिक प्रगति का विस्तृत विकास हो सके ।

विकासशील जौर पिछड़े देशों का इतिहास तो पश्चिमी देशों की प्रगति की होड़ का परिणाम है । इन देशों की हलचल में प्रौढ़ शिक्षा और आर्थिक उन्नति के आपसी सम्बन्ध को समझ लेने का कोई प्रमाण नहीं है । पश्चिमी शक्तियों के अधीन होने के कारण इन पिछड़े देशों के कुछ विद्वान लोगों ने यह तो समझ लिया कि जन साधारण में परिस्थितियों को समझने की चेतनता होनी चाहिए । भारत में, १९३६ के आसपास के जन शिक्षा आन्दोलन के नेताओं ने आर्थिक प्रगति से शिक्षा के सम्बन्ध की कोई बात नहीं सोची थी । न ही ऐसा कोई विचार उनके मन में आया था ।

इन देशों में से अधिकतर देश कृषि प्रधान हैं । बीसवीं शताब्दि के मध्य तक इन देशों में कृषि में कोई प्रगति नहीं हुई । सब काम परम्परागत रूप से चलता रहा । कृषक लोग शिक्षित हों अथवा निरक्षर, कृषि क्षेत्र में कहीं भी कोई प्रगति दिखाई नहीं दी, ऐसी दशा में कुछ शिक्षा शास्त्रियों के मन में कृषि को प्रौढ़ शिक्षा से जोड़ देने का विचार स्वाभाविक ही था । इसलिए आधारभूत अथवा समाज शिक्षा नाम की योजनाओं का उद्देश्य साक्षरता और ग्रामीण जीवन को उन्नतिशील बनाने की ज्ञान चर्चा ही था ।

इसका परिणाम तो स्पष्ट ही है । पुराने उपनिवेशों अथवा पराधीन क्षेत्रों में, जिनमें अधिक जनसंख्या थी, प्रौढ़ सामुदायिक शिक्षा अथवा समाज शिक्षा योजनाओं को पिछले तीन दशकों में शायद ही कोई लाभ हुआ हो । स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलन में भी प्रौढ़ शिक्षा आन्नोलन को कोई स्थान न मिला । कभीं कभी किसी समझदार तानाशाह अथवा शहनशाह ने अल्पकालीन क्षेत्रीय आन्दोलन चलाने का प्रयत्न अदश्य किया । परन्तु अधिकतर विकासशील और गरीब देशों में राजनीतिज्ञों का ध्यान केवल प्राथमिक शिक्षा की ओर ही गया जिसमें काफी प्रगति हुई है । परन्तु कमाई करने वाली आयुवर्ग १४ से ४५ वर्ष तक की जनता के लिए समूचे तौर पर कोई शिक्षण योजना नहीं चलाई गई और स्वास्थ्य सुधार के कार्यक्रमों से इस आयुवर्ग की जनसंख्या और भो अधिक हो गई इसलिए अन्तिम स्थिति निराशाजनक ही रही । साथ ही इन सभी देशों में आर्थिक प्रगति पर शिक्षा का कोई भी प्रमुख प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दिया ।

कृषि क्षेत्र की हाल की उन्नति प्रौढ़ शिक्षा के लिए विशेषकर शिक्षा-नीतिज्ञों, व्यवस्थापकों तथा शिक्षकों के लिए साधारणतया एक चुनौती है। उनके सामने दो ही रास्ते हैं, एक तो यह है कि वे कृषि के इस विकास कार्य-क्रम को केवल वैज्ञानिक प्रयोग समझ कर वैज्ञानिकों और कृषि विशेषज्ञों पर ही यह दायित्व छोड़ दें कि वे ही इस सब परिवर्तन और पद्धति की जानकारी किसानों को दें और उसको कार्य रूप देने का काम किसानों की अपनी सूझ-बूझ और उत्साह पर छोड़ दें। दूसरे यह कि इस स्वर्ण अवसर का पूरा लाभ उठाकर परिस्थितियों के अनुसार किसान प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम अपनायें जिससे शिक्षा और आर्थिक उन्नति के बीच की खाई पाटी जा सके। इसका एक और लाभ यह होगा कि इस शिक्षण आन्दोलन के द्वारा विकसित खेती की नई जानकारी व्यापक रूप से छोटे से छोटे किसानों तथा भूमिहीन खेतीहर मजदूरों तक पहुंच सकेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने दूसरे तथ्य पर ही रोशनी डाली है। गत २० वर्षों से प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्रों में और पिछले ७ वर्षों से कृषि प्रशासन एवं विस्तार क्षेत्र में कार्य करते रहने के बाद मैंने सोचा कि उन्नत खेती के इस बढ़ते कार्यक्रम के समय भी यदि प्रौढ़ शिक्षा पर ध्यान न दिया गया तो दुर्भाग्य पूर्ण होगा। यदि उद्देश्य केवल प्रशिक्षकों के लिए कोई कार्यक्रम बनाना होता तो राष्ट्र की प्रगति पर शायद ही कोई प्रभाव होता। सचाई तो यह है कि यदि शिक्षण कार्यक्रम इस विकास आन्दोलन का केन्द्रीय बिन्दु नहीं होगा तो कृषि प्रगति आन्दोलन बीच में ही बिखर कर असफल रह जायेगा। कुछ देशों में तो ऐसी स्थिति दिखाई भी देने लगी है। इसलिये शिक्षाविदों, शिक्षकों और प्रशिक्षकों को समय रहते कृषि क्रान्ति की सफलता में अपने कर्त्तव्य और योगदान को समझ लेना उचित होगा।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मैं पिछड़े क्षेत्रों में उन्नत खेती के आधुनिकीकरण में विशेषज्ञों तथा विस्तार कार्यकर्त्ताओं की सेवाओं से अनभिज्ञ हूं। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक उन सबके लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। उनके मार्गदर्शन के लिए भी विकासशील देशों की पृष्ठभूमि के संदर्भ में बहुत ही कम साहित्य उपलब्ध है। यह ठीक है कि भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने विषय का बहुत गहराई से अध्ययन करके महत्वपूर्ण परन्तु गूढ़ साहित्य प्रकाशित किया है लेकिन उसे देखकर विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता स्पष्ट तौर से नहीं समझ पाता कि उसे क्या करना है।

मेरे विचार से प्रौढ़ शिक्षक तथा कृषि एवं विस्तार सेवा विशेषज्ञों को दोनों की ही परिस्थितियों को समझने तथा निर्धपरण करने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक सम्भवतया इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोगी होगी और आपसी सम्बन्धों एवं दायित्वों की जानकारी दोनों को दे सकेगी।

मुझे इन दोनों क्षेत्रों का निजी अनुभव होने के कारण मैं दोनों विभागों के कार्यकर्त्ताओं की विचार धारा से परिचित हूं और उनकी आवश्यकताओं और सम्मिलित दायित्वों से भी। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में दी गई पाठ्य सामग्री प्रत्यक्ष अवलोकन, व्यवस्था सम्बन्धी निजी अनुभव तथा जन साधारण, अधिकारी वर्ग और कार्यकर्त्ता सभी से बिचार विमर्श पर आधारित रही है जो साधारणतया ऐसी दूसरी पुस्तकों में नहीं होती। जहां जहां किन्हीं सिद्धान्तों और निष्कर्षों का उल्लेख किया गया है, वो सब मेरे निजी अवलोकन और अनुभव के आधार पर किया गया है केवल मात्र गूढ़ पुस्तकों तथा विवरणों को पढ़कर उनके आधार पर नहीं। उन सब सिद्धान्तों और निष्कर्षों के परिपादन का दायित्व मेरा है। इसमें भारतीय सरकार का कोई दायित्व या नीति नहीं है। यह ठीक है कि इस सारे अवलोकन, अध्ययन और विचारविमर्श की सुविधा मुझे भारतीय सरकार का सेवक होने के नाते ही अपने कर्त्तव्य पालन के साथ साथ ही मिली।

किसी तथ्य को भली प्रकार समझने समझाने के लिए उसकी जानकारी को बार बार दोहराया जाना अत्यन्त उपयोगी होता है, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने कुछ विषयों को भिन्न भिन्न अध्यायों में बार बार दोहराया है। 'श्रम केन्द्रित शिक्षा", "शिक्षक का व्यापक अभिप्राय",' 'छोटे समूहों का महत्व", आदि अनेक ऐसी बातें है जिनका महत्व प्रौढ़ किसान शिक्षण के कार्यकर्त्ताओं को भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है। इसी आधार पर ऐसे विषयों का बार बार परिस्थिति अनुसार स्पष्टी करण किया गया है।

विचारों और सत्यों को मैंने बड़ी सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मेरा उद्देश्य उन साधारण लोगों से बातचीत करके तथ्यों को उन्हें समझाना है जो किसी भी रुप में प्रौढ़ किसान के शिक्षण से सम्बन्धित हों। इस कार्य के लिए बड़े विद्वता पूर्ण गूढ़ साहित्य को आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़कर जानकारी प्राप्त कर मेरे विचारों से यदि विषय सम्बन्धित कार्यकर्त्ता लाभान्वित हो सकें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

'कृषि विभाग के विस्तार सेवा निदेशालय के डाक्टर टी० सी० राय का मैं बहुत आभारी हूं। उनके सहयोग से ही मैं कुछ फोटोग्राफ्स और मानचित्रों का उपयोग कर सका हूं। भारतीय जापानी और भारतीय जर्मन प्रायोजनाओं के विशेषज्ञों का भी मैं उनके सहयोग के लिये बहुत आभारी हूं। श्री एन० पैरूमल तथा श्री जे० एस० शर्मा ने भी मुझे बड़ा उपयोगी परामर्श दिया है। मैं उन सबका आभारी हूं।

नई दिल्ली
१५ अगस्त, १६७२

जगदीश चन्द्र माथुर

अध्याय १

हरित क्रान्ति में किसानों के लिए प्रौढ़ शिक्षा

हरित क्रान्ति शब्द इन दिनों बड़ा लोकप्रिय हो गया है, परन्तु भारत तथा अन्य कुछ विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र के वर्तमान परिवर्तनों को अभी से "हरित क्रान्ति" का नाम देना कुछ असामयिक और समयपूर्व जान पड़ता है। यह परिवर्तन क्रान्ति तो अवश्य है, परन्तु 'हरित' शब्द का जो अभिप्राय है, उसके अनुसार इसके परिणाम जितने विस्तृत और स्थायी होने चाहियें, उतने अभी नहीं हैं। इसलिए हमारे सामने जो प्रश्न विचाराधीन है, उसके लिए यह मालूम करना ठीक होगा कि प्रौढ़ शिक्षा द्वारा कहां तक कृषि के वर्तमान परिवर्तनों को विस्तृत, दीर्घ एवं स्थायी बनाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, हमें यह देखना चाहिए कि प्रौढ़ शिक्षा कृषि विकास की वर्तमान स्थिति में पहले की अपेक्षा अब अधिक महत्वपूर्ण क्यों है।

कृषि अन्वेषी वैज्ञानिकों द्वारा बीजों के सुधार का सफल प्रयास कृषि विकास में नये परिवर्तनों की पहली सीढ़ी थी। बीज सुधार के पश्चात् भारतीय परिस्थितियों में अनाज की कुछ विदेशी बौनी जातियों की अनुकूलता पर जाँच की गई। इन जातियों की दो विशेषताएं हैं। एक तो इनसे उपज अधिक होती है (देसी जातियों की अपेक्षा ४ से ५ गुनी तक) और दूसरे इनके तने मजबूत होते हैं। (इससे पौधे झुककर गिरते नहीं और यों छितरने से होने वाली अनाज की भारी हानि रुक जाती है।)

क्रान्ति से सम्बन्धित अन्वेषी वैज्ञानिकों को एक और महत्वपूर्ण सफलता का भी श्रेय है। अधिक उपज देने वाले बीजों के अति-

रिक्त उन्होंने अन्न तथा दालों, दोनों की ही ऐसी जातियां भी खोज निकाली, जो अधिक उपज तो देती हैं परन्तु इसके साथ-साथ पकने में समय भी कम लेती हैं। उदाहरणार्थ, १८० दिन में पकने वाले धान के बीज की बजाय १०० दिन में पकने वाला धान, तीन से चार महिने में पक जाने वाली मूंग, जल्दी पकने वाली ईख और थोड़े समय में ही तैयार हो जाने वाले गेहूं।

इस खोज के कारण किसानों की फसल सम्बन्धी संभावनाएं ही बदल गई हैं। अब वे एक ही भूमि से दो या तीन से चार तक फसलें देने का प्रयत्न करते हैं। कई फसलें एक साथ मिलाकर बोने अर्थात् मिली-जुली फसल बोने के बजाय अब बारी से बोकर फसल उगाने का बहुफसलीय रिवाज चल पड़ा है। इस नये बुआई क्रम के कारण भूमि के छोटे भागों की उपजाऊ शक्ति भी बहुत बढ़ गई है। संयोग से अधिक ऊपज देने वाले और थोड़े समय में पकने वाले बीजों की यह खोज ऐसे समय में हुई जब कि अनाज की कीमतें किसान के अनुकूल थीं। इसलिए कीमतों की अनुकूलता ने खोजों के परिणामों को शीघ्रता से कार्य रूप दिलवाने में बड़ा प्रोत्साहन दिया।

कृषि अनुसंधान तथा विकास की यह पहली सीढ़ी थी। इसने किसानों में उपज के सहायक उन साधनों की जानकारी की जिज्ञासा पैदा कर दी जो बीजों की उन्नत किस्मों में पहले इतने उपयोगी तथा महत्वपूर्ण नहीं थे। यह सहायक साधन हैं :— नलकूप द्वारा भूमि के अन्दर के पानी का प्रयोग, रासायनिक खाद एवं कीटनाशक औषधियाँ। किसानों को इन तीनों साधनों का पता तो पहले भी था, किन्तु वास्तविक परिवर्तन उनके सहयोग की संभावनाओं के कारण आया। क्योंकि अधिक उपज देने वाले उन्नत बीजों की सफलता अधिक खाद पर निर्भर करती है और अधिक खाद के लिए अधिक पानी की जरूरत है और अधिक खाद और पानी के प्रयोग के फलस्वरूप फसलें जब बढ़ेंगी तो उन्हें रोगों से

सुरक्षित रखने के लिए कीटनाशक दवाईयों की जरूरत है।

१९६५-६६ और १९६६-६७ के देश व्यापी सूखे ने भी भूमि के नीचे के पानी के प्रयोग का महत्व बढ़ा दिया। सूखे का यह व्यापक और भयानक प्रकोप एक तरह से प्रकृति का गुप्त आशीर्वाद रहा क्योंकि इसके कारण अनेकानेक किसानों ने जल प्राप्ति के नये साधनों को, तथा सुधरे बीजों और नये खादों को काम में लिया और इस प्रकार वैज्ञानिक अन्वेषण के सभी साधन जो पहले ही खोज लिए गये थे, प्रयोगों में आ गये।

आधुनिकता का तीसरा स्तर पहली दो सफलताओं का ही फल है परन्तु है बहुत महत्वपूर्ण। भारी और निश्चित उपज के कारण किसान खेती के साधनों, बीजों और खाद आदि पर धन लगाने में सँकुचित न रहा। तीन से पांच एकड़ के छोटे खेतों में भी धन लगाना प्रेरणा शून्य न रहा। इसीलिए छोटे किसानों को भी फसल के साधनों पर पैसा लगाकर खेती करना लाभदायक दिखाई देने लगा। इसके कारण किसानों को रुपया उधार लेने की आवश्यकता बढ़ गई। फलस्वरूप पुरानी सहकारी संस्थाएं तो एक दम चैतन्य हो गई, इनके अतिरिक्त दूसरी संस्थाएं भी अर्थात् औद्योगिक बैंक आदि भी धीरे-धीरे किसानों की सहायता के लिए देहात में पहुंचने लगे। इन सब परिवर्तनों के फलस्वरूप किसान खेती को केवल जीविका का ही साधन समझने की बजाय कमाई का साधन समझने लगा। वर्षा की अनिश्चितता का भय तो अब भी पहले जैसा ही है, परन्तु फिर भी जहाँ कहीं सिंचाई के दूसरे साधन मिल जाते हैं, खेती कमाई का साधन रहती हैं।

कृषि विकास के इन तीन स्तरों को, जो भारतीय हरित क्रान्ति के मूलाधार हैं, भली प्रकार समझ लेना बहुत जरूरी है। इनको समझ लेने के बाद ही कृषि क्रान्ति के चौथे स्तर का अर्थात् इस नये ज्ञान और कृषि अर्थ-व्यवस्था पर उसके प्रभाव को आधारभूत छोटे किसानों तक पहुंचाने का मूल कार्यक्रम इस क्रान्ति को

व्यापक और स्थायी रूप दे सकता है। क्या वैज्ञानिक अनुसंधान से प्राप्त परिणाम, कृषि उपज के आधार तथा उधार मिली पूंजी अपने आप ही भारत के पाँच लाख गांवों में कृषि के इस विकसित रूप को व्यापक और स्थायी बना सकते हैं ? क्या भारत जैसे बड़े देश के आधारभूत छः करोड़ खेतों पर काम करने वाले किसान शिक्षा के इस नये ज्ञान को, उनके द्वारा प्राप्त साधनों को, सुधरे बीज, खाद और दवाईयों को तथा आवश्यकतानुसार मिल जाने वाली आर्थिक सुविधाओं को समझ और अपना सकेंगे ?

वैज्ञानिकों एवँ कार्यक्रम व्यवस्थापकों का अभी तक यह विश्वास था कि प्रौढ़ शिक्षा, जिसमें साक्षरता भी शामिल है, नई क्रान्ति को समझने का सहायक साधन तो है परन्तु अनिवार्य नहीं। इसलिए अभी तक जो प्रशिक्षण हुए, उनमें प्रौढ़ शिक्षा कार्य को एक गौण रूप दिया गया, मूलाधार नहीं समझा गया। परन्तु यह समस्या बहुत गम्भीर है और हरित क्रान्ति के इस स्तर पर यदि प्रौढ़ शिक्षा का महत्व न समझा गया तो इसका हरित क्रान्ति की उन्नति पर क्या कुप्रभाव हो सकता है, उस पर विचार करना जरूरी है।

पहली विचारणीय समस्या तो उस प्रथा की है जिसको कुछ भारतीय समाज शास्त्रियों ने "जजमानी प्रथा का वैतनिक प्रथा में परिवर्तन" का नाम दिया है। जजमानी प्रथा का अभिप्राय है छोटे किसानों अथवा श्रमिकों व दस्तकारों का बड़े किसानों के यहां दैनिक नकद वेतन के बदले में उपज की वस्तुएं लेकर काम करना। छोटे खेतों की भी उपज बढ़ जाने की संभावनाओं के फलस्वरूप अब यह जजमानी सेवाएं समाप्त हो रही हैं। इसलिए बड़े किसान खेती में मशीनों के प्रयोग को शीघ्रता से अपनाएंगे और छोटे किसान नई विधियों को सीखने और धन कमाने के नये साधनों अर्थात् बहुफसली कार्यक्रमों एवँ मुर्गी पालन, सूअर पालन और दुग्ध उत्पादन आदि के धन्धों को अपनाएंगे। इसलिए यदि बहु-सँख्यीय छोटे किसानों, और खेतिहर मजदूरों को नये तकनीकी

ज्ञान और धन की सुविधाएं और उन सुविधाओं की प्राप्ति की जानकारी न दी गयी, तो खेतीहर श्रमिक दल व मध्यवर्गीय किसानों में संक्रान्ति काल का तनाव हो जाना संभव है। इसके लिए शीघ्र ही शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा इन कार्यक्रमों का विस्तार बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अमरीका जैसे देशों में तो यह स्थिति भिन्न थी क्योंकि वहां किसानों के पास भूमि अधिक थी और वे किसान स्वयं ही अपने लाभार्थ सब उपयोगी जानकारी प्राप्त करने के लिए जागरुक थे। भारत जैसे देश में, जहां ७० प्रतिशत जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है, बड़े-बड़े खेतों में भी मशीनी खेती की प्रथा आसान नहीं है। इसके विपरीत यहां तो एक बड़ी संख्या में लोगों को भूमि पर ही रहना पड़ेगा। उन्हें समान अवसर ढूंढने पड़ेंगे। इसलिए यहां साक्षरता और शिक्षा का उद्देश्य ग्रामवासियों को कृषि की उन्नति के कार्यक्रमों में सहभागी बनाना होना चाहिये। भविष्य में बराबरी के सक्रिय सहयोग से ही उत्पादन वृद्धि के कार्यक्रम स्थायी बनाये जा सकेंगे।

दूसरी विचारणीय समस्या है कृषि का यन्त्रीकरण। देहाती और शहरी जीवन के बीच की दूरी को कम करने के लिए कृषि का यन्त्रीकरण एक महत्वपूर्ण साधन है। सरकारी कार्यालयों, देहाती स्थानीय संस्थाओं, बैंकों और भिन्न-भिन्न गैर सरकारी संस्थाओं के कर्मचारी तथा दुकानदार और व्यापारी ही इस कार्यक्रम के माध्यम हैं। इनमें से अधिकांश लोग शिक्षित हैं, कम से कम साक्षर तो हैं ही, फिर भी उन्नतिशील देहाती क्षेत्र पर शहरी क्षेत्र की जो प्रतिक्रिया है, उसमें इन लोगों की शिक्षा, समझदारी और व्यवहार का कोई प्रभाव नजर नही आता। इसलिए देहातों में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए मनोविज्ञान और समाज शास्त्र का ज्ञान और समझ पहले कभी इतनी जरूरी नहीं थी जितनी अब है। ऐसी दशा में व्यवसायी शिक्षकों तथा ग्रामवासियों

को अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाले सभी लोगों को ज्ञान संचार की प्रणाली से सम्बन्ध रखना जरूरी है। इस प्रकार गांवों को मण्डियों के निकट लाने में प्रौढ़ शिक्षा एक प्रभावशाली युक्ति है।

ध्यान रखने की एक और बात यह भी है कि बहुत से विकास शील देशों में किसान (मछुवे, मुर्गी अथवा पशु पालक) के लिए अनुभवों और विचारों के आदान-प्रदान, पथ प्रदर्शन के तथा ज्ञान संचार के लिए उसकी अपनी कोई संस्था नहीं है। भारत जैसे देश में भी न तो कोई कृषक सभा कक्ष है और न ही ग्राम स्तर पर कोई संस्था। परिणाम स्वरूप राजनीतिज्ञ नेता और प्रशासक अपनी-अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार उसके प्रवक्ता बन जाते हैं। परन्तु कृषि क्रांति को स्थाई बनाने के लिए तो इसकी व्यवस्था ऐसे संस्थागत आधार पर ही गठित करनी होगी जो राजनैतिक औचित्य की अस्थिरता अथवा प्रशासनिक ढांचे की दूरी से प्रभावित न हो।

ऐसे संस्थागत गठन की व्यवस्था कैसे की जायेंगी? आप कहेंगे भारत में तो सामुदायिक विकास योजना का यही अभिप्राय था। परन्तु सामुदायिक विकास योजना का गठन तो एक बहु-उपयोगी उद्देश्य को लेकर किया गया, जिसके अन्तर्गत अनेक विषय लिए गये। इसके लिए ग्रामीण राजनैतिक नेतृत्व के प्रभुत्व को प्रधानता तो अवश्यमेवभावी ही थो। फिर भी सामुदायिक विकास योजना से ग्राम स्तर पर स्वशासन का लाभप्रद गठन हो गया। परन्तु व्यावसायिक स्तर पर घनी खेती वाली संस्थाओं को इससे लाभ न हो सका। किसानों की ऐसी संस्थाओं का गठन कैसे हो, इसका एक ही उत्तर सम्भव है और वह है "प्रौढ़ शिक्षा" के माध्यम से।

कृषि वैज्ञानिक खोजे और नई जानकारी तेजी से बढ़ रही है। वास्तव में लगभग हर महीने नई विधियों, नये बीजों, नये यन्त्रों, नये उपकरणों और नये रोगों की जानकरी मिल रही है। ऐसी

दशा में किसानों के लिए हर नये ज्ञान का संचार और तत् सम्बन्धी प्रशिक्षण (जिनको मिलाकर प्रौढ़ शिक्षा कहते हैं) अत्यन्त आवश्यक है। इस कार्यक्रम के सतत संचालन के लिए उनकी अपनी कोई सुव्यवस्थित संस्था होनी चाहिए। यह चाहे कोई सभा हो या इसी प्रकार की कोई संस्था जिसमें वे समानता और बात-चीत की स्वतन्त्रता के वातावरण में विचारों के आदान-प्रदान द्वारा स्वशिक्षित हो सके और अपनी जानकारी स्वयं बढ़ा सकें। यदि इस उद्देश्य को लेकर किसानों के ऐसे छोटे-छोटे समूहों की व्यवस्था हो सके तो कृषि क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के प्रचार व प्रसार का सुचारू प्रबन्ध हो जायेगा। कालान्तर में यही छोटे-छोटे समूह मूल उत्पादकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की संस्थाएं बन सकते हैं और यथा समय सम्मिलित होकर एक क्षेत्रीय संस्था बन सकते हैं। ऐसी संस्थाओं के गठन का यही समय है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो "हरित क्रान्ति" योजना के लक्ष्य की प्राप्ति न हो सकेगी और वह परस्पर विचारों के विरोध में एक अफवाह बन कर रह जायेगी।

हरित क्रान्ति को स्थायी रूप देने के लिए और इसके प्रभाव और प्रचलन को दूर-दूर तक फैले हुए बहुसंख्यक किसानों तक पहुंचाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा के महत्व का जो विश्लेषण यहाँ किया गया है वह केवल सैद्धान्तिक दलील ही रह जायेगी, यदि प्रौढ़ शिक्षा विशेषज्ञ इसको कार्यात्मक रूप से सिद्ध करके वैज्ञानिकों तथा कार्यक्रम व्यवस्थापकों की सन्तुष्टि नहीं करेंगे। इसलिए जरूरी है कि अब हम कृषि की उन्नति के लिए प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों की व्यवस्था और संचालन पर विचार करें।

खेती करने वाले किसानों के बड़े-बड़े समूहों के लिए प्रौढ़ शिक्षा के उपयोगी कार्यक्रम की दो विशेषताएं होनी चाहिए। एक तो वह संग्रथित सूचनात्मक होना चाहिए और दूसरे कृषि उपज पर आधारित होना चाहिए। उपज आधारित होने का केवल यह अभिप्राय नहीं है कि वह एक विशेष प्रकार की उपज के बारे में

जानकारी देने वाला हो। इसका अभिप्राय है कि वह कार्यक्रम कृषक को उत्पादन कार्य से दूर न ले जाकर उपज में व्यस्त होने के साथ साथ ही क्रियात्मक प्रशिक्षण दे सके, ताकि जो नई जानकारी दी जाये उसे वह उत्पादक यथा समय अपने कार्य के साथ ही साथ कार्य रूप भी दे सकें और प्रत्यक्ष जांच कर सके। प्रौढ़ शिक्षा के इस कार्यक्रम के संग्रथित होने का अभिप्राय है कि इसमें जानकारी के साथ साथ कृषको के खेतों पर ही प्रदर्शन किया जाना चाहिए और उसके साथ साथ स्पष्टीकरण के लिए प्रशिक्षण की दूसरी विधियों जैसे प्रशिक्षण शिविर, भाषण, श्रव्य दृश्य साधन आदि का भी प्रयोग किया जाये। खाद, सुधरे बीज, कृषि यन्त्र तथा कीट नाशक दवाई आदि साधनों की उपलब्धि का भी इस प्रशिक्षण के साथ समन्वय होना चाहिए ताकि प्रशिक्षण के साथ साथ इन सभी साधनों को भी शिक्षार्थी किसान काम में ला सकें और उसका उपयोग भलो प्रकार समझ जायें। उपज कार्यक्रम बनाने का तथा उपज की किसी विशेष विधि का अभ्यास भी इस शिक्षा कार्यक्रम का ही भाग होना चाहिए।

खेती में फसलों के कार्यक्रम बनाने का तथा उपज सम्बन्धी अन्य क्रियाओं का अभ्यास भी इस शिक्षा के पाठ्यक्रम का ही अंग होना चाहिए। खेती के उपकरणों तथा दूसरे निवेशों की सुविधा देने वाले तथा व्यवस्था एवं प्रसार सम्बन्धी दायित्व रखने वाले राजकीय अधिकारियों से मेल-जोल तथा व्यवहार के तरीके सिखाना भी एक और आवश्यक अंग है। नये नये तकनीकी प्रभाव में कृषि कार्य अब कोई साधारण अनुभव अथवा अभ्यास तथा रूढ़ि-ग्रस्त परम्पराओं के आधार पर सफल नहीं हो सकता। इसलिए कृषकों के संग्रथित प्रशिक्षण कार्यक्रम में अधुनिक कला ज्ञान के विस्तृत पहलुओं का समावेश होना चाहिए, जैसे हिसाब-किताब का लेखा रखना, प्रार्थना-पत्र लिखना तथा बाजार भावों और बाजारू गतिविधियों का ज्ञान होना, ये सभी बातें किसानों के प्रौढ़

प्रशिक्षण का अंग होना चाहिए।

अधिक उत्साही युवक कृषकों के लिए कृषि संसाधन, कृषि यंत्रीकरण तथा भण्डार संचय के ज्ञान की विशेष जानकारी भी दी जानी चाहिए। नमूने के प्रयोगों के आधार पर परिचर्चा एवं विचार विनियम के लिए कृषकों के समूहों की व्यवस्था करना तो इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग है ही। इस उत्साही समूह के लिए इन विचार गोष्ठियों की व्यवस्था और अधिक महत्वपूर्ण है।

किसानों, मछेरों तथा अन्य ऐसे ही व्यावसायिक गुटों के लिए प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम क्षत्रीय आधार पर सफलता पूर्वक नहीं चलाया जा सकता। इसकी व्यवस्था तो विशेष उत्पादन योजनाओं के आधार पर करनी होगी और उन्हीं क्षेत्रों तथा बस्तियों में जहां ये योजनाएं चलाई जायें। साधारणतया प्रौढ़ शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले अधिकारी एवं कार्यकर्त्ता शिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था जिला अथवा तहसील स्तर पर या विद्यालयों और दूसरी शिक्षण संस्थाओं के आधार पर करने के अभ्यस्त हैं। हमारा सुझाव है कि उन्हें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की आर्थिक विकास की योजनाओं को जांचना चाहिए और उनमें से जिन योजनाओं की सफलता के लिए प्रौढ़ शिक्षण एवं प्रशिक्षण को लाभकारी समझा जाये उन्हें छांट कर कार्य की व्यवस्था करनी चाहिए।

हमारे देश भारत की विकास योजनाओ में अनेक योजनाएं जैसे सघन कृषि उत्पादन विकास योजना, छोटी किसानी योजना, सघन पशु सुधार योजना, सूखी खेती योजना, मुर्गी पालन विकास योजना, सिंचित क्षेत्रों में नियन्त्रित क्षेत्रीय विकास योजना, मूंगफली और तिलहन आदि की उपज की विशेष योजनाएं, कृषि यन्त्रों की मरम्मत के केन्द्रों की व्यवस्था योजना तथा अन्तः स्थलीय मछली उद्योग की विकास योजना आदि आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देश भर में संचालित हैं। प्रौढ़ साक्षरता कार्य कर्त्ताओं को इन

योजनाओं को समझकर इसमें से अपनी रूचि के अनुसार योजना छांट कर प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम तथा पाठ्यक्रम को उस योजना की सफलता का आधार मानकर निश्चय करना होगा। तब ही वह लाभदायक हो सकता है।

मूल उत्पादक के लिए साक्षरता का क्रियात्मक उपयोग बड़ा जटिल और अति संवेदी साधन है। छः मास के प्रशिक्षण कार्यकाल एवं आरम्भिक पाठ्य पुस्तकों में पुरानी परम्पराओं को छोड़ना होगा। इसके लिए तो प्रौढ़ शिक्षक को विशेष उत्पादन योजना के लिए शब्दावली बनानी होगी और उसी शब्दावली को साक्षरता कार्यक्रम का प्रेरणा स्रोत एवं आधार मानना होगा। शिक्षार्थी जो कुछ सीख रहा है, उसको साथ-साथ काम में भी ला सके, ऐसा प्रशिक्षण ही उपयोगी हो सकता है। इस प्रकार साक्षरता का जो ज्ञान विद्यार्थी के जीवन कार्य के लिए तत्काल उपयोगी है उसको प्राप्त कर लेने के बाद शिक्षार्थी साक्षरता के विस्तृत ज्ञान के लिए भी स्वयं प्रेरित हो जायेगा, परन्तु प्रथम आवश्यकता है तात्कालिक उपयोगिता की।

उत्पादन योजनाओं से सम्बन्धित सभी लोगों के लिए प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम उतना ही उपयोगी है जितना कि मूल उत्पादक के लिए। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों सभी ने कर्मचारी गण के प्रशिक्षण की व्यवस्था बहुत ही अनियमित रूप से की है। उनकी योजनाएं अधिकतर राजकीय अधिकारियों तक ही सीमित रही हैं। थोड़े समय से ही व्यापार, उद्योग और बैंकिग क्षेत्र में कृषि से सम्बन्धित कार्य करने वालों तक इस योजना का विस्तार किया गया है। परन्तु विश्वविद्यालयों, कालिजों तथा गैर सरकारी क्षेत्रों में काम करने वाली प्रौढ़ शिक्षण संस्थाओं को इस प्रशिक्षण योजना में अभी व्यापक रूप से सम्मिलित नहीं किया गया। इसका कारण सम्भवत. यह हो सकता है कि कृषि क्षेत्र के ज्ञाता और अनुभवी लोगों को अभी तक प्रौढ़ दर्शन शास्त्र का अनुभव नहीं

मिला और न ही उनको प्रौढ़ शिक्षा विशेषज्ञों में ही गिना गया है।

यह कहना ठीक है कि कम से कम भारतवर्ष में तो राज्य सरकार के तथा अन्य व्यापारों और उद्योगों के उच्चाधिकारियों को तो यह आभास कराना जरूरी है कि उसके क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा का महत्व बहुत अधिक है। इसके दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि सभी धन्धों में लगे हुए लोगों के लिए अब आयु पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करते करना आवश्यक है। यह एक स्वयं सिद्ध तथा सर्वमान्य तथ्य है। कृषि के क्षेत्र में तो नया ज्ञान और नई खोज इस तेजी से बढ़ रही हैं कि बहुत सारे कर्मचारी इसको याद ही नही रख सकते, यदि उन्हें बार बार नई से नई जानकारी से अवगत कराने के लिए प्रशिक्षण न दिया जाए। इसके अतिरिक्त बीज बांटने से, खादों का प्रदर्शन करने से, धन-पूर्ति की व्यवस्था से तथा उपज बिक्री व्यवस्था से सम्बन्धित सभी अधिकारियों को तो कार्यक्रम की नियोजित व्यवस्था करने, कार्यान्वित करने तथा अन्य संस्थाओं के कार्य से समन्वित करने के लिए सारी जानकारी तथा चतुराई प्राप्त करनी ही होगी। इन सभी कामों के लिए आजकल बड़ी समझदारी, कला और कौशल की आवश्यकता है। हमारे देश में तो उचित समन्वय तथा सामयिक तालमेल के बिना अनेक कार्यक्रम असफल ही रह जाते हैं, अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम में इन्हीं तथ्यों पर बल दिया जाना चाहिए।

किसानों तथा खेती विकास से सम्बन्धित दूसरे वर्गों की प्रौढ़ शिक्षा संचालन के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएं अनेक होनी चाहिए। अभी तक इस क्षेत्र में सभी कार्य अधिकतर सरकारी संस्थाओं द्वारा ही किया गया है। इसलिए यह देखना जरूरी है कि हरित क्रान्ति योजना में प्रौढ़ शिक्षण के कार्यक्रम कहां तक, कैसे और क्या योगदान दे सकते हैं। विशेष कर इस बात का अध्ययन जरूरी है कि प्रौढ़ शिक्षा के साधारण कार्यक्रमों में और

विशेषकर हरित क्रान्ति योजना को प्रोत्साहन देने के लिए जो प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएं, उनमें कहां तक और कैसे तालमेल किया जा सकता है। अर्थात् साधारण प्रौढ़ शिक्षण कार्य में लगी हुई अनेक गैर सरकारी संस्थाएं कृषि विकास के कार्यक्रम में कैसे योगदान दे सकती हैं, इसका अध्ययन जरूरी है।

इसका एक पहलू तो यह हो सकता है कि ऐसी गैर सरकारी संस्थाओं को व्यावसायिक साक्षरता का विशेष कार्यक्रम सौंप दिया जाये और वे इसके साथ साथ कार्यकर्त्ताओं को आपसी वार्तालाप तथा श्रव्य दृश्य साधनों के प्रयोग का प्रशिक्षण दें। इन सभी संस्थाओं को इस प्रकार के कार्यों का अनुभव प्राप्त है और इसलिए इस क्षेत्र में उनका योगदान बहुत सुविधा तथा महत्वपूर्ण होगा। इस दशा में जिन सरकारी विभागों का कृषि उत्पादन, कृषि विस्तार सेवा तथा बीज, खाद एवं कीटनाशक दवाईयों की सुविधा वितरण से सम्बन्ध है, उन सब के कार्यों से इन गैर सरकारी संस्थाओं का समन्वय बहुत आवश्यक होगा।

ऐसा इसलिये जरूरी है, क्योंकि प्रशिक्षण की आवश्यकता खेती तथा निवेश आपूर्ति के भिन्न भिन्न स्तरों पर होती है। अब तक जो प्रयोग इस सम्बन्ध में किये गये हैं, उन सब में ऐसा समन्वय प्राप्त करने में बड़ी व्यावहारिक कठिनाइयां भी हुई है।

दूसरा पहलू यह हो सकता है कि गैर सरकारी संस्थाएं स्वयं ही उत्पादन एवं प्रशिक्षण के कार्यक्रम की व्यवस्था करें। ऐसा करने में उन्हें मनोनीत क्षेत्र में अपनी योग्यताओं अर्थात् साक्षरता तथा संचारण आदि के साधनों के साथ साथ उत्पादन के अन्य पक्षों को भी काम में लाना होगा। हो सकता है कि वे बहुत बड़े क्षेत्र में इस कार्य की व्यवस्था न कर सकें, फिर भी वे जो कुछ भी कर सकेंगे, वह उनका स्वयं साध्य कार्यक्रम होगा। इसलिए अपने सीमित क्षेत्र में कार्य करने पर भी उन्हें उत्पादन कार्य के बहु पक्षों का सम्पूर्ण अनुभव मिल सकेगा। इस प्रकार उत्पादन कार्यक्रम

तथा उसके लिए आवश्यक ज्ञान तथा साधनों का समन्वय हो सकेगा और यह कार्यक्रम सम्पूर्ण प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम होगा।

हरित क्रान्ति और प्रौढ़ शिक्षा का एक और पक्ष शहरी लोगों तथा उच्च वर्गों में कृषि सम्बन्धी जानकारी के प्रचार व प्रसार का है। बड़े नगरों तथा छोटे कस्बों में नागरिकों का जीवन देहाती क्षेत्र में कृषि के विकास पर बहुत निर्भर करता है। इस पर भी इस वर्ग को कृषि की उन्नति के लिए कोई ज्ञान अथवा जानकारी नहीं दी जाती। नगरों में रहने वाले अब भी देहाती किसानों के जीवन के बारे में, उनके पिछड़े पन, गरीबी, अज्ञानता, तथा रूढ़िवाद के बारे में बड़े विचित्र विचार रखते हैं। छोटे किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों के बारे में अब भी पुरानी परम्परागत बातों को सही मानते हैं। इस जागृति को फैलाने के लिये चित्रपट पर कृषि विकास की फिल्में दिखा देना काफी नहीं है। पिछले कुछ दिनों से कुछ समाचार पत्रों ने किसानों, देहाती वर्गों और खेती की प्रगति के सम्बंध में सूचना देने के लिये कुछ विशेष स्तम्भ रखने शुरू कर दिये हैं, परन्तु सूचना प्रसार के इन सभी साधनों में नगरों तथा राजनैतिक गतिविधियों का अधिक समावेश रहता है। विद्यालयों तथा कालिजों में जो पाठ्यक्रम पढ़ाये जाते हैं, उनमें (केवल कुछ मुख्य विद्यालयों के सिवाय) भावी नागरिकों को कृषि, मुर्गीपालन, मछलीपालन तथा पशुपालन जैसे विषयों की समस्याओं के बारे में बहुत ही कम जानकारी कराई जाती है। यह हमारी शिक्षा योजना की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कमी है।

ऐसी दशा में नगर निवासियों को इस सम्बन्ध की पूरी जानकारी देने, इन समस्याओं पर वार्तालाप कराने और विचारों का आदान प्रदान कराने का उत्तरदायित्व प्रौढ़ शिक्षा कार्यकर्त्ताओं का ही हो जाता है। ऐसा हो जाने से राष्ट्रीय जीवन में सुव्यवस्था उत्पन्न होगी और नगर और ग्राम के बीच की दूरी समाप्त हो सकेगी। इस कार्य में प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाली गैर

सरकारी संस्थाएं बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

भारत और अन्य विकास शील देशों में यह पहला अवसर है जब कि खेती भी उद्योग जितनी ही सुस्पष्ट जातिगत, लक्ष्यपूर्ण तथा निवेश आधारित हो गई है। निसन्देह यह स्थिति क्रान्ति की द्योतक है। शिक्षा प्रसार से सम्बंध रखने वालों की यह परीक्षा है। इस परिवर्तन का वे कितना लाभ उठा सकते हैं और बदलती हुई परिस्थितियों में कहां तक जन जागृति फैलाकर राष्ट्र को सफल बना सकते हैं, यही उनके परिश्रम की कसौटी होगी। उत्पादन बढ़ाने के लिये शारीरिक परिश्रम ही जरूरी है--इस पुरानी परम्परा को अब छोड़ देना होगा। अब तो उत्पादन का सम्बन्ध चतुराई और समझदारी से जोड़ना होगा। आज की कृषि बुद्धि एवं परिश्रम दोनों को ही चुनौती है और इसीलिये कृषि विकास के लिये शिक्षा आवश्यक है।

अध्याय २

नये उपागम के परिणाम

किसानों के प्रशिक्षण और उनकी शिक्षा में तथा किसानों के साथ प्रेरणादायक वार्तालाप करने में अन्तर है। यह दो विभिन्न कार्यक्रम हैं। छटे दशक में कृषि क्षेत्र में जो विस्तार सेवा कार्य हुआ, वो अधिकतर द्वितीय वर्ग का ही था। यह कृषि विकास कार्य की कमजोरी थी। केवल बातचीत अथवा उपदेश तथा प्रदर्शन से प्रेरणा जागृत तो की जा सकती है परन्तु इसको स्थायी रूप नहीं दिया जा सकता।

किसानों एवं मूल उत्पादकों के लिये तो आर्थिक लाभ भी सबसे अधिक प्रेरणा दे सकता है। इससे उनको नये तरीकों को अपना कर रुपया लगाने से आमदनी बढ़ाने का अवसर मिलेगा। आमदनी बढ़ने का अर्थ है उपज वृद्धि तथा ऊंचे दाम। ये दो लक्षण अर्थात् उपज वृद्धि और ऊंचे दाम जैसे ही भारतीय किसानों को एक साथ निश्चित दिखाई पड़े, तो प्रेरक साधनों की समस्या काफी हद तक सुलझ गई।

अधिक उपज देने वाले कार्यक्रमों अर्थात् सभी ऐसे कार्यक्रमों ने, (जो नई जानकारी और सुधरे तरीकों तथा निवेशों पर आधारित होने के कारण उपज और आय में वृद्धि दें) किसानों का प्रशिक्षण तथा प्रौढ़ शिक्षण के लक्ष्यों को निर्धारित कर दिया हैं। गेहूं की उपज पुरानी किस्म के बीजों से दस से पन्द्रह मन प्रति एकड़ होती थी, अब नये सुधरे बीजों और पानी, खाद और रोग से बचाव के उन्नत साधनों के कारण पचास मन प्रति एकड़ तक हो गई है। उपज और आय की बढ़ोतरी की यह आशा नये ज्ञान

को प्राप्ति, सुधरे बीजों के उपयोग तथा नये कार्यक्रमों के अपनाने में पर्याप्त प्रेरणादायक हैं। इसलिए किसानों की शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था होना जरूरी है। शोध कार्य वैज्ञानिक प्रति वर्ष इस जानकारी को बढ़ाते रहते हैं और कभी कभी तो कोई न कोई नया ज्ञान प्रति मास ही मिलता रहता है।

तकनीकी ज्ञान की बढ़ोतरी की इस तीव्र गति के कारण केवल उत्पादक का ही प्रशिक्षण जरूरी नहीं है, बल्कि प्रशिक्षकों को भी नये ज्ञान की जानकारी होना जरूरी है। इस प्रकार प्रशिक्षण कार्य उत्पादन कार्य का ही एक अभिन्न अंग हैं। अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोगों के पहले दो वर्षों में तो नये बीजों के प्रयोग से जो आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त हुए, वे इतने प्रेरणादायक थे कि सभी साधन सम्पन्न किसानों ने इस नये ज्ञान को कहीं से भी, किसी न किसी प्रकार से, किसी कीमत पर भी प्राप्त करने की कोशिश की। परन्तु आरम्भिक स्तर की समाप्ति पर, छोटे किसानों द्वारा इन नये तरीकों को अपनाये जाने की समस्या उभर कर सामने आई। अधिक उपज लेने के कार्यक्रमों के लिये छोटे किसानों में भी प्रेरणा है, परन्तु उनके पास नये ज्ञान तथा नये निवेशों को प्राप्त करने के साधन नही हैं। यही कारण है जिससे अधिक उत्पादन के इच्छुक किसानों के प्रशिक्षण की योजना राष्ट्रीय प्रगति का आवश्यक कार्यक्रम है।

किसानों के प्रशिक्षण के इस कार्यक्रम के द्वारा प्रत्येक किसान को उत्पादन के विशेष विषय की पूरी जानकारी दी जानी चाहिये। इसका आशय होगा कि :—

(१) प्रशिक्षण कार्यक्रम उत्पादन कार्य के विभिन्न स्तरों से पूरी तरह सम्बन्धित तथा समन्वयित हो। उदाहरणार्थ किसी भी फसल से सम्बन्धित प्रशिक्षण का समय विभाजन भूमि तैयार करने से लेकर फसल तैयार करने और उसकी बिक्री करने तक से सम्बन्धित रहेगा। पाठ्यक्रम का यह विस्तृत विभाजन उत्पादन के

नए बीज और नई विधियों का धन्यवाद कि उनके कारण बिहार का एक किसान प्रथम बार गेहूं बो पाया ।

मेरा अपना
ट्यूबवैल और पम्प
वैशाली

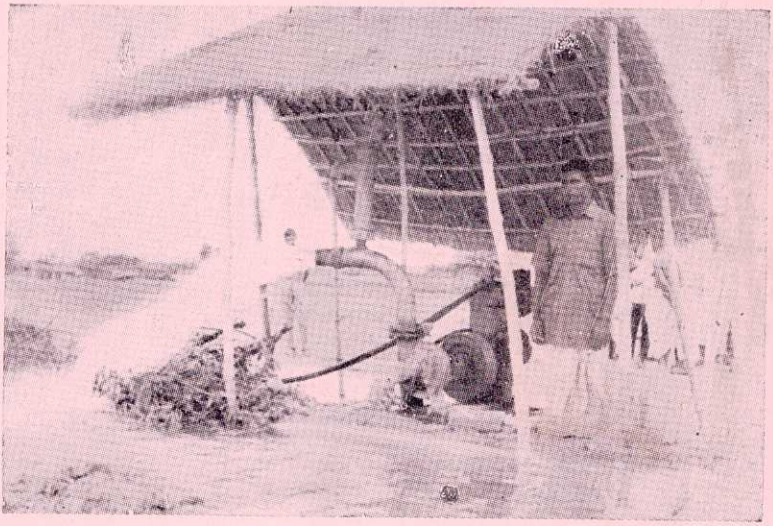

मण्डी में सीढ़ी नुमा
खेती की तैयारी ।

भिन्न भिन्न स्तरों अर्थात् सिंचाई, जुताई, पौध संरक्षण तथा पर्णीय छिड़काव आदि सब से पूर्णतया समन्वयित रहेगा।

(२) दूसरे चूंकि प्रशिक्षण की व्यवस्था उत्पादन के एक विशेष कार्यक्रम में क्रियात्मक भाग लेने वालों के सम व्यवसायी वर्ग के लिये है, इसलिये इस प्रशिक्षण का स्थान वास्तविक उत्पादन का क्षेत्र ही होगा, जैसे फसल (अन्न उत्पादन) के सम्बन्ध में प्रशिक्षण पाने वाले किसानों के खेत ही इसका स्थान होंगे। मौखिक अथवा लिखित जानकारी, खेतों में क्रियात्मक प्रदर्शन करने के पहले नहीं, बाद में दी जानी चाहिए।

यह भी स्पष्ट है कि प्रशिक्षण की ऐसी व्यवस्था में प्रशिक्षार्थी को अपने कार्य स्थल से अधिक समय के लिये दूर नहीं रहना पड़ता, जैसा कि अधिकतर शिक्षण शिविरों में हो जाता है। सभी प्रयोग भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थियों के निकट निजी खेतों पर ही होने चाहिए।

(३) तीसरे, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम खेती के विशेष कार्यक्रम की तकनीक एवं साधनों पर ही आधारित होना चाहिये। साधन अर्थात् (खाद, यंत्र, पौध रक्षक सामग्री, सिंचाई और धन व्यवस्था) से प्रशिक्षण का सम्बन्ध ऐसा वास्तविक होना चाहिए जिससे प्रशिक्षार्थी को यह श्रद्धा उत्पन्न हो जाये कि प्रशिक्षक केवल सैद्धान्तिक बातें नहीं कर रहा है बल्कि वह उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की वास्तविक क्रियात्मक युक्तियाँ बतला सकता है। इस प्रकार प्रशिक्षक भी उपज के साधनों की उपलब्धियों के कारण गौण रूप में प्रशिक्षण का भागीदार बन जाता है। और नहीं तो कम से कम उसे दैनिक गतिविधियों के प्रति तो जागरूक होना ही पड़ेगा। इसका यह भी एक अभिप्राय है कि खेती के लिये साधनों की उपलब्धि और व्यवस्था के कारण तकनीकी और साधारण जानकारी देने का अवसर तो मिलेगा ही या दूसरे रूप में कहिए कि साधनों और जानकारी देने वालों को भी प्रशिक्षार्थियों

का ही अंग बन जाना होगा।

प्रयोगात्मक प्रदर्शन स्थान को ही प्रशिक्षण स्थान बना लेने की बात कुछ अधिक स्पष्टीकरण मांगती है। राजकीय बीज फार्मों अथवा अनुसंधान प्रयोगशालाओं में प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन की बात तो बहुत पुरानी परम्परा है। ऐसे प्रयोग से प्रशिक्षार्थियों में श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो सकी। कृषि विस्तार अधिकारियों द्वारा किसानों के अपने खेतों पर इस प्रकार के प्रयोगों की व्यवस्था एक प्रगतिशील योजना है। परन्तु इससे भी अधिक प्रभावशाली वे प्रयोग होते हैं जो किसानों के अपने खेतों पर ही अनुसंधान शालाओं अथवा विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों द्वारा किए जाएं। इन सभी प्रयोगों में वैज्ञानिकों तथा विस्तार सेवा अधिकारियों के सम्मिलित प्रयास अनिवार्य हैं। फिर भी इसकी विशेषता यह है कि वैज्ञानिक सहयोगी को विषय का आधुनिकतम ज्ञान होने से वह आवश्यकतानुसार प्रश्नों के उत्तर देने और शंकाओं का समाधान करने में अधिक सफल होगा। साथ ही साथ प्रयोगशालाओं से उसका सीधा सम्बन्ध होने के कारण वह क्षेत्रीय समस्याओं तथा उनके समाधानों को जल्दी समझ लेगा और समझा सकेगा। इस प्रकार वैज्ञानिकों तथा विस्तार सेवा अधिकारियों के सम्मिलित प्रयोग अनुसंधान, विस्तार एवं उत्पादन के समन्वय का क्रियात्मक उदाहरण है।

विस्तार सेवा अधिकारियों के सहयोग से वैज्ञानिकों द्वारा जिन खेतों पर प्रयोग दिखाये जायें, वहां पर आस-पास के किसानों के प्रशिक्षण शिविर अथवा दो-दो, तीन-तीन दिन के खेती मेले लगाये जाने चाहिएं। इस प्रकार वे खेत ही शिक्षण कक्ष बन जायेंगे। केवल प्रयोग से तो इसका लाभ कुछ किसानों तक ही सीमित रह जायेगा परन्तु प्रशिक्षण शिविर तथा खेती मेलों की व्यवस्था से इन प्रयोगात्मक प्रदर्शनों का लाभ आस-पास के अनेक किसानों तक पहुंचाया जा सकेगा।

किसान प्रशिक्षण की इस नई युक्ति में श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग अनिश्चित एवं सामान्य की बजाय निश्चित रूप से करना होगा। इसके कई प्रभाव होंगे :—

(१) आकाशवाणी तथा फिल्म के साधारण देहाती कार्यक्रमों का उद्देश्य सारी ग्रामीण जनता के लिए उनकी सभी मूल आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सब ही के लिए एक जैसा प्रसारित किया जाता है। इसमें सभी विषयों जैसे स्वास्थ्य, उत्पादन, परिवार नियोजन, परम्परागत रीति रिवाज, सांस्कृतिक ज्ञान, कृषि तथा मौसम आदि सभी विषयों की जानकारी मिले-जुले तौर से दी जाती है। परन्तु नये प्रशिक्षण कार्यक्रम में इन विषयों का ज्ञान भिन्न-भिन्न समूहों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के आधार पर छाँट-छाँट कर प्रसारित करना होगा। यह कार्यक्रम संख्या में भले ही कम हों परन्तु अधिक समस्या आधारित और शिक्षाप्रद बनाने होंगे। हो सकता है कि ये साधारण देहाती कार्यक्रम से कुछ भिन्न जान पड़े, परन्तु नये तकनीकी ज्ञान को भली प्रकार समझाने के लिए उन्हें अधिक शिक्षाप्रद और प्रभावशाली बनाना होगा।

(२) श्रव्य दृश्य साधनों द्वारा जन-शिक्षा के कार्यक्रमों में राष्ट्रीय स्तर की बजाय स्थानीय स्तर का ध्यान अधिक रखना होगा। फिल्मों तथा केन्द्र स्तर पर बनाये हुए पोस्टरों, पुस्तिकाओं तथा चित्रों आदि में यह एक बड़ी कमी रहती है। उनके प्रकाशन व प्रस्तुतिकरण में केवल स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान नहीं रखा जा सकता, और न ही स्थानीय फसलों और उनके उत्पादन की समस्याओं का। इसका अर्थ यह हुआ कि किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए यदि जन शिक्षण सामग्री अथवा श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग करना है तो उन्हें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप बनाना होगा।

(३) फिल्म, रेडियों, पोस्टरों और पुस्तकों जैसे सभी जन शिक्षा के साधनों में आपसी तालमेल होना आवश्यक है। ऐसे होने

पर ये सब साधन शिक्षा उपयोगी हो सकते हैं। साथ ही साथ इन सबको खेती उपज के कार्यक्रमों के समय से भी सम्बन्धित करना होगा, ताकि किसानों को जिस समय जिस विषय के ज्ञान की जरूरत है, उसी समय इन सब साधनों के द्वारा उसको वही ज्ञान दिया जाये। अभी तक ऐसा प्रयत्न कभी नहीं किया गया परन्तु किसानों को उपज की और उपज के साधनों, तरीकों और समस्याओ की अधिक से अधिक जानकारी देने के लिए इन सब साधनों द्वारा यथा समय एक ही जैसी जानकारी देना ही वास्तव में उपयोगी होगा। भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें सुनते-सुनते तो वे उलझन में ही पड़ जायेंगे।

किसानों की शिक्षा प्रौढ़ शिक्षा के अन्य सभी कार्यक्रमों के अनुसार सतत शिक्षा का कार्यक्रम है। अर्थात् यह कार्यक्रम स्वयं पोषित होना चाहिए और लगातर चलते रहने वाला अनन्त भी। चूंकि प्रति वर्ष और कभी-कभी प्रति मास भी नई तकनीक और नये से नया ज्ञान भी जानकारी के नये क्षेत्र और नये अवसर प्रदान करते हैं। यदि शिक्षण विधि सतत होगी तो अनुवर्ती शिक्षा कार्यक्रम भी निरर्थक हो जायेगा, क्योंकि अनुवर्तन का उद्देश्य केवल शिक्षा क्रम को जारी रखने का इतना नहीं है जितना कि किसानों को स्वयं अपनी जानकारी बढ़ाने के अवसर प्रदान करने का है।

इस प्रकार के स्वाध्याय के अवसर कौन सी संस्था दे सकती है, यह अब देखना है। साफ जाहिर है कि पंचायतें तो यह उत्तरदायित्व नहीं निभा सकतीं चूंकि वे राजनीतिक अथवा दलमत पर आधारित्त प्रशासनिक संस्थाएं हैं, सार्वजनिक व्यावसायिक हितों पर नहीं। यह भी जाहिर है कि समान आवश्यकताओं वाले स्वाध्याय दल बहुत बड़े भी नहीं हो सकते। इनकी व्यवस्था को बहुत विस्तृत भी नहीं किया जा सकता। इसलिए स्पष्ट है कि ज्ञान प्रसार की ऐसी व्यवस्था के लिए समान आवश्यकता वाले किसानों अथवा दूसरे विशेष उत्पादक वर्गों के स्वाध्याय मण्डलों की

व्यवस्था द्वारा ही उद्देश्य की वास्तविक पूर्ति हो सकती है। ऐसी संस्था न कोई सभा होगी न संघ, इन दोनों के बीच की कोई संस्था होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, प्रशिक्षण शिविर में अथवा फसलों के प्रयोगात्मक प्रदर्शनों में भाग लेने वाले किसानों को दस से बीस तक के छोटे सघन, सुसम्बद्ध, समरूप, उत्सुक, गम्भीर और उत्साही दलों में व्यवस्थित करना होगा ताकि वे दो प्रशिक्षण शिविरों के बीच के समय में सीखी हुई जानकारी को स्वाध्याय द्वारा समझने और बढ़ा लेने का प्रयास जारी रखें। उन्हें अध्ययन करने की सामग्री और साधन देने होंगे और आपस में विचारों के आदान-प्रदान तथा अवलोकन के अवसर देने होंगे।

आकाश वाणी (रेडियो) यंत्र, पुस्तिकाएं, विज्ञापन पत्र, तीव्र वाचन सामग्री अथवा दूरदर्शन आदि सब सुविधाएं इन शिक्षार्थियों को अपने ज्ञान को बनाये रखने और आपसी विचारों को आदान प्रदान द्वारा सभी सामयिक जानकारी प्राप्त कर लेने में सहायक होंगे। इन्हीं वर्गों के द्वारा स्थानीय किसानों और क्षेत्रीय अधिकारियों के बीच तालमेल भी स्थापित किया जा सकेगा जो ग्राम सेवक की सेवाओं से भी अधिक उपयोगी होगा। परन्तु यह समझ लेना जरूरी है कि ऐसे वर्गों की व्यवस्था में ग्राम सेवक ही आधार भूत कड़ी होगा।

इस दुतरफा संचार के न होने से विस्तार सेवा की अनेक योजनाएं असफल होती रही हैं। ऐसी सुविधा की व्यवस्था करने वाली संस्था को सभा के सदस्यों के पत्रों के तथा साक्षात्कार एवं पूछ ताछ के संतोषजनक उत्तर तुरंत देने की व्यवस्था करनी होगी ताकि शंका समाधान करने में उन्हें असुविधा अथवा विलम्ब न हो। यह काम पत्रों द्वारा अथवा रेडियो प्रसारण द्वारा किया जा सकता है। किसी भी छोटे वर्ग में यह सब व्यवस्था शीघ्र की जा सकती है और सदस्यगण आपस में भी विचारों का आदान-प्रदान करने में आत्मनिर्भर हो सकते हैं। उदाहरणार्थ एक ट्यूबवैल

(नलकूप) से लाभ उठाने वाले सभी लोगों को लेकर ऐसी व्यवस्था आसानी से की जा सकती है। सम्मिलित रूप से वे एक हारवेस्टर किराये पर लेकर काम में ला सकते हैं अथवा सब मिलकर सामूहिक रूप से खेती के यंत्र खरीद सकते हैं। ऐसे समव्यावसायिक नये समूह आगे चलकर अपने सामूहिक कष्टों को अधिकारियों तक पहुंचा सकते हैं। सामूहिक आवश्यकताओं के आधार पर बने हुये इस प्रकार के समूह जन तंत्र को सफल बनाने में सहायक होंगे।

अभी तक यह समझा जाता रहा है कि असुविधाओं अथवा अड़चनों की सूचना अधिकारियों तक पहुंचाने का उत्तरदायित्व विस्तार अधिकारियों का ही है। परन्तु उत्पादन आधारित विशेष कार्यक्रम, जिसके अनेक पहलू हैं, इस प्रकार की अड़चनों एवं सूचनाओं को अधिकारियों तक पहुंचाने के उत्तरदायित्व को कार्यक्रम में व्यस्त अनेक लोगों में बाँट देता है, ऐसे कार्यों के लिए वैसे तो अनुसंधान में लगे वैज्ञानिक, उत्पादन सम्बन्धित अधिकारीगण तथा यंत्र एवं साधन उपलब्ध कराने वाले, निर्माता एवं वितरक, अन्य क्षेत्रों जैसेकृषि यंत्र निर्माण, भूमि सरंक्षण और सिंचाई विभाग, बैंकों के ऋण विभागों और किसान प्रशिक्षण विभागों के विशेषज्ञों को इस कार्यक्रम में शिक्षण कार्य के लिए उपयुक्त समझा जा सकता है। फिर भी किसान प्रशिक्षण में लगे विशेष कार्यकर्त्ताओं को ही मुख्य उत्तरदायित्व निभाना होगा हालांकि केवल ये ही अकेले प्रशिक्षण कार्य को सफल बनाने के लिए काफी नहीं हैं, ऊपर बताये गये सभी विभागों के विशेषज्ञों के साथ मिलजुल कर ही आपसी सहयोग से वे इस कार्य को सुचारू रूप से चला सकते हैं। उनका कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के सभी उत्पादन कार्यक्रमों की पूरी देख-रेख रखें, उत्पादकों से मिलते रहें, उनको बातों को सुनें, जरूरतों को पूरा करते रहें और शंकाओं का समाधान कर उचित जानकारी एवं सुविधाएं देते रहें।

अधिक उपज देने वाली फसलों के कार्यक्रम में नई तकनीक

के प्रयोगार्थ अनेक नई व्यवस्था एवं विधियों के समावेश से और प्रशिक्षक की विस्तृत उपरोक्त परिभाषा के कारण, किसानों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए अब अनेक संस्थाओं और अधिकारियों के जैसे सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है। ऐसे समन्वयित कार्यक्रम पर पहले क्षेत्रीय स्तर पर कभी प्रयत्न नहीं किया गया। भारतवर्ष में ऊपर बताई गई सभी संस्थाएं प्रशिक्षण का कार्य कर सकती है जैसे :—

(१) विश्वविद्यालय, अनुसंधान केन्द्र एवं अन्य प्रशिक्षण तथा शिक्षण संस्थाएं।

(२) कृषि विभाग की उत्पादन शाखाएं तथा कार्यक्रम निश्चित व नियोजित करने वाले अधिकारी वर्ग जैसे जिला और ब्लाक क्षेत्र पर अधिक उपज देने वाली फसलों के नियोजक अधिकारी।

(३) विस्तार सेवा एवं प्रशिक्षण निदेशालय तथा राज्य, जिला और विकास खंड क्षेत्र के अधिकारी।

(४) राज्य कृषि विभाग तथा विस्तार सेवा विभाग की सूचना प्रसारण शाखाएं।

(५) केन्द्रीय सरकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय के सभी जन शिक्षा साधन जैसे आकाशवाणी, चित्र पट विभाग, सार्वजनिक प्रचार बिभाग आदि।

(६) ग्राम सेवक

(७) स्थानीय पंचायती राज्य संस्थाएँ,

(८) प्रादेशिक सरकार के वित्त विभाग, सहकारी विभाग तथा व्यापारिक बैंक और,

(९) खाद, सिंचाई एवं उपज संरक्षण के साधनों के निर्माता एवं संभरण कर्त्ता।

किसानों के प्रशिक्षण की ऐसी समन्वयित योजना बनाना और उसकी व्यवस्था करना कोई आसान काम नहीं है, परन्तु यदि

किसानों की और कृषि की उन्नति हमारा लक्ष्य है तो और कोई रास्ता भी नहीं है। समन्वय समितियों अथवा कार्यरत मण्डलों जैसी लगनशील एकोद्देशीय संस्थाओं की व्यवस्था करके समन्वय लाना होगा। ये मण्डल निरोद्देशीय एवं रुचि हीन किसानों से बनी हुई बड़ी-बड़ी समन्वय समितियों से बहुत भिन्न होंगे। इन समितियों के सदस्य वही सक्रिय लोग होने चाहिएं जो कार्यक्रम के अनेक अंगों में रुचि लें और स्वयं कार्यरत होकर अपना उत्तर-दायित्व संभालें। ये केवल प्रचारक या उपदेशक नहीं होंगे अपितु कार्यक्रम के कार्यशील संचालक होंगे।

ऐसी व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर एक समन्वय निदेशक हो सकता है, परन्तु यह जरूरी नहीं कि उसी का निर्णय अन्तिम हो। निदेशक और निर्णायक में भेद है। निर्णय तो सम्भवतया कार्य के भिन्न-भिन्न पक्षों के विशेषज्ञ ले सकेंगे परन्तु चूंकि भिन्न-भिन्न पक्ष आपस में सम्बन्धित हैं, इसलिए ऐसे एक निदेशक की आवश्यकता है जो इन सभी भिन्न-भिन्न पक्षों के तथा उनके आन्तरिक सम्बन्ध के जानकार हों और कार्यक्रम में समन्वय स्थापित रख सकें। इस प्रकार के समन्वय के लिए यह भी जरूरी है कि प्रत्येक संस्था जो भी कार्य करे वह उसकी जानकारी सभी दूसरी कार्यरत संस्थाओं को बता दे। उदाहरणार्थ अनुसंधान वैज्ञानिकों को प्रयोगार्थ खेत निश्चय करने से पहले प्रशिक्षण वर्ग एवं उत्पादन वर्ग दोनों से ही बातचीत करनी होगी। सूचना प्रसार अधिकारियों को चार्ट एवं पाठ्य सामग्री बनाने से पहले शोध कर्त्ताओं तथा स्थानीय उत्पादन अधिकारियों की राय लेनी होगी। विस्तार सेवा अधिकारियों से राय लेनी होगी। आकाशवाणी कार्यक्रम प्रसार की व्यवस्था से पहले रेडियो अधिकारियों को शोध कर्त्ताओं, प्रशिक्षकों एवं उत्पादकों से विचार विमर्श करना होगा। यह स्पष्ट है कि जब तक इस प्रकार का समन्वय नहीं होगा, किसान की शिक्षा एवं प्रशिक्षण का कार्य उपयोगी एवं सफल नहीं हो

सकेगा।

किसान शिक्षण की नई विधि बड़ी गहन है। इसका उद्देश्य किसान को एक व्यक्तिगत उत्पादक के नाते प्रशिक्षित करना है, उत्पादक के व्यक्तिगत प्रशिक्षण के लिये कृषि उत्पादन की योजना का होना आवश्यक है और खेती योजना तो प्रशिक्षण योजना का एक अभिन्न अंग है। कृषि उपज की परियोजना बनाने के कार्य में पहले इसलिए असफलता रही क्योंकि परियोजना बनाना प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अथवा कार्यक्रम का अंग नहीं रखा गया और न ही किसी विशेष उत्पादन कार्य का। पहली योजनाओं में सभी अंगों को समेट कर एक विस्तृत कार्यक्रम बना दिया गया।

वास्तव में, किसान प्रशिक्षण का आरम्भ कृषि के किसी साधारण परन्तु आवश्यक अंग से होना चाहिए जैसे उत्पादन सामग्री कार्ड अथवा एक पुस्तिका की तैयारी जिसमें भिन्न-भिन्न फसलों के लिए अलग-अलग कार्ड लगाये गये हों, जिनमें प्रत्येक फसल के लिए आवश्यक सामग्री हों अथवा बीज, खाद और कीट-नाशक दवाई आदि का विवरण हो और किसान उस फसल के लिए क्या-क्या करे, इसकी जानकारी दी गई हो। सभी फसलों के लिए समान आधारभूत जानकारी पुस्तिका के ऊपर जिल्द पर दी जा सकती है। इस प्रकार की पुस्तिका प्रत्येक किसान की निजी आवश्यकताओं के अनुसार जानकारी का उपयोगी साधन बनेगी और उसके प्रशिक्षण में स्थाई तौर पर साथ देगी। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जायेगा और उपज उन्नत होगी, वैसे-वैसे यही पुस्तिका बड़ी परियोजना बनाने में सहायक होगी। प्रशिक्षण विभाग समय-समय पर जो जानकारी देता रहेगा या अनुसंधान विभाग जो नई सूचनाएं भेजेगा, वे सब इसी पुस्तिका के पन्नों के बराबर नाप के पन्नों में तैयार करके इसी पुस्तिका में लगा दी जायगी और इस प्रकार यह पुस्तिका किसान के लिए बहुत उपयोगी बनती चली जायेगी।

जो कुछ कहा गया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि किसान प्रशिक्षण योजना केवल प्रयोग प्रदर्शन, प्रशिक्षण शिविर और चर्चा मण्डल तक ही सीमित है। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि किसान प्रशिक्षण योजना का संचालन संस्थागत आधार पर निश्चित कार्यालय स्थान से जुड़ा हुआ होना चाहिए। यह कार्यालय या तो विश्वविद्यालय का कृषि विभाग या ग्राम सेवा प्रशिक्षण केन्द्र या इसी प्रकार का कोई और दूसरा उपयुक्त स्थान हो सकता है। यह कार्यालय प्रशिक्षण कार्य का आधार ही नहीं होगा बल्कि साथ-साथ विशेष आवश्यकतानुसार छोटे समय के और भी प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था और संचालन करेगा।

भारी उपज के तथा मिली जुली बहुफसली खेती के कार्यक्रमों की नयी तकनीक में एक विशेषता यह है कि अभी तक खेती के जिन कार्यक्रमों की किसान को परवाह नहीं थी, वे अब उसके लिए उत्पादन कार्य का महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं। उदाहरणार्थ, सिंचाई की नाली बनाना, भूमि संरक्षण, खाद लगाने की नई रीतियां, ट्रैक्टर चलाना, बिजली का प्रयोग और छिड़काव की मशीन आदि आदि। हो सकता है कि सभी किसान इन कार्यों में रुचि न लें परन्तु कुछ तो अवश्य इन्हें महत्वपूर्ण समझेंगे और कुछ तो शायद इन्हें अपना सहायक धन्धा ही बना लें ताकि दूसरों की सेवा भी हो जाये और अपना धन्धा भी। ऐसे सब किसानों के लिए इन विषयों के अल्प कालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था इस कार्यालय पर करनी होगी। प्रशिक्षण काल की अवधि, कार्यक्रम, विषय तथा किसानों की आवश्यकता के अनुसार निश्चित करनी होगी।

किसान प्रशिक्षण योजना में किसान महिलाओं को पहले कोई स्थान नहीं दिया गया और न ही उसके रचनात्मक महत्व को समझा गया। अधिक महिलाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम दस्तकारी और गृह विज्ञान तक ही सीमित थे और वह भी शहरी जीवन पर

आधारित थे। वह प्रशिक्षण भी उपयोगी अवश्य रहेगा विशेष कर अन्न की नई किस्मों और भोजन की सहायक वस्तुओं की पोषण शक्ति को समझने और उनसे लाभ उठाने के लिए, परन्तु वास्तव में तो कृषि विज्ञान की क्रियात्मक कलाओं का ज्ञान भी महिलाओं को दिया जाना चाहिए जैसे पशु पालन, मुर्गी पालन और दुग्ध उत्पादन आदि आदि।

किसान प्रशिक्षण योजना की नयी धारणा की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में देश के भिन्न भिन्न भागों में महिलाएं जो कार्य बहुधा करती हैं, उनको जानकर उन्हीं के आधार पर महिलाओं के प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बनाना होगा। किसी किसी क्षेत्र में महिला श्रमिक खेती की मालिक महिलाओं से भिन्न होती हैं और प्रशिक्षण खेती के मालिकों का ही होता है, तो ये श्रमिक प्रशिक्षण से बिल्कुल दूर रह जाते हैं। इसलिए पुरुष और महिला श्रमिकों दोनों को ही और महिलाओं को विशेषकर प्रशिक्षण देने के लिए विशेष प्रयत्न करने होंगे और किसानों की स्त्रियों को तो चाहे वह खेती न भी करती हों, तो भी प्रशिक्षण में शामिल करना ही चाहिए क्योंकि कृषि योजना बनाने में और निर्णय करने में इन महिलाओं का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है।

निरक्षर किसानों को साक्षर बनाने का कार्यक्रम भी पहले किसान प्रशिक्षण योजना का अंग नहीं था। साधारणतया यह समझा जाता है कि कृषि ज्ञान प्राप्ति के लिए किसान को केवल सुनना और देखना काफी है। निरक्षरता उसके मार्ग में बाधक नहीं है। आमतौर पर यदि इस तथ्य को ठीक भी मान लिया जाये, तो भी इस संदर्भ में दो बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि जैसे जैसे यह तकनोलोजी बढ़ती जायेगी, वैसे वैसे जानकारी का केवल सुन लेना और देख लेना काफी नहीं होगा, बल्कि प्रत्येक तथ्य को समझ कर याद रखने की आवश्यकता होगी। केवल सुन लेने से इसे याद नहीं रखा जा

सकेगा। माना कि किसानों की स्मरण शक्ति काफी होती है परन्तु फिर भी इसकी कोई सीमा है। पढ़ा-लिखा साधन युक्त किसान इस मामले में निरक्षर किसान से बहुत आगे रहेगा। इसलिए सभी किसानों को नई नई विधियों और साधनों से लाभ उठाने का समान अवसर देने के लिये साक्षरता ज्ञान एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है।

दूसरे देखा गया है कि भूमि कानून की अनभिज्ञता छोटे किसानों और कृषि श्रमिकों के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा रही है। न्यूनतम वेतन आदि के और भी दूसरे कानून हैं जो वे नहीं जानते। यह ठीक है कि गांव वाले बहुत से लोग मालगुजारी के कुछ नियमों को समझते हैं, परन्तु फिर भी यदि अधिकतर ग्रामवासी इन कानूनों को और उनके मतलब को समझ सकें तो जीवन बहुत सुखमय हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति को ध्यान में रख कर ही किसान प्रशिक्षण की नई योजना में व्यावसायिक साक्षरता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

व्यावसायिक साक्षरता साधारण साक्षरता से दो प्रकार से भिन्न है, एक तो साधारण पहली पुस्तक के अक्षरों की बजाय इसमें वे शब्द सिखाये जाते हैं जिन्हें किसानों को अकसर अपनी खेती के कार्य में, जमा खर्च का हिसाब रखने में, उधार के लिए प्रार्थना-पत्र देने में, बीज खाद आदि खेती के सहायक साधनों के जुटाने में और भूमि सम्बन्धी कानूनी मामलों में भी काम में लाने पड़ते हैं। अच्छा तो यह होगा कि उसके दैनिक जीवन में काम आने वाले अभिलेख अथवा दस्तावेज ही उसकी पहली पुस्तक बन जायें। अन्यथा कम से कम यह तो होना ही चाहिए कि उन अभिलेखों एवं दस्तावेजों में प्रयोग में लाये गये शब्द ही उनकी शब्दावली बन जायें।

दूसरे व्यावसायिक साक्षरता में शिक्षार्थी साधारण साक्षरता ज्ञान की तरह अक्षरों से पढ़ना नहीं सीखता बल्कि वह जिन शब्दों

को रोज रोज सुनता और काम में लाता हैं उन्हीं के द्वारा पढ़ना और लिखना आरम्भ से ही सीखने लगता है। वह खाद और बीज आदि के नाम पढ़ने और लिखने के लिए ६ महीने तक अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लेने के लिए नहीं ठहर सकता।

किसान प्रशिक्षण और शिक्षा की नयी योजना की मुख्य धारणा के यही कुछ अंग हैं। इनको कुछ घटाया बढ़ाया भी जा सकता है और वास्तव में योजना के आरम्भ में ये नहीं थे। ये तो योजना की प्रगति के साथ-साथ अनुभव और आवश्यकता के आधार पर बढ़ते चले गये हैं। किसान प्रशिक्षण की एक विशेष योजना को कार्यान्वित करने में जो अनुभव हुए उन्हीं के आधार पर प्रशिक्षण की धारणा नया रूप लेती चली गयी। इस योजना का वर्णन पुस्तक के अन्तिम अध्याय में किया गया है।

अध्याय ३

किसान प्रशिक्षण पद्धति

सब जानते हैं कि प्रौढ़ों को प्रशिक्षित करना युवकों को प्रशिक्षित करने से भिन्न है। फिर भी भारत में और सभी विकासशील देशों में प्रौढ़ों की शिक्षा के लिये चाहे वे किसान हों अथवा श्रमिक और चाहे महिलाएं, लगभग वही पद्धति अपनाई जाती है जो बच्चों के लिये। यह ठीक है कि गत चालीस वर्षों में प्रौढ़ साक्षरता प्रसार के लिये अनेक पद्धतियां प्रचलित की गई और कुछ बड़ी सफल रहीं। परन्तु वे साधारणतया प्रौढ़ मनोविज्ञान पर आधारित नहीं थीं। जब कभी प्रशिक्षण कार्यक्रम का लक्ष्य विषय ज्ञान और सूचनात्मक जानकारी देना होता है, तो आमतौर पर इस कार्यक्रम के लिये एक पाठ्यक्रम बनाया जाता हैं। निर्धारित पाठ्यक्रम को सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक भागों में बांटा जाता है। आमतौर पर ऐसा सोचा जाता है कि पहले विषय का सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाना चाहिये और क्रियात्मक उपयोग उसके बाद समझा जा सकेगा। यह मानते हुए भी कि प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य अभीष्ट आचार व्यवहार का निर्माण करना, सम्बन्धित विषयों की जानकारी देना, साधारण ज्ञान वर्धन करना और व्यावसायिक कला ज्ञान देना है, इस ज्ञान का प्रशिक्षण उसी तरीके से दिया जाता है जैसे युवक विद्यार्थियों को। केवल एक अन्तर जो कभी कभी देखने में आता है वह यह है कि विद्यार्थियों के प्रशिक्षण में कभी कभी खेल पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

अब समय आ गया है जब यह जान लेना चाहिये कि विशेषकर विकासशील देशों में जहां विकसित देशों जैसा स्वयं शिक्षण

का वातावरण नहीं है, प्रौढ़ शिक्षण के कार्यक्रम को उपयोगी बनाने के लिये विशेष रूप देना होगा। इस विचारधारा का विशेष कारण है।

सबसे पहले तो प्रौढ़ लोग (पुरुष एवं महिलाएं) किसी न किसी धन्धे में व्यस्त हैं। यदि वे अपने अपने काम में भली प्रकार दक्ष न हों तो गुजारा नहीं हो सकता। उन्हें किसी काम करने के लिये प्रशिक्षण नहीं चाहिये। बल्कि वे जिस काम में पहले से लीन हैं, उसी में अधिक निपुण होना चाहते हैं। इसलिये उनको किसी व्यवसाय के लिये तैयार करने का ज्ञान देने की बात निर्मूल और असंगत है।

फिर प्रौढ़ों के ज्ञान तत्व एक सीमित क्षेत्र में बंधे होने के कारण उनमें पढ़ाई करके स्मरण करने की शक्ति भी सीमित हो चुकी होती है। इसलिये प्रौढ़ों से यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि बालकों की तरह इच्छा होने या न होने के बावजूद भी वे पढ़ लेंगे।

प्रौढ़ों के साथ तो सीखने जानने की इच्छा केवल दैनिक जीवन स्वयं और परिवार से सम्बंधित, व्यवसाय या समाज से सम्बन्धित व्यावहारिक समस्याओं पर ही आधारित होती है और इन्हीं के साथ जागृत होती है। ऐसा सम्बन्ध जुड़ जाने पर पढ़ाई के काम से उसका व्यक्तित्व संगठित हो जाता हैं। परिणामस्वरूप उसकी मानसिक शक्तियां जागृत हो जाती हैं और मस्तिष्क के सोये हुए कक्ष भी क्रियाशील हो जाते हैं।

और अन्त में, यह भी ठीक है कि प्रौढ़ शिक्षण में यदि कक्षा पद्धति अपनाई जाये, तो वह उन्हें बड़ी कष्टदायक जान पड़ेगी। इसका कारण केवल कक्षा का अनुशासन ही नहीं हैं, बल्कि ऐसा होने पर प्रौढ़ों को ऐसा जान पड़ता है जैसे बचपन उन पर जबरन लाद लिया गया हो। कक्षा में बैठकर बालकों की तरह से विषय ज्ञान दिया जाना प्रौढ़ों को कभी पसन्द नहीं होता।

अनेक विकसित देशों में कई सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर प्रौढ़ शिक्षण शैली का निर्माण किया जा रहा है। और अब तो इसका एक नया नाम ही "एन्ड्रोगोगिक्स" प्रचलित हो गया है। वैनीज़ूएला के एक प्रौढ़ शिक्षा विशेषज्ञ डा० एडम्स ने स्पैनिश भाषा में इस विषय पर एक पुस्तक लिखी है उनका दिगदर्शन कराया है। पश्चिम में विशेषकर इंगलैंड में तो किसी श्रमिक शिक्षा का लम्बा अनुभव पर्याप्त है। परन्तु इंगलैंड में किसी विशेष पद्धति पर कोई विचार नहीं किया गया है क्योंकि वहां पर औद्योगिक प्रगति के उस स्तर पर श्रमिकों को पदोन्नति के इतने अवसर थे, कि उन के प्रशिक्षण में कोई भी पद्धति सफल हो सकती थी।

बाद में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में और कुछ हद तक रूस में भी प्रौढ़ शिक्षण पद्धति की विशेषताओं को सोचा समझा गया। अमेरिका में तो औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं एवं अधिकारियों के लिये सतत प्रशिक्षण की आवश्यकता ने इस ओर ध्यान दिलाया। औद्योगिक शिक्षण के इस कार्यक्रम में ऐसा अनुभव किया गया कि इस वर्ग के लिये शिक्षा पद्धति और कार्यशैली विशेष प्रकार की बनानी होगी। रूस में देश के एशियाई भाग में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रौढ़ साक्षरता और शिक्षा का जो अनिवार्य कार्यक्रम चलाया गया, उसके मार्ग में अनुभव की गई समस्याओं के आधार पर इसकी आवश्यकता समझी गई।

परन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में तो उन दिनों में देशोन्नति की चाह और प्रयत्नशीलता के सामने किसी भी विशेष पद्धति का विचार करना तो असंगत ही लगा और इसी उतावले पन के कारण हमने भारी नुकसान उठाया है। प्रौढ़ शिक्षा का आरम्भ १९३६-३७ में होने पर भी गत चालीस वर्ष में भी हमें प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

अब समय आ गया है जब हमें प्रौढ़ शिक्षण की विधियों पर

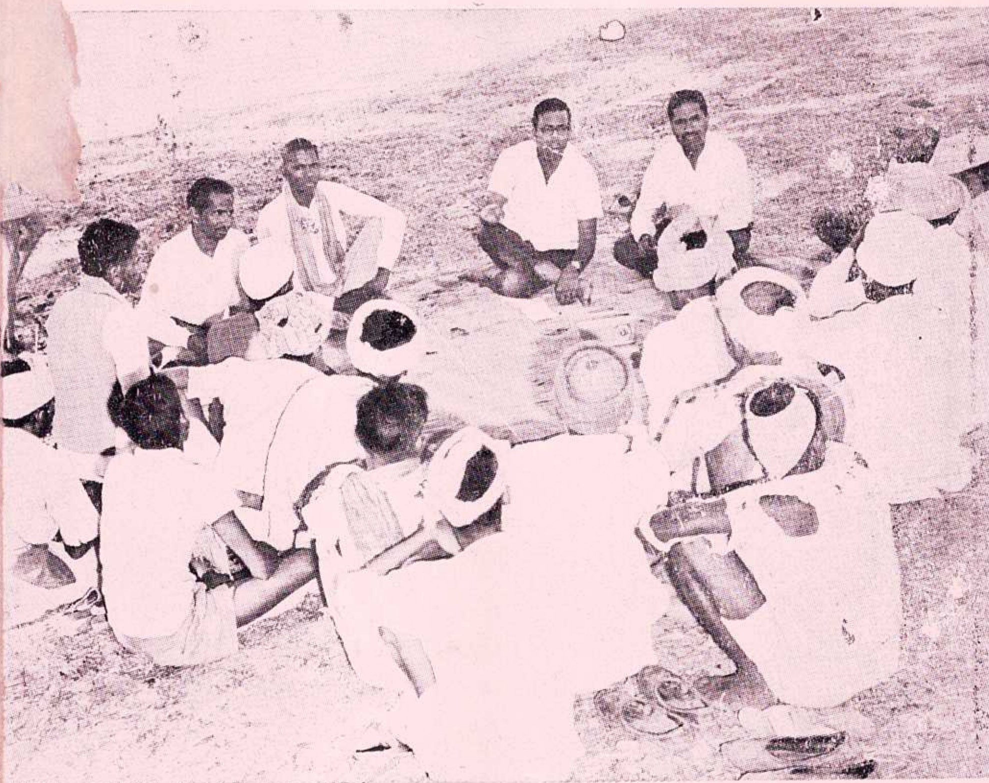

विस्तार कार्यकर्त्ता किसानों के साथ चर्चा करते हुए ।

आलुओं को कीड़ों से बचाने के लिए रासायनिक दवाई को मिट्टी में मिलाते हुए——नीलगिरी पहाड़ियां
(भारत जर्मनी योजना)

विशेष ध्यान देना चाहिये। ऐसा करने में यह ध्यान रखना भी जरूरी है कि हर वर्ग के प्रौढ़ों को एक ही जैसी पद्धति उपयोगी न होगी। वास्तव में, देश के अथवा एक राज्य के सभी प्रौढ़ों के लिये एक ही प्रकार से सामूहिक रूप में जन शिक्षा के कार्यक्रम की व्यवस्था करने की बात सोचना एक दम असंगत है। प्रौढ़ तो व्यवसाय की, बस्ती की एवं ऐसे ही किसी और समानता के आधार पर वर्ग विशेष में काम करते हैं। इसलिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधि, सब को इसी आधार पर शिक्षार्थियों से सम्बंधित करना होगा तभी वह उन्हें रुचिकर होगा।

अभी हम किसान प्रशिक्षण की बात कर रहे हैं। अर्थात् हम भारतीय किसान को ऐसी जानकारी और योग्यता देने की बात कर रहे हैं जिससे वह कृषि प्रधान और मुख्यतया ग्रामीण भारत को परिस्थितियों में खेती में पूंजी लगाने में और कृषि उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ाने में समर्थ हो जाये।

भारतीय किसानों में कृषि उत्पादन की नई टैकनीक ने नये ज्ञान को जान लेने की इच्छा जागृत कर दी। उत्पादन की इस नई युक्ति से भूमि की उपज शक्ति और कृषि उत्पादन को जो बढ़ावा दिया, उस से किसानों को नई जानकारी प्राप्त कर लेने की प्रेरणा मिलीं। नई तकनीक का अभिप्राय केवल नये बीजों से ही नहीं है, हालांकि नये बीज अधिक उत्पादन का एक मुख्य आधार है। इस तकनीक में भूमि के अन्दर प्राप्त पानी का उपयोग, सिंचाई की व्यवस्था, बहुफसली कार्यक्रम, पशु नसल सुधार कार्य, मुर्गीपालन के नये तरीके तथा भंडार विधि आदि सभी बातें शामिल हैं। इसमें तो कृषि उत्पादन की सभी नई क्रियाएं, नये यंत्र, नये साधन तथा नये तरीके सभी शामिल हैं।

उपज के अच्छे दाम प्राप्त करने की इच्छा भी बड़ी प्रेरणा दायक है। किसानों के अनाज को अधिक लाभदायक दरों पर

बिकवाने की सरकारी नीति ने भी कृषि उत्पादन के कठिन कार्य क्रम के विकास में बड़ी प्रेरणा दी है। इसके द्वारा किसानों को उपज के अधिक से अधिक दाम प्राप्त करने के भेद मालूम हो गये। उनको बिचोलियों के पंजे से छूट मिली और स्वयं मंडियों तक पहुंचने का रास्ता मिल गया। उपज की ढुलाई के साधन मिल गये और भंडारण की युक्तियां भी समझ में आ गई।

उपज के अधिक उत्पादन में लगाने के लिये और उपज से प्राप्त धन को सुरक्षित ढंग से निवेश करने के साधनों की जानकारी एक और प्रेरणा का साधन है। इसका अर्थ केवल सहकारी संस्थाओं से धन का लेन देन ही नहीं। इसमें बैंकों से भी लेन देन की व्यवस्था शामिल है। कृषि के अनेक साधन हैं और उन साधनों की प्राप्ति के लिये है अनेक संस्थाएं। देश का किसान इन सभी साधनों, जिनमें अच्छे बीज और खाद भी शामिल हैं और संस्थाओं की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हैं और उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लाभ उठाना चाहता है। इन सभी साधनों से उपयोग प्राप्त करने की जानकारी एवं योग्यता उसको प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने की प्रेरणा देगी।

प्रौढ़ किसान के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में प्रेरणा देने के इन नये तथ्यों एवं व्यक्तियों की पृष्ठभूमि के आधार पर ही शिक्षक अथवा प्रशिक्षक के गुणों को जाँचना होगा। किसानों का शिक्षक केवल कक्षाई अध्यापक नहीं होगा और न ही वह कोई आंशिक समय में प्रौढ़ों की शिक्षा में भाग लेने वाला विद्यालयी शिक्षक होगा। किसानों के सफल शिक्षक अब कई विभागों के विशेषज्ञ होंगे। उदाहरणार्थ प्रयोगशाला की सीमाओं में अनुसंधान करने वाला वैज्ञानिक अब किसानों का उत्तम शिक्षक तथा रहनुमा हो सकता है इसलिये उसे किसान प्रशिक्षण के नियम जानने होंगे। इसी प्रकार कृषि अभियन्ता जो अभी तक कृषि के काम की मशीनें बना रहे थे या प्रदर्शित कर रहे थे अथवा बेच रहे थे अब किसानों

को इन मशीनों का उपयोग एवं उनके प्रयोग के तरीके समझाने के लिए किसानों के शिक्षक एवं रहनुमा बन सकते हैं।

धन उधार देने वाली अनेक संस्थाओं के दलालों को भी अब केवल उच्च अधिकारियों के आदेशानुसार रुपया उधार ही नहीं देते बल्कि लेन देन का उपयोग सिखाते हैं। इस प्रकार की निरीक्षित उधार योजना तो काफी पुरानी है परन्तु वास्तविक प्रयोग अभी हुआ है। इसका अभिप्राय है कि उधार देने वाले अधिकारी केवल रुपया उधार देने के ही उत्तरदायी नहीं है बल्कि उधार दिया गया रुपया किस काम में लिया जाना है और कैसे, यह भी सब उनको जानना होगा, और इसके उचित सदोपयोग पर निगरानी रखनी होगी। इस कारण से उन्हें किसानों की आवश्यकता को जानना होगा, उसे धन देकर उसका उपयोग सिखाना होगा और उसके प्रश्नों के उत्तर देने की योग्यता अपने में पैदा करनी होगी। कभी-कभी उनको कमाई बढ़ाने के साधन भी सिखाने बताने होंगे ताकि वे उधार लिये हुए रुपये को लौटाने के लिये अपनी जरूरत से अधिक कमा सकें, रुपया बचा सके और और बैंक में अपना हिसाब भी खोल सके। इन सब के लिए उन्हें किसानों का रहनुमा बनना होगा।

इसी प्रकार मंडी समितियों के मंत्रियों का दायित्व भी अब केवल माल की नीलामी की व्यवस्था करना नहीं है, बल्कि उन्हें किसानों के हित को सोचना है। ऐसा प्रभावशील तरीके से करने के लिये उन्हें किसानों को माल के भण्डारण के तथा मूल्यों की गति विधियों को समझने के कुछ मोटे-मोटे भेद समझाने होंगे ताकि किसान अनाज मण्डियों की चालों को समझ सकें और लाभ उठा सकें।

बीज और खाद बेचने वालों को भी केवल अपने माल की ग्राहकी ही नहीं बढ़ानी है, बलिक उसे काम में लेने वाले किसानों को उसके उपयोग और तरीके भी सिखाने हैं, उपरोक्त सभी भिन्न

भिन्न विभागों के कार्यकर्त्ता तथा अधिकारी एक प्रकार से उतने ही शिक्षक हुए जितने कि कृषि विस्तार विभागों के कार्यकर्त्ता जो अधिकारियों द्वारा बताई गई बातों को किसानों तक पहुंचाते हैं।

इसलिये सामायिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये यह सारा ही वातावरण बदलना होगा और इन सभी विभागों के कार्यकर्त्ताओं को किसान के प्रशिक्षण का दायित्व संभालना होगा। इस प्रकार ये सभी लोग मिलकर एक नई शिक्षक समाज बनाएंगे।

आज तक के अनुभव के आधार पर विशेषकर भारतीय परिस्थितियों में प्रौढ़ किसानों के प्रशिक्षण की उपयोगी विधियों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

पहली मुख्य बात तो समस्या को समझ लेने की है, समस्या की जानकारी में किसानों, पशुपालकों, मुर्गीपालकों और इसी प्रकार के उत्पादन कार्यों में लगे हुए अन्य सभी उत्पादकों को उत्पादन की, नई तकनीकों के प्रयोग में जो भी कठिनाइयाँ आती हैं, वे सभी बातें शामिल है। स्थानीय परिस्थितियों के कारण भी इन लोगों को अपने धन्धे में जो कठिनाइयाँ आती हैं, वह भी शामिल हैं, चाहे वे स्थल सम्बन्धी हों, चाहे माटी सम्बन्धी चाहे जल वायु सम्बन्धी और चाहे आर्थिक स्थिति सम्बन्धी हों। ये समस्याएं सरकारी अर्थ एवं प्रशासनिक नीतियों से भी सम्बन्धित हो सकती हैं। किसानों को नई तकनीकों की जानकारी देने के लिये जो भी शिक्षक, पथ प्रदर्शक अथवा प्रशिक्षक प्रयत्न करना चाहें, उसको अपना कार्य आरम्भ करने से पहले प्रशिक्षार्थियों की इन समस्याओं को भली प्रकार समझ लेना होगा। बिना इसके प्रशिक्षण का प्रयोग विफल हो जायेगा।

समस्याओं को समझ लेने का यह सिद्धान्त मौखिक रूप से तथा प्रयोगात्मक रूप से प्रशिक्षण देने वालों के दोनों के लिये बराबर लागू होता है। इसलिये इस प्रयोग के लिये किसी भी बड़े क्षेत्र के लिए एक जैसा पाठ्यक्रम सफल नहीं होगा। प्रत्येक

वर्ग तथा प्रत्येक क्षेत्र के लिए उनकी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार समस्याओं के समाधान का पाठ्यक्रम ही भिन्न-भिन्न ढंग का बनाना होगा। तब ही यह सफल हो सकता है।

दूसरी मुख्य बात समन्वय की है। समन्वय कोई नया शब्द नहीं है। इस सिद्धान्त का वर्णन अथवा उपयोग तो महात्मा गांधी ने कितने ही वर्षों पहिले बालकों की बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किया था और महात्मा गांधी तो संसार के महान प्रमुख शिक्षकों में थे। मेरा यह विश्वास है कि समन्वय का यह सिद्धान्त प्रौढ़ों के शिक्षण में बालकों की शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

बालक खेल-खेल में अधिक सीखते हैं क्योंकि उनके लिये शारीरिक अंगों का प्रयोग एवं मस्तिष्क का प्रयोग दोनों साथ-साथ चलते हैं और दोनों ही भाव विकास के साधन हैं। खेल, कूद, नाटक, वाद-विवाद, संगीत एवं चित्रकला आदि सभी क्रियाएं बालकों को विचार व्यक्त करने का अवसर देती हैं। इसलिए महात्मा गाँधी का समन्वय से जो तात्पर्य था वह करने और सीखने अथवा कार्य करते-करते सीखने से सम्बन्धित था, क्रियात्मक शिक्षण से था, जो यथा समय करने और कमाने अथवा सीखते रहने और साथ-साथ कमाते रहने से सम्बन्धित हो जाता था। इस सिद्धान्त को प्रौढ़ किसानों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अब हमें नये सिरे से विचारना होगा। किसानों के लिए उत्पादन करते-करते कार्य सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करते रहने की बात तो शिक्षा प्राप्ति की मूल प्रेरणा देगी। किसान ऐसी पढ़ाई में कभी रुचि नहीं लेगा जो उसके उत्पादन कार्य से सम्बन्धित न हो और उसमें उसकी सहायक न हो। परन्तु किसान प्रशिक्षण के सम्बन्ध में समन्वय का केवल इतना ही अर्थ नहीं है। यहां समन्वय का अभिप्राय खेती के पूरे कार्यक्रम की जानकारी देना है।

कृषि उत्पादन की भिन्न भिन्न क्रियाएं एक ही शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के समान हैं। यदि कोई चिकित्सक शरीर के

एक अंग का उपचार बिना उसके दूसरो अंगों से सम्बन्ध का ध्यान किये करता है तो वह अवश्य असफल रहेगा। इसलिये कृषि उत्पादन में समन्वय का अर्थ है कि सिंचाई के साधनों की उपलब्धि से सम्बन्ध रखने वाला अधिकारी खाद की आवश्यकता का भी जानकार हो। इसी प्रकार कीट नाशक दवाईयों के प्रबन्ध करने वालों को उन दवाईयों के मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का भी ज्ञान होना चाहिये।

किसान प्रशिक्षण कार्य में समन्वय का एक दूसरा पहलू यह भी है कि किसान को अपने कार्य सम्पादन में अनेक संस्थाओं से काम पड़ता है। कुछ संस्थाएं रुपया उधार देती हैं, कुछ यंत्र और साधन और कुछ पथ प्रदर्शन तथा खोज परिणामों की जानकारी। किसान प्रशिक्षण कार्य में समन्वय का अर्थ होगा कि प्रशिक्षण कार्य की व्यवस्था से पहिले प्रशिक्षक इन सभी संस्थाओं के योगदान को भली प्रकार समझ लें और प्रशिक्षण देते समय इन सभी संस्थाओं की कार्यविधि एवं कृषि उत्पादन में उनके योगदान की चर्चा करें।

अनेक बार ऐसा होता है कि प्रशिक्षक एक विषय की चर्चा करते करते उसे भली प्रकार समझने के लिये अनेक दूसरे विषयों पर पहुंच जाते हैं। इन सभी परिस्थितियों को समझ लेने पर ही कार्य सफल हो सकता है। उदाहरणार्थ हिमाचल प्रदेश में जब विकास योजना अधिकारियों ने मण्डी जिले के कुछ ऊंचाई पर स्थित गाँवों में दूध केन्द्र खोलने की योजना बनाई तो उन्होंने यह सोचा भी नहीं था कि उन्हें इस योजना में क्या समस्यायें आयेंगी। उन्होंने दूध देने वालों को वहीं पर नकद दाम देने की योजना बनाई। इससे दूध वालों को अधिक दूध उत्पादन करने का प्रोत्साहन मिला। इसके लिए उसे चारे की अधिक आवश्यकता हुई। चारा तो मिलता था। परन्तु अभी तक किसान वहीं पर चरागाह बनाने के लिए प्रयत्नशील नहीं था और न ही उन्होंने वन विभाग से इसकी माँग की थी जिसका उन्हें अधिकार था। क्योंकि अभी

तक उन्हें इसके लिए प्रेरणा नहीं मिली थी और जो भी घास उगती थी उसे वन विभाग नीलाम कर देता था।

परन्तु दूध केन्द्र की स्थापना ने तो परिस्थिति ही बदल दी। अब किसानों को चारे की आवश्यकता थी और वह अपनी जगह पर ही अधिकतम उपयोगी चारा प्राप्त कर लेना चाहते थे। इसी दौरान में योजना अधिकारियों ने पशु नसल सुधार के लिए भी कार्य आरम्भ कर दिया। अब अच्छे चारे की हरे और सूखे दोनों की और भी आवश्यकता बढ़ी। परिणाम स्वरूप वन विभाग और किसानों में एक नया सम्बन्ध बना और गांव शामलात जमीन पर चरागाह बनाने की और चारा पैदावार करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भूमि सुधार की और संरक्षण की जरूरत भी पड़ी। तो इस प्रकार का एक कार्य-क्रम से बढ़ते बढ़ते कई कार्यक्रम आ जुड़े और यह किसान प्रशिक्षण में समन्वय तथा सह सम्बन्ध का सुन्दर उदाहरण बन गया। इसी प्रकार सिंचाई के साधनों, कृषि यन्त्रों, भण्डार विधियों तथा बचाव के तरीकों की बातें सबकी सब ऐसी जुड़ी हुई हैं कि इन सभी बातों पर सह सम्बन्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम का ही अंग है।

अब हमें क्रियात्मक प्रयोगों और प्रदर्शनों पर विचार करना होगा। क्रियात्मक प्रयोग और प्रदर्शन, प्रयोगशालाओं के प्रदर्शनों से भिन्न हैं। ये प्रयोग तो किसानों के साथ-साथ उत्पादन के क्षेत्र में ही किये जाते हैं। इन प्रयोगों को स्वयं किसान अपने हाथों से विस्तार सेवा अधिकारियों एवं वैज्ञानिकों की देख रेख में उनके आदेशानुसार करते हैं। यदि प्रशिक्षण अधिकारी स्वयं भली प्रकार इस प्रयोग के हर पहलू से पूरी तरह अवगत नहीं है तो ये प्रयोग कभी भी सफल नहीं हो सकते और न ही लाभप्रद। इसी वजह से १६५० के दशक में ग्राम सेवक लोग इस कार्य को सफलता से नहीं कर सके और क्रियात्मक प्रयोगों को सफल बनाने के लिए पूसा प्रतिष्ठान के तथा अन्य कृषि विश्वविद्यालयों के

वैज्ञानिकों को स्वयं को प्रदर्शन करने और समझाने के लिए उत्पादन क्षेत्रों और खेतों पर जाना पड़ा।

धनी खेती विकास योजना तथा खेती की भारतीय जर्मनी तथा भारतीय जापानी योजनाओं को सफल बनाने के लिए भी इसी प्रकार उच्च कोटि के वैज्ञानिक को स्वयं योजना में सम्मिलित किसानों के खेतों पर जाना पड़ा। प्रौढ़ कृषि प्रशिक्षण योजना में क्रियात्मक प्रयोगों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार का प्रयोगात्मक सहकार अन्य प्रशिक्षण कार्य से भिन्न है। इसमें बार-बार बताने या सुधार करने की आवश्यकता नहीं है। सुधार तो किसान के भूल करने पर ही आवश्यक होगा जिसकी प्रयोगात्मक रूप में अधिक गुंजाइश नहीं है। कार्यक्रम की इस विधि में "यह करो, यह मत करो", का कोई स्थान नहीं है और न ही वह तर्क संगत है। इसमें तो प्रशिक्षक को स्वयं बड़े ध्यान से सही सही प्रयोग करके दिखाना होगा और सही प्रयोग कर लेने के योग्य किसान को बनाना होगा, तब ही उसे इस प्रशिक्षण कार्य में श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है।

चौथा सिद्धान्त विषय के वर्तमानतम ज्ञान और जानकारी का है। इसके लिए अनुसंधान एवं प्रशिक्षण विभाग के गहरे ताल-मेल की आवश्यकता है। इसके अनेक नाम दिये गये हैं। कभी इसको अनुकूलित अनुसंधान कहा जाता है और कभी क्षेत्रीय समस्या ज्ञान। कुछ भी हो, मूल बात यह है कि प्रशिक्षक को जो भी वह हो, विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए। युवक प्रशिक्षार्थियों के साथ तो कभी कभी थोड़े ज्ञान से भी काम चल जाता है, क्योंकि नौजवानों को यही कुछ मूल सिद्धान्त समझने समझाने होते हैं जो स्थायी मूल्य के होते हैं और उनके व्यक्तिगत विकास के लिए जरूरी हैं। परन्तु यहां उन प्रशिक्षार्थियों का जिकर कर रहे हैं जिनका व्यक्तित्व पक चुका है। इनके साथ यदि प्रशिक्षक सफल होना चाहता है और श्रद्धा उपस्थित करना चाहता है तो उसे स्वयं को विषय का पूरा और

आधुनिकतम ज्ञान होना जरूरी है। उसे बराबर नई से नई पत्रिकाएं पढ़ते रहना चाहिए। वैज्ञानिकों से विचारों का आदान-प्रदान करते रहना चाहिए और आधुनिकतम जानकारी के लिए पत्रिकाओं को पढ़ते और समझते रहना चाहिए। अधिकारियों के साथ पत्र व्यवहार करके शंका निवारण करना चाहिए और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसे सभी सूचनात्मक सरकारी विज्ञापनों का भण्डार अपने पास बनाना चाहिए। ये सब कार्य बहुत कम कृषि विस्तार एवं प्रशिक्षण अधिकारी करते हैं। बहुतों को तो विषय ज्ञान सम्बन्धित सरकारी सूचना एवं घोषणा पत्रों का पता भी नहीं होता और बहुत से समय पड़ने पर उन्हें ढूंढते-फिरते हैं।

भारत में बहुत से कृषि विस्तार सेवा अधिकारी ऐसे हैं जो भारतीय तथा विदेश कृषि ज्ञान के पत्र, पत्रिकाओं के सम्बन्ध में बहुत उदासीन तथा अनभिज्ञ हैं। या तो उसके पास पत्रों के अध्ययन का समय नहीं है या वे समय निकालना ही नहीं चाहते। ऐसे कार्यकर्त्ता सब अपने कार्य में असफल हो जायेंगे। क्योंकि किसान को तो रेडियो और चित्रपट के द्वारा उससे भी अधिक जानकारी है। वे अब उस नये संसार में रह रहे हैं जिसमें विचारों के आदान-प्रदान के अनेक साधन हैं और जानकारी की गति बड़ी तीव्र है। वाक्य की गति बहुत तेज है और गप्प की शक्ति बहुत अधिक। गप्प कोई कुप्रभाव का ही नाम नहीं है। गप्प तो सभी नई और आश्चर्यजनक बातों पर लागू होती है और किसानों पर भी इसका प्रभाव होता है और वे नई से नई बातों को बहुत जल्दी जान लेते हैं। यदि प्रशिक्षण अधिकारी इस नये ज्ञान से अनभिज्ञ होगा तो प्रशिक्षार्थियों पर उसका कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

विचारों के आदान-प्रदान तथा संचालन सेवा में बराबरी का होना एक और महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय है सीखने वालों और सिखाने वालों में एक बराबरी के वातावरण की व्यवस्था। ऐसे ही वातावरण की कमी अकसर देखी गई है चाहे

वह प्रशिक्षण और किसानों के बीच की बात हो और चाहे कृषि मेलों में प्रदर्शन करने वालों में अथवा साधन उपलब्ध कराने वालों के बीच की बात हो और शिक्षक अथवा सरकारी कृषि विस्तार अधिकारी तो संचार सेवा में दूरी की कमी के इस सिद्धान्त का सबसे अधिक शिकार देखा गया है। ये दोनों ही स्वभाविक रूप से किसानों को कुछ न्यून जानकारी वाला समझते हैं। इस स्वभाव को त्यागना होगा। विचारों के आदान-प्रदान के रास्ते में यह असमानता बड़ी बाधक है।

संचार माध्यम के बारे में भी यह बात बड़ी सही है। माध्यम के द्वारा जिसके लिए कोई बात कही जा रही है, उसका भी बड़ा गहरा सम्बन्ध है। कभी कभी रेडियो पर कही गई बात ऐसे ढंग से कही जाती है जिससे मालूम होता है कि जिसके लिये हम कह रहे हैं वे कोई बहुत न्यून ज्ञान वाले व्यक्ति हैं। इससे सुनने वालों में कोई प्रेरणा जागृत नहीं होती। किसान आखिर समझदार व्यक्ति हैं, उनको बच्चा नहीं समझा जा सकता। उनसे बात सलाह के रूप में करनी होगी, उपदेश अथवा आदेश के रूप में नहीं। पोस्टर और दूसरे दृश्य साधन बनाने वालों को भी इस बराबरी का ध्याय रखना होगा। सूचना मन्त्रालय द्वारा प्रसारित भित्ति पत्र की सफलता का शायद यही कारण है। भित्ति पत्र में दी गई सूचना पाठकों को बराबरी के स्तर पर दो जाती हैं। उनको किसी भी प्रकार अनादर की दृष्टि से नहीं देखा जाता और उनको जिस जानकारी की आवश्यकता रखी जाती है, उसी की जानकारी सलाह के रूप में दी जाती है। इस कारण वह पढ़ा जाता है और पाठकों को वही जानकारी मिल जाती है जो उन्हें पत्र पत्रिकाओं से मिलती।

किसान प्रशिक्षण का अन्तिम सिद्धान्त, जिसकी ओर मैं ध्यान दिलाना चाहूंगा, वह है प्रशिक्षार्थियों में स्वयं अध्ययन करते रहने की योग्यता तथा उत्साह। जब तक लगातार अध्ययन करते रहने

की रुचि पैदा नहीं होगी, प्रशिक्षण कार्यक्रम उपयोगी और प्रभावशाली नहीं होगा। ऐसे अन-उपयोगी असफल प्रयासों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मैंने एक ऐसे क्षेत्र का निरीक्षण किया जहाँ कुछ किसानों को दो मास का प्रशिक्षण दिया गया था और प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षार्थियों में बड़ा उत्साह था। ऐसे बहुत सारे दो मास अवधि के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम दिये गये थे। मैंने अध्यक्ष महोदय से पूछा कि क्या वह पिछले प्रशिक्षार्थियों से सम्बन्धित रहे हैं और क्या वह मुझे उनकी सूची या पते आदि बता सकते हैं। मुझे यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि इस सम्बन्ध में कोई प्रयास नहीं किया गया था और न ही ऐसा कभी सोचा ही गया। सन् ५० के दशक में जितने प्रशिक्षण केन्द्र चलाये गये थे, उनमें से अधिकतर के बारे में यह बात सही है और यही उनकी असफलता के कारण रहा है।

परन्तु पुराने प्रशिक्षार्थियों से केवल सम्बन्ध बनाये रखना ही काफी नहीं है। मूल सिद्धान्त यह है कि किसान के लिए भी आजीवन सीखते रहना उतना ही जरूरी है जितना अन्य व्यवसायी लोगों के लिए। किसानों को भी जब तक हल से अथवा ट्रैक्टर से अथवा पशु-पालन व्यवसाय से सम्बन्ध रहेगा तब तक उसे भी अपनी बैट्री को चालू रखना होगा अर्थात् अपने व्यवसाय सम्बन्धी नई जानकारी और नई तकनीकों से पूरी तरह लैस रहना होगा। भारत जैसे विकासशील देश में अनेक साधन होते हुए भी करोड़ों किसानों के लिए हर समय लगातार लाखों शिक्षकों का उपलब्ध होना असम्भव है, इसलिए जरूरी है कि एक बार प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के बाद किसान स्वयं अध्ययन द्वारा अपने ज्ञान को बनाये रखें और बढ़ाते रहें। यह दो तरीकों से सम्भव है।

एक तो यह हो सकता है कि ऐसे सभी लोगों के साथ बराबर पत्राचार जारी रखा जाये और नई से नई सामग्री सबको बराबर भेजी जाये। चाहे पत्रिका के रूप में, चाहे पत्राचार शिक्षा के पाठ्य-

क्रम के रूप में जिसमें किसानों के प्रश्नों के उत्तर भी उन तक पहुंच सकें। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में भी इस कार्य के विशेष स्तम्भ बनाये जा सकते हैं। उपयोगी पुस्तकों को सस्ते दामों पर बेचने से भी यह कार्यक्रम हो सकता है। ग्रामोफोन रेकार्डो में विशेषज्ञों के विचार भर कर किसानों तक पहुंचाये जा सकते हैं। इनके द्वारा फसल की बीमारियों के दूर करने के उपायों तथा ऐसी ही और समस्याओं पर जानकारी दी जा सकती है। फिल्मस्ट्रिप के द्वारा भी कुछ साधन सम्पन्न लोग इस जानकारी को किसानों तक पहुंचा सकते हैं।

स्वयं अध्ययन करते रहने और आधुनिकतम जानकारी प्राप्त करते रहने के लिए दूसरा तरीका यह हो सकता है कि ऐसे लोगों के समान रुचि आधारित समूह बनाए जाएं और वे लोग आपस में अध्ययन गोष्ठी और बातचीत की व्यवस्था करें। छोटे छोटे समूहों की व्यवस्था जानकारी बढ़ाने का अच्छा उपयोगी प्रयास है। प्रौढ़ लोग आपस में बातचीत करके आसानी से बहुत कुछ सीख जाते हैं, बुद्धि की प्रौढ़ता को जागृत करने का यह अच्छा तरीका है। विचार विमर्श समूहों की स्थापना से एक मनोवैज्ञानिक सफलता मिलती है और यह व्यवस्था व्यवहारात्मक भी है। जरूरी नहीं कि यह समूह केवल विचार विमर्श के लिए ही हों। ये उत्पादन आधारित भी हो सकते हैं। इनके द्वारा किसानों को नई से नई विभागीय जानकारी भी मिल जायेगी और आवश्यकतानुसार उपकरण, सामग्री और साधन प्राप्त करने के लिए वह सम्बन्धित अधिकारियों से सम्पर्क भी कर सकेंगे। रुपये के लेन-देन सम्बन्धी कागजातों पर भी इन समूहों में बातचीत हो सकती है। उनका उपयोग समझा जा सकता है। स्वयं अध्ययन करते रहने के इस प्रकार कई तरीके हो सकते हैं, पर इन सबकी जानकारी तथा प्रेरणा प्रथम प्रशिक्षण के दौरान ही मिल जानी चाहिए।

किसान प्रशिक्षण पद्धति पर बातचीत अधूरी रह जायेगी यदि

एक और बात पर चर्चा नहीं की गई। यह एक नया साधन है जिसका संसार भर में शिक्षण क्षेत्र में बड़ा प्रभाव हो रहा है। वैसे तो जन शिक्षा के श्रव्य दृश्य साधनों की चर्चा फिर की जायेगी। वहां इन साधनों के किसान प्रशिक्षण में उपयोग के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करेंगे। रेडियो, फिल्म तथा दूर दर्शन यन्त्र सभी सूचना प्रचार के साधन हैं। परन्तु प्रौढ़ किसान प्रशिक्षण योजना में इनका उपयोग अभी पूरी तरह नहीं हुआ। प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम में अध्यापक को इन साधनों की सहायता मिलनी तो अभी दूर की बात मालूम होती है, परन्तु गौण रूप में कुछ अनुभव प्राप्त हो जाता है जैसे जो साक्षरता कक्षाओं में पढ़ाया जाता है और रेडियो प्रसार में जो भाषा प्रयोग होती है, उसके सम्बन्ध में।

आकाशवाणी के ग्रामीण प्रसार प्रोग्राम में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया जाता है। स्थानीय लोक गीतों तथा अन्य क्षेत्रीय कार्यक्रम को इससे प्रेरणा मिलती है और कार्यक्रम को समझने में सुविधा रहती है। रूस में केन्द्रीय ऐशियाई राज्यों के लिए जब साक्षरता का कार्यक्रम अनिवार्य किया तो पहले पहले क्षेत्रीय भाषाओं का ही प्रयोग किया गया। रूसी भाषा के शब्दों का ज्ञान बाद में दिया गया। इसके प्रभाव स्वरूप प्रौढ़ों पर सीखने का भार कम हो गया। इथोपिया में दूसरा अनुभव हुआ। वहां पर अमारिक भाषा न जानने वाले किसानों को अमारिक भाषा में कार्यक्रम दिये गये और वे लोग अमारिक भाषा सीख गये क्योंकि पाठ्य विषय उनके जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित थे। इसी प्रकार भारतीय चित्रों में भी जो मनोरंजन से भरे हैं, हिन्दी भाषा का प्रयोग होता है फिर भी देहाती किसान उन्हें देख कर प्रसन्न होते हैं और समझते हैं। यह बात ठीक है कि केवल मनोरंजन वाली फिल्मों का कोई शैक्षणिक महत्व नहीं हैं। फिर भी देखने वाले की खुद की भाषा हो तो समझने में आसानी होगी। नई तकनीकों की जानकारी जल्दी से जल्दी फैलाने के लिए

क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग अधिक उपयोगी होगी। साक्षरता प्रसार कार्य में भी रूसी अनुभव अधिक उपयोगी जान पड़ता है।

जन शिक्षा के साधनों का एक और लाभ यह भी है कि शिक्षक रेडियो तथा दूरदर्शन पर चर्चा किये गये किन्हीं अनुभवों में से भी पढ़ने वालों की रुचि और उपयोग के अनुसार कोई भी विषय छांटकर उस पर चर्चा कर सकता है और अधिक जानकारी दे सकता है। १९६८ में, अरब देश ने दूरदर्शन पर एक साक्षरता कार्यक्रम चलाया था, जिसमें शिक्षा एवं प्रसार क्षेत्र के सभी विशेषज्ञों और साधनों के सहयोग से साक्षरता ज्ञान के विषय को दूरदर्शन कार्यक्रम के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया कि भाषा ज्ञान भी हो गया और विषय की आवश्यक जानकारी भी। इस कार्यक्रम में फिल्म, स्लाइड, ड्रामा, कारटून और कठपुतली सभी का यथाविधि उपयोग किया गया और कार्यक्रम को उपयोग और मनोरंजक बनाया गया। मार्च १९६९ में, महिलाओं को घरों में ही अरबी भाषा सिखाने के लिये सप्ताह में ६ बार रेडियो का १५-१५ मिनट का कार्यक्रम दिया गया। इस कार्यक्रम में गाने भी थे, साज व आवाज दोनों थे और अरबी भाषा के शब्दों की व्याख्या भी।

फ्रांस के आइवरी कोस्ट में किये गये दूरदर्शन पर साक्षरता प्रोग्राम की एक योजना की यूनेस्को द्वारा आयोजित जोन मैडीसन द्वारा की गई सर्वे रिपोर्ट से पता चलता है कि इस योजना में फ्रांस का एक शिक्षक और ओइवरी कोस्ट का एक शिक्षा अधिकारी मिलकर ७५ मिनट का सीधा प्रसारण देते थे। एक बोर्ड पर ४५×९ सें० मी० साइज के मोटे कागज पर शब्द, वाक्यांश और वाक्य लिखकर चिपका दिये गये थे। सफेद गत्ते पर काले चित्र बनाये गये थे और इसी प्रकार फोटोज भी काटकर चिपका कर काम में लिये गये थे। चित्रों का उद्देश्य, शब्दों को पढ़ने और समझने की सुविधा देना था। इसी प्रकार एक पुस्तक के लगभग १२

पाठ्य अंशों की एक फिल्म बनाई गयी थी और पढ़ने और समझाने के लिए उसमें आवाज भरकर सांमजस्य स्थापित किया था।

मैक्सिको में रेडियो, टेलीविजन और जन साक्षरता का मिला जुला पाठ्यक्रम है। रेडियो और दूरदर्शन पर प्रसारित पाठ स्वयं पढ़ने वालों के लिये प्रसारित किये जाते हैं। प्रत्येक पाठ्यक्रम लगभग ६ महीने तक चलता है। दूर दर्शन की ६० फिल्म और रेडियो के ११४ टेप प्रयोग किये गये। पाठ्य-पुस्तकें सरकार द्वारा दी गईं।

अमेरिका में निरक्षर तथा अर्धशिक्षित लोगों के लिये सभी साधन उपस्थित होने पर और अधिकतर जन संख्या के शिक्षित होने पर भी दूरदर्शन पर एक अनुभवी शिक्षक द्वारा शिक्षा के पाठ प्रसारित किये जाते हैं। पाठों को छोटे-छोटे अंशों में बांट दिया गया और दूरदर्शन पर धीरे-धीरे प्रसारित किया गया। इसी प्रकार चित्रों तथा अन्य साधनों की सहायता से एलजीरिया में भी साक्षरता का प्रयोग किया गया जो राष्ट्रीय साक्षरता केन्द्र द्वारा अरबी भाषा पढ़ाने के लिए किया गया था।

प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिये रेडियो तथा दूरदर्शन प्रोग्राम बात-चीत के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। देखने वाले भी साथ-साथ समूहों में इस बात चीत को व्यवस्थापक की सहायता से जारी रखते हैं। वार्तालाप में भाग लेने से देखने सुनने वालों में समझने और समझाने की योग्यता पैदा करता है और प्रेरणादायक भी रहता है। समूहों के प्रश्नों अथवा विचारों को दल नेता रेडियो और दूरदर्शन अधिकारियों तक पहुंचा देता है। अगले प्रसारणों में इन शंकाओं का समाधान प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार कार्यक्रम बड़ा रुचिपूर्ण तथा उपयोगी बन जाता है। कक्षा कुंज के वातावरण को इस प्रकार के वार्तालाप दलों के वातावरण में बदल लेने का जितना अधिक प्रयास होगा, उतना ही कार्यक्रम अधिक रुचिपूर्ण बन जायेगा।

न्यून साधनों वाले सभी विकासशील राष्ट्रों के लिए प्रशिक्षण के इन जन शिक्षा साधनों की बड़ी आवश्यकता है और महत्व भी क्योंकि इनकी सहायता से स्थाई परिणाम मिलते हैं। जैसे इन सब कार्यक्रमों की योजना कृषि उत्पादन की उन्नति की योजना के साथ-साथ बनाई जानी चाहिए। विधिवत व्यवस्था से रेडियो दूरदर्शन, फिल्म और फ़िल्मस्ट्रिप का मिला जुला समन्वयित कार्यक्रम अत्यन्त रुचि और उपयोगी तरीके से बनाया जा सकता है।

अध्याय ४

व्यवसायोपयोगी साक्षरता

(इसके लाभ तथा अभिप्राय)

आजकल यह अक्सर पूछा जाता है कि आज की नई तकनीक के युग में जब तुरन्त परिणामों की जरूरत है, किसान प्रशिक्षण और साक्षरता का कोई महत्व है। नई तकनीक को काम में लाने की बेसब्री में किसान को पढ़ाई लिखाई सीखने का अवकाश नहीं है। वे तो जल्दी से जल्दी नये साधनों और नये तकनीकों को काम में लेना चाहते हैं। कृषि विकास और कृषि विस्तार के कामों में लगे लोगों की राय में अर्धविकसित देशों के किसानों का समय पढ़ाई लिखाई के काम में नष्ट करना व्यर्थ है, विशेषकर यदि इस पढ़ाई-लिखाई के विषय का नई तकनीक से कोई सम्बन्ध न हो।

परन्तु इस सम्बन्ध में और भी कई बातों पर विचार करना होगा। संसार के विकासशील देशों में लगभग ८१ करोड़ निरक्षर लोग हैं जिसमें से भारतवर्ष में ३५ करोड़ हैं जिसमें १५ करोड़ तो १४-४५ वर्ष तक की क्रियाशील आयु वर्ग के हैं। कम से कम इन क्रियाशील लोगों के लिए तो जिनकी मेहनत पर देश का विकास निर्भर है, साक्षरता का महत्व बहुत ही अधिक है ताकि ये लोग नई तकनीकों और विधियों को समझ कर खेती की उपज को बढ़ाने में सफल हो सकें। सभी विकासशील देशों में कृषि व्यवसाय से सम्बन्धित यह क्रियाशील वर्ग राष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में काफी महत्व रखता हैं।

१९६६ के आंकड़ों के अनुसार २८ देश ऐसे हैं जिनमें वार्षिक

प्रति व्यक्ति आय १०० डालर से भी कम है। भारत और इन्डोनेशिया दोनों ही देश इसी सूची में हैं, हालांकि दोनों देशों में क्षेत्रफल आदि की कई भिन्नताएं हैं और भारत में तो १९६६ के बाद प्रति व्यक्ति आय बढ़ी भी है। परन्तु यह सत्य है कि दोनों ही देशों में उत्पादनशील आयु वर्ग के अधिकतर लोग अर्थात् १४ से ४५ वर्ष की आयु वर्ग के लोग निरक्षर हैं। भारत में ७२ प्रतिशत और इण्डोनेशिया में ५७ प्रतिशत।

वर्तमान प्रौढ़ पीढ़ी की बाल अवस्था में प्राथमिक विद्यालयों की कमी और तत्पश्चात् प्रौढ़ शिक्षा प्राप्ति की सुविधाओं का अभाव शायद प्रति व्यक्ति आय की कमी के कारण हो सकता है। १०० डालर प्रतिवर्ष से कम की प्रति व्यक्ति आय वाले देशों में प्राथमिक विद्यालयों की अब भी कमी है। भारत जैसे देश में विद्यालयों में छात्रों की संख्या तो बढ़ गई है परन्तु शिक्षा का स्तर गिरता गया है। ऐसे कुछ देशों को तो पूरी सुविधाएं प्राप्त करने के लिए १९९० तक रुकना होगा।

एफ० ए० ओ० संस्था ने अपने हाल की ही कृषि विकास की एक अग्रिम विषय योजना में यह प्रकट किया है कि साक्षरता ज्ञान के अभाव में कुछ विकासशील देशों में धन तथा तकनीकी जानकारी और साधनों के होते हुए भी कृषि उत्पादन पूरा नहीं बढ़ सकेगा। इस योजना के अनुसार विकासशील देशों के बारे में यह सत्य बड़ा दुखद है कि उनकी जनसंख्या बहुत है और बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। दूसरे इस दुनिया का अधिकतर भाग ग्रामीण हैं और ग्रामीण ही रहेगा क्योंकि बड़ी संख्या में इस भाग में रहने वाले गरीब और निरक्षर हैं और मुश्किल से पेट भराई के स्तर पर रहते हैं, गुजर करते हैं। इन देशों की ५० प्रतिशत जनसंख्या लगभग २० वर्ष की आयु वर्ग की है। साथ ही नगरों के निकट की जमीन ही खेती के योग्य है और वह भी ग्रामीण उद्योगों के लिए ठीक है, परन्तु नगर के शिक्षित लोगों से, जो इनकी उपज के ग्राहक हैं, निरक्षरता के कारण इनका

सम्बन्ध नहीं जुड़ता । इस वजह से खेतों पर रहने वाले किसान और खेती करने वाले देहाती लोग सभी विकासशील देशों में खेतों से ऐसे जकड गये हैं जिस प्रकार खाड़ी में बिना बहाव का स्थिर पानी । ये पिछड़ी हुई निरक्षर ग्रामीण जन संख्या विकसित नगरीय जन संख्या की अपेक्षा अधिक बढ़ जायेगी । जन शिक्षा के नये साधन अर्थात् फिल्म और रेडियो भी नगर के शिक्षित समाज के हाथ में ही रहेंगे । फिल्मों में गाँवों के चित्र भी बड़ी पिछड़ी दशा में दिखाये जाते हैं जो विकास शील गांव का सही रूप नहीं दिखाते । भारत वर्ष में तो विशेषकर ऐसा ही हो रहा है । इस प्रकार विकासशील समाजों में यह एक द्वन्द सा प्रतीत होता है ।

ऐसी परिस्थिति में हर समझदार आदमी देश वासियों में व्यापक इस निरक्षरता को थोड़े से थोड़े समय में दूर करने का उपाय सोचता है । अन्यथा दुनिया भर में नई से नई तकनीकी प्रगति के बावजूद भी देहाती क्षेत्रों में से निरक्षरता और गरीबी को दूर करना कठिन मालूम होता है । इसलिए सार्वजनिक निरक्षरता उन्मूलन के साथ-साथ साक्षरता प्रसार के लिए कुछ चुने हुए समूहों को भी आधार बनाना होगा । सक्षरता का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं है । इसका अभिप्राय उस सारे ज्ञान को समझ लेना और प्रयोग में लाना है जो अक्षर ज्ञान के बिना प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च तकनीकी शिक्षा के स्तर पर भी नहीं मिल सकता था । तो क्या ऐसी साक्षरता का मूल्य आर्थिक आधार पर जांचा जा सकता है ? उदाहरणार्थ शिक्षा के स्तर और अनुभव के आधार पर किये गये उत्पादन के सम्बन्ध पर विचार करके आवश्यकताओं का अनुमान लगाना चाहिए । उत्पादन की पुरानी गतिविधि की जांच का यह तरीका भविष्य के लिए मानक सम्बन्धी व्यापक मार्गदर्शन दे सकेगा ।

दूसरा तरीका भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की शिक्षा तथा आय के सम्बन्ध का अध्ययन करना होगा । ऐसी दशा में यदि दूसरी सब

परिस्थितियां एक जैसी हों तो यह माना जा सकता है कि व्यक्ति की अधिक आय का कारण उसकी अधिक शिक्षा है।

तीसरा तरीका उत्पादन कार्य के भावी कार्यक्रम के आधार पर कार्य में लगी जनशक्ति की शैक्षणिक आवश्यकता की जांच का भी हो सकता है।

यूनेस्को द्वारा हाल ही में प्रकाशित बोमेन और एण्डरसन द्वारा "शिक्षा के आर्थिक पक्ष" पर किये गये एक अध्ययन के पृष्ठ ११३-२३३ तक के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि शिक्षा के स्तर और आर्थिक प्रगति के स्तर में सीधा सम्बन्ध है, परन्तु है थोड़ा अस्थिर। थोड़े से साक्षर तथा शिक्षित श्रमिकों के कारण जो आर्थिक लाभ होता है, वह नाम मात्र को ही रहेगा जब तक कि शिक्षा तथा साक्षरता का ज्ञान परिवर्तन के एक निश्चित बिन्दु तक न पहुंच जाये, क्योंकि साक्षरता तकनीक के नये ज्ञान को समझने और काम में ला सकने के लिए आवश्यक है। या यूं कहिये कि किसानों को ऐसे स्तर की साक्षरता का ज्ञान हो जाना चाहिये जो उनके दैनिक जीवन कार्य में उपयोगी हो। ऐसी साक्षरता ही व्यवसायोपयोगी हो सकती है। इस अध्ययन में बताया गया है कि कम से कम ३० से ५० प्रतिशत तक की साक्षरता आर्थिक प्रगति को स्थिर रखने के लिए जरूरी है। औद्योगिक विकास के लिए साक्षरता का स्तर कम से कम ४० प्रतिशत होना जरूरी है।

इस विचार धारा के विरुद्ध दो बातें कही जाती हैं। एक तो यह है कि साक्षरता का उच्च स्तर जरूरी तौर से उत्पादन का स्तर नहीं बढ़ा देता और दूसरा प्रगतिशील देशों के वास्तविक इतिहास के आधार ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है कि जिनके अनुसार जन साधारण में व्यापक निरक्षरता के बावजूद भी कुछ देशों ने प्रत्यक्ष आर्थिक प्रगति की है। भारतवर्ष के केरल राज्य का भी कभी-कभी पहली प्रकार का उदारहण पेश किया

जाता है।

केरल प्रदेश में साक्षरता का स्तर भारत भर में सबसे प्रथम होने के बावजूद भी केरल में कृषि की प्रगति नहीं हो सकी। केरल के किसान अभी भी बहुत गरीब हैं और उनकी आर्थिक स्थिति में अभी बड़े सुधार की जरूरत है। उनकी आर्थिक दशा पंजाब प्रदेश के किसान की आर्थिक दशा से बहुत नीची है। ऐसी दशा में केरल राज्य के प्रौढ़ किसानों की साक्षरता क्या उनके कृषि विकास के लिए कुछ सहायक है ? बहुत से किसान विशेषज्ञ भी जो यह सोचते हैं कि केवल क्रियात्मक प्रदर्शन ही कृषि विकास के लिए काफी हैं, वे भी ऐसी ही दलील देते हैं।

परन्तु देखना यह है कि पहले तो केरल राज्य में कृषि की प्रगति में भूमि की कमी ही नहीं, भूमिदारी की प्रणाली भी बाधक है और दूसरी मुख्य बात यह है कि कृषि अनुसंधान संस्थाओं और कृषकों में बड़ी दूरी है, भेद है। अधिकतर अनुसंधान केन्द्र नारियल और काजू आदि चीजों की उन्नति के लिए कार्य कर रहे हैं। अनुसंधान केन्द्रों और कृषकों में दो स्तर का व्यक्तिगत सम्बन्ध अथवा ताल मेल होना चाहिए। एक तो वस्तु विशेषज्ञों और राज्यों स्तर पर इन वस्तुओं की उत्पादन प्रगति से सम्बन्धित अधिकारियों के बीच और दूसरे न्यून जानकारी वाले जिला और ब्लाक स्तर के सम्बन्धित अधिकारियों के बीच। इन सम्बन्धों के बीच की दूरी केरल में नहीं बल्कि सारे ही देश में अधिक हैं, एक विदेशी प्रेक्षक ने, जिसने भारतीय किसानों में काम किया था, मुझे बताया कि भारत में विकास कार्य तथा किसान प्रशिक्षण कार्य मुख्यत: इसलिए पिछड़ा हुआ है क्योंकि यहां पर ब्लाक स्तर के अधिकारियों और अधिक जानकार राज्य स्तर के अधिकारियों में सम्पर्क की बहुत कमी है। ऐसी एक टोली के सदस्य ने, जिसने कपास की नई किस्म एच० ४ पर अनुभव किया था और एच० ४ किस्म की कपास की उपज उचित सिंचाई के बाद बैलारी जैसे

सिंचित क्षेत्र में २० क्विंटल प्रति एकड़ हो सकती थी, एक ही सफल प्रदर्शन के परिणाम स्वरूप बहुत से लोगों ने एच० ४ का बीज बोना स्वीकार किया हालांकि इसके प्रयोग में २००० रुपये प्रति एकड़ खर्च करना था।

थोड़े दिन हुए इस फसल में कोई रोग लग गया और पेड़ों के पत्ते पीले पड़ने लगे। ब्लाक स्तर के अधिकारी इस बीमारी के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते थे, इसलिए किसानों को यह जानने में बड़ी कठिनाई हुई कि अब किस से सहायता और सलाह ली जाये। अनुसंधान शालायें तो बहुत दूर हैदराबाद और दिल्ली जैसे बड़े-बड़े नगरों में हैं और कृषि विश्वविद्यालय बंगलौर तक भी किसान आसानी से नहीं पहुँच सकते थे। ऐसी दशा में यदि किसान वर्ग शिक्षित हो तो निःसन्देह लाभ उठा सकेगा। वे स्वयं विश्वविद्यालय के विस्तार विभाग को और अनुसंधायकों को लिख सकेंगे और अपनी समस्या का हल ढूंढ सकेंगे। प्रस्तुत परिस्थिति में तो उन्होंने पूर्व कथित विदेशी अनुसंधानकर्त्ता का सहारा लिया जिसने स्वयं अनुसंधान केन्द्र से सम्पर्क स्थापित कर सहायता दिलवाई। समझना केवल यह है कि ऐसी स्थिति में केवल निरक्षरता के कारण ही प्रगति का एक बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग अनजाने में ही असफल हो सकता था।

अब आइये दूसरे पहलू पर भी कुछ विचार कर लें। इस संबंध में तो इतिहास में ऐसे बहुत से देशों के उदाहरण मिल जायेंगे जिन्होंने व्यापक निरक्षरता के होते हुए भी बड़ी प्रगति की है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इंगलैंड और फ्रांस में प्रति व्यक्ति आय आज के उन्नत देशों के प्रति व्यक्ति आय से भी अधिक थी हालांकि उनकी आधी जनसंख्या निरक्षर थी। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि फ्रांस और इंगलैंड उन दिनों संसार के अन्य देशों से अधिक उद्योगशील थे, उनको विश्व भर में व्यापारिक एकाधिकार का बहुत लाभ था, बड़े-बड़े इनके राज्य थे और एक लम्बी अवधि

से कम वेतन और जनता के न्यून जीवन स्तर के कारण बड़े धनी बन गये थे। हो सकता है औद्योगीकरण के इसी स्वर्ण काल में उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए ही इन देशों में शिक्षा प्रसार की भी उन्नति हुई।

जापान और डेनमार्क की परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न थीं। डेनमार्क की जन शिक्षा संस्थाएं दूसरे देशों में उस प्रकार के विद्यालय बनने से बहुत पहले स्थापित की गई। उन्हीं के परिणाम स्वरूप डेनमार्क की अर्थव्यवस्था कृषि व्यवसाय से बदलकर डेरी व्यवसाय पर आधारित हो गई और डेनमार्क का डेरी उद्योग बहुत ही आधुनिक और वैज्ञानिक ढंग से स्थापित तथा संचालित किया गया। इसी प्रकार १८६७ में, मीजी युग के आरम्भ से जापान भी अगले ४० वर्षों में अर्ध सामन्तशाही तथा निरक्षर देश से बदलकर एक औद्योगिक देश बन गया; जिसकी प्रगति बहुत अधिक प्राकृतिक साधनों के अभाव में केवल वहां के श्रमिकों की सूझ-बूझ तथा परीक्षण पर ही निर्भर थी।

श्रमिकों की योग्यता में प्रगति के साधनों में, साक्षरता प्रसार तथा अन्य दूसरे साधनों में क्या कोई सम्बन्ध स्थाापित हो सकता है? इस सम्बन्ध में यूनेस्को के एक अध्ययन में रूसी अर्थ-शास्त्री एस० जी० स्ट्रूमिलिन द्वारा १९२४ में किये गये एक क्षेत्रीय अध्ययन का उल्लेख किया गया है। यह अध्ययन वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में पिछड़े हुए देशों की परिस्थितियों के समान परिस्थितियों में ही किया गया था। स्ट्रूमिलिन का कहना है कि एक प्राथमिक स्तर की एक साल की शिक्षा एक साधारण श्रमिक की उत्पादन क्षमता में ३० प्रतिशत की बढ़ोतरी दे देती है जबकि निरक्षर श्रमिकों को काम करते-करते एक साल के अनुभव के कारण उनकी उत्पादन क्षमता में १२ से १६ प्रतिशत की बढ़ोतरी का लाभ होता है। इस आधार पर एक साल की विद्यालयी शिक्षा द्वारा उत्पादन क्षमता में प्राप्त लाभ औसतन एक साल के निरक्षर श्रमिक को

कार्य अनुभव द्वारा प्राप्त लाभ से २६ गुणा है और यदि साक्षरता कार्य को व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ चलाया जाय, जैसा कि अनेक यू० एन० डी० पी० के प्रयोगात्मक कार्यक्रमों में किया जाता है, तो उत्पादन क्षमता और भी अधिक बढ़ जाती है।

किन्तु अध्ययन ने यह सिद्ध कर दिया है कि अनिवार्य स्कूली शिक्षा बहुत खर्चीली है। परन्तु साक्षरता के व्यय को अनेक और साधनों को काम में लाकर कम किया जा सकता है। साक्षरता कार्य में आवश्यक सामग्री तथा अन्य स्थाई साधनों को ऐच्छिक व्यक्तिगत योगदान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी साक्षरता ज्ञान के लाभ को हर परिस्थिति में अर्थ-व्यवस्था सुधार का साधन निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हालांकि कुछ उपयोग तो प्रत्यक्ष ही देखे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ साक्षरता ज्ञान का एक लाभ तो आत्म-निर्भता का पैदा हो जाना ही है। इससे श्रमिक को व्यावसायिक तथा स्थान परिवर्तन क्षमता विस्तृत हो जाती हैं। इसका यह भी प्रभाव हो सकता है कि विकासशील देशों में ऐसे प्रशिक्षित युवक सब नगरों की ओर जाने लगें और देहाती कृषि क्षेत्र तथा उद्योग में से सभी शिक्षित लोग बाहर चले जायें।

इस आधार पर यह कहना उचित होगा कि व्यावसायिक तथा शैक्षणिक दोनों क्षमताओं का पूरा लाभ उठाने के लिए एक नई किस्म की साक्षरता तथा शिक्षा की जरूरत है जो विकास की आवश्यकताओं से सम्बन्धित हो। अनेक विकास शील देशों के अनुभव से विशेषकर अफ्रीकी देशों के अनुभव से यह मालूम हुआ है कि साक्षरता प्रसार की प्रणाली ऐसी होनो चाहिए कि उस ज्ञान की प्राप्ति पर शिक्षित व्यक्ति खेती की उपज बढ़ा सके और खेतों पर ही काम करने में रूचि लेता रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो सभी शिक्षित व्यक्ति नगरों में उद्योग धन्धों में काम करने के लिए जाना चाहेंगे, जबकि उद्योग धन्धों में केवल एक तिहाई

गांव के लोगों से विचार विमर्श करते हुए विस्तार कार्यकर्त्ता ।

किसानों के लिए मुख्य समाचारों को दो किशोर बोर्ड पर लिख रहे हैं
और किसान उत्सुकता से समाचार की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

आदिवासी कन्याएं कार्य-परक साक्षरता कक्षाओं में लेखन, पठन व गणन सीखते हुए ।

लोग ही खप सकते हैं। तनजानिया में, आधुनिक उद्योगों में केवल २३,००० कामगारों के लिए स्थान मिल सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष ६,००० विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक विद्यालयों में स्थान हैं, जबकि प्राथमिक विद्यालयों में इससे कहीं अधिक छात्र बाहर निकलते हैं। कीनिया में प्राथमिक विद्यालयों से १,५०,००० युवक प्रतिवर्ष निकलते हैं और उनमें से माध्यमिक विद्यालयों में प्रति वर्ष १५,००० को लिया जा सकता है और उद्योगों में ४०,००० प्रति वर्ष। इससे यह भी कहा जा सकता है कि बालकों को प्राथमिक शिक्षा देना भी बहुत मंहगा पड़ रहा है क्योंकि ऐसी दशा में तो प्राथमिक स्तर पर बालकों को वह शिक्षा नहीं मिलती जो स्थानीय परिस्थितियों में उन्हें लाभकारी सिद्ध हो। इसी लिए उनमें से बहुत से पढ़ाई अधूरी छोड़ बैठते हैं और शिक्षा के साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता।

इन सब तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो गया कि सुचारू प्रगति के लिए और अनेक देशों में चलाई गई परीक्षण योजनाओं के परिणामों से लाभ उठाने के लिए ऐसे क्षेत्रों और योजनाओं पर राष्ट्रीय आय का अधिक भाग साक्षरता प्रसार में लगाना चाहिए जो विकास के अन्य साधनों की उपलब्धि के कारण ऐसे आर्थिक अनुदान का पूरा लाभ उठा सकें। निःसंदेह ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जिनमें निरक्षर कामगार काम कर रहे हो। परन्तु ऐसे कृषि क्षेत्रों के लिए भी यह योजना आसानी से लाभकारी हो सकती है जहाँ कृषि उपज केवल गुजारे लायक ही हो रही हो। ऐसे क्षेत्रों में साक्षरता प्रसार पर धन लगा कर कृषि उत्पादन को प्रगति दी जा सकती है।

यूनेस्को की सहायता से यू० एन० डी० पी० द्वारा चलाई गई अधिकतर योजनाएं उद्योगों की उन्नति के लिए है। उनमें से कुछ जैसे मोरक्को और अलजीरिया की योजनाओं में कुछ भारी निजी उद्योग भी शामिल हैं। भारत में भी बम्बई में पौलीवैलेन्ट

प्रशिक्षण योजना के नाम से चलाई जा रही योजना में उद्योग को ही प्रशिक्षण का क्षेत्र माना है। इस्फहान के कपड़े कारखानों में भी, जिनमें २५,००० कामगार लगे हुए हैं, उत्पादन क्षमता पर साक्षरता ज्ञान के प्रभाव का अच्छा उदाहरण मिलता है। साक्षरता ज्ञान के कारण उत्पादन की वृद्धि तथा उत्तमता स्पष्ट प्रतीत होती है। यूनेस्को ब्यौरे के अनुसार इस योजना में भाषा ज्ञान पद्धति की बजाय व्यवसाय सम्बन्धी ज्ञान तथा जानकारी को ही साक्षरता कार्य का आधार बनाया गया है। तकनीकी वार्तालाप के आरम्भ में ही व्यवसाय सम्बन्धी शब्द, वाक्य और जानकारी के आधार पर सारा प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाता है।

माली की राजधानी बामाको के पास एक राजकीय फार्म पर लगभग १०० कामगार स्थाई तौर पर और कई सौ श्रमिक फसल के समय टमाटर उगाने पर लगाये जाते हैं। ये टमाटर पास ही के कारखानों में डिब्बा बन्दी के लिए भेजा जाता है। इन कामगारों में से ४५ कामगारों को व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए छांटा गया। साक्षरता का काम २ घण्टे प्रति दिन और तकनीकी प्रशिक्षण १ घण्टा प्रति सप्ताह साथ साथ चलाया गया और प्रशिक्षण के इस समय को भी उनके काम का समय समझा गया। फार्म अधिकारी ने जब इस योजना के परिणाम को देखा तो उसने मान लिया कि साक्षरता पर किया गया खर्च अर्थात् शिक्षकों का वेतन पाठ्य सामग्री आदि पर किया गया खर्च और प्रशिक्षण में लगाये काम के घण्टों से जो हानि हुई वह कामगारों की कार्य क्षमता बढ़ जाने से सब पूरी हो गई।

शिक्षण से पहिले कार्य-निरीक्षक निरक्षर होने के कारण न तो सामान को पूरी तरह जांच सकते थे, न ठीक समय तथा ठीक स्थान पर पहुंचा पाते थे और न ही लिखित हिदायतों को समझ सकते थे। इसके बाद वे साधारण हिसाब रख सकते थे, बिल तथा भुगतान पत्र बना सकते थे, सामान के बण्डलों का ब्यौरा रख सकते थे।

हिसाब चैक कर सकते थे और नाप तौल का खाता रख सकते थे, जांच कर सकते थे और जो तकनीकी जानकारी उन्हें दी जाती थी, उसे आसानी से समझ सकते थे, याद रख सकते थे। इसी प्रकार फार्म पर काम करने का सारा वातावरण ही बदल गया था।

यह ठीक है कि खेती बाड़ी के विषय में साक्षरता ज्ञान का प्रभाव इतनी आसानी से नहीं आंका जा सकता जितना बड़े-बड़े मशीनी फार्मों पर अथवा विस्तृत योजनाओं में। परन्तु भारतीय अनुभव के अनुसार यह कहा जा सकता है कि साक्षरता ज्ञान के बिना कृषि प्रगति की हरित क्रान्ति योजना का सफल होना सम्भव न होगा। क्योंकि निरक्षर छोटे किसान इसका लाभ न उठा सकेंगे और अपनी धन की, साधनों की, निवेशों प्राप्ति की तथा अधिक उत्पादन की नवीनतम जानकारी की समस्याओं को न सुलझा सकेंगे। छोटा किसान तो स्वयँ ही निवेशी भी है और श्रमिक भी। वह स्वयं ही अपना मालिक, प्रबन्धक, लेखपाल तथा भण्डारी है। साक्षरता ज्ञान का प्रभाव उसकी इन सभी क्षमताओं पर पड़ेगा। वह मण्डियों की गतिविधियों को भी समझ सकेगा और नई से नई तकनीक की जानकारी भी प्राप्त कर सकेगा।

एक एशियाई अर्थशास्त्री एस० सी० हीश का कहना है कि दक्षिण पूर्वी एशिया के कई देशों में किसानों को नई तकनीक की जानकारी प्राप्त कर लेने में निरक्षरता की कोई बाधा अनुभव नहीं की गई, क्योंकि बहुत सारे निरक्षर किसानों को यह जानकारी पुस्तकीय ज्ञान की बजाय ज्ञान प्राप्ति के अन्य साधनों के द्वारा दे दी गई। यह बात बहुत हद तक सच हो सकती है, परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि निरक्षर किसान की समस्या केवल तकनीकी जानकारी ही नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त मौलिक और आधार भूत हैं। वास्तव में निरक्षर किसान अपने काम में सफल नहीं हो सकता क्योंकि नये से नया ज्ञान हर समय मालूम पड़ रहा है जिसको पुराने ज्ञान के साथ सन्तुलन करके एक समन्वयित

रास्ता चुनना होगा। जन शिक्षण के अन्य साधनों द्वारा दिये गये ज्ञान को निरक्षर किसान न लिख सकते हैं न हमेशा याद रख सकते हैं, फिर वह पुरानी बात को याद कैसे रखेंगे कैसे नई से मिलावेंगे और कैसे अपने उपयुक्त तरकीब चुनेंगे। वह तो पुरानी बातों को भूलते जायेंगे। इसलिए लिखित जानकारी निःसन्देह किसानों के लिए अधिक उपयोगी होगी। इससे स्पष्ट है कि किसान के लिए साक्षरता ज्ञान का यह अभिप्राय है कि वह अपने साक्षरता ज्ञान का सफल उपयोग अपने दैनिक और पारिवारिक जीवन में कर सके। निरक्षर श्रमिकों का मालिक भी इसी प्रकार के साक्षरता ज्ञान से सन्तुष्ट होगा जो उसके श्रमिकों की कार्य दक्षता बढ़ाने में तुरन्त फलदायक हो।

भारत जैसे विकासशील देश में व्यावसायिक साक्षरता गरीबों को विकास का समान अवसर देने की भी अच्छी युक्ति है। विकसित देशों में भी जहां साक्षरता व्यापक रूप से फैली हुई है, असमानताएं होती हैं, परन्तु एक तो वहां धन की उतनी असमानता नहीं होती और दूसरे अवसरों की कमी नहीं होती। विकासशील देशों में तो धन और अवसर दोनों की ही कमी और असमानता होती है और निरक्षरता के कारण यह असमानता और भी बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ अभी हाल में ही बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ परन्तु उनसे धन उधार लेने के लिये निरक्षर किसान को तो किसी शिक्षित व्यक्ति की शरण ही लेनी पड़ेगी। क्योंकि धन प्राप्ति के लिये जो तरीका बना, दस्तावेज बने और जो फार्म आदि भरने पड़ते हैं वह अशिक्षित व्यक्ति पूरा ही नहीं कर सकता। वास्तव में, ऐसे बैंक की शाखा जब एक नगर में खुली तो अनेक स्थानीय वकीलों के लिए रोजगार का धन्धा ही यह बन गया। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य तो छोटे गरीब किसानों के धनाभाव को दूर करना था परन्तु ऐसे सभी उद्देश्य पूर्ति के साधनों की व्यवस्था करने में तो साक्षरता ज्ञान की आवश्यकता आ ही

जाती है। इसी प्रकार इसमें भी योजना से लाभ उठाने वालों को फार्म भरने, प्रार्थना पत्र देने, रसीद लिखने, जमा करने आदि की विधि तो पूरी करनी ही होगी जिसके लिए उसका साक्षर होना ज़रूरी है।

योजना के महत्व और अति आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सरकार ने कुछ चुने हुए जिलों में छोटे किसानों और सीमान्त किसानों के लाभार्थ कई योजनाएं व्यापक रूप से चलाई हैं। मार्च १९७१ की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक जिले में २.५ से ५ एकड़ तक की सिंचित भूमि और ७ एकड़ तक की सूखी भूमि रखने वाले ५०,००० किसान परिवारों की एक योजना स्वीकृत की गई है। ऐसे प्रत्येक जिले के लिए १.५ करोड़ रुपये की राशि की स्वीकृति दी गई है। यह रुपया सहकारी बैंकों के द्वारा परिदान के रूप में किसानों को दिया जायेगा। अनुमान है कि इस प्रकार परिदान के रूप में दी गई कुल सहायता लगभग २७५ करोड़ होगी।

दूसरे जिलों में इसी प्रकार को योजनाएं सीमान्त किसानों तथा कृषि श्रमिकों के लिए चलाई गई है। प्रत्येक जिले में इसके लिए एक शाखा की स्थापना की गई है। यह शाखा बैंकों और छोटे किसानों के बीच मध्यस्थता करेगी ताकि उधार देने की व्यवस्था जल्दी से पूरी की जा सके। परन्तु क्या इससे साक्षरता ज्ञान की आवश्यकता हल हो गई या मिट गई। चूंकि योजना अभी हाल में ही आरम्भ हुई है, इसलिए इतनी जल्दी फैसला करना ठीक न होगा। अलबत्ता प्रत्यक्ष तो इन जिलों में भी साक्षरता ज्ञान का अभाव तो बाधक होगा ही।

श्री एच० एम० फिलिप्स द्वारा १९७० में किये गए एक यूनेस्को अध्ययन में बताया गया है कि छोटे और सीमान्त किसान परिवारों के मामले में साक्षरता ज्ञान के होने से किसान की मनोभावना, कार्यविधि और पारिवारिक जीवन ही बदल जाते हैं। इस अध्ययन

में बताया गया है कि निरक्षर किसानों की कृति और समझ सदैव एक जैसे नहीं रहते। इसका एक कारण तो यह है कि सरकार द्वारा की गयी कृषि जानकारी के प्रसार के लिए बहुत सारी पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित सामग्री का उन्हें कोई सही ज्ञान नहीं होता। उदाहरणार्थ केन्द्रीय कृषि मंत्रालय का विस्तार विभाग पर्याप्त मात्रा में चित्रित साहित्य तथा पत्रिकाएं इस सम्बन्ध में छापता है और राज्य सरकारों के कृषि विस्तार भी ऐसा ही कार्य कर रहें हैं, परन्तु उन सबका उपयोग बहुत ही सीमित है। हैदराबाद राज्य में किये गये एक अध्ययन के अनुसार इस प्रकाशित सामग्री का उपयोग केवल शिक्षित किसानों को ही होता है। पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गेहूं के उत्तम बीजों को प्रचलित करने के आरम्भ में केवल मध्य स्तर के कृषकों ने ही सतर्कता दिखाई क्योंकि एक तो वह स्वयं अपने खेतों की देख रेख कर सकता था और इससे भी अधिक इसलिए कि यह स्वयं कृषि शोध प्रतिष्ठानों से सीधे जानकारी प्राप्त कर सकता था।

यह ठीक है कि भारत में सामुदायिक विकास योजना की विस्तृत सेवाओं के कारण विस्तार सेवा अधिकारी की सहायता आसानी से उपलब्ध है, परन्तु विकास खंड स्तर के अधिकतर विकास अधिकारियों तथा ग्राम सेवकों ने कुछ उन्नतिशील किसानों के खेतों की प्रगति और उपज दिखाकर उच्च अधिकारियों को मोहित कर लेने का पाठ सीख लिया है। ये प्रगतिशील उच्च वर्गीय किसान तो धनी होने के कारण नये प्रयोगों की सफलता बहुत शीघ्र दिखा सकते हैं। दूसरे नया तकनीकी ज्ञान जिस जल्दी से बढ़ रहा है, उसके सामने विकास खंड स्तर के अधिकारी इस योग्य भी नहीं हैं कि पूरी नवीनतम जानकारी किसानों को दे सकें।

अफ्रीकी देशों में तो यह परिस्थिति बहुत ही निराशाजनक है। पश्चिमी नाईजीरिया में किये गये अगस्त १९६९ के मुलर

ग्रौर जेवेरिंग द्वारा किये गये एक ग्रध्ययन के ग्रनुसार जिन किसानों से कृषि विस्तार योजना सम्बन्धी प्रश्न पूछे गये, उनमें से ७० प्रतिशत ने बताया कि उन्होंने कभी कृषि विस्तार कार्यकर्त्ता के दर्शन नहीं किये, साक्षात्कार से पहिले के छः महीनों में केवल १४ प्रतिशत ने कृषि विस्तार कार्यकर्त्ता के दर्शन किये थे।

व्यापार स्तर पर तो यह दूरी ग्रसीमित ही है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक विकासशील देश में विक्रय के नियम तो कुछ ऐसे बनाये गये हैं जिनमें बिचोलियों का हस्ताक्षेप हो ही जाता है। परिणामस्वरूप ग्राढ़ती प्रणाली तथा दलाली की प्रथा एक स्थाई पद्धति बन गई जो किसानों को भी मान्य हो गई। परन्तु कुछ देशों में भारत की तरह व्यवस्थित मण्डियां भी स्थापित हो गई हैं। ये सब मण्डियाँ देश की लोकसभा द्वारा बनाये गये ग्रादर्श ग्रधिनियमों के ग्रनुसार चलाई जाती है। राज्यों में भी यही कानून लागू करने के लिए भेजा जाता है। राज्य विधान सभाग्रों द्वारा बनाये गये ग्रधिनियमों के ग्रनुसार विभिन्न मण्डियों की स्थापना तथा संचालन ग्रौर उन मण्डियों में क्रय-विक्रय के लिये ग्राने वाले सभी नागरिकों के लिए विशेष नियम बनाये जाते हैं, मण्डी कमेटियों के ग्रधिकार ग्रौर कर्तव्य, ग्राहकों तथा बेचने वालों के कर्तव्य ग्रौर ग्रधिकार सब व्यवस्थित रूप से बनाये ग्रौर निभाये जाते हैं ग्रौर इस सम्बन्ध में सब जानकारी प्रकाशित पुस्तिका के रूप में दी जाती है।

यह जानकारी रेडियो पर भी घोषित होती है ग्रौर ज़बानी तौर पर मण्डियों में भी इसकी चर्चा होती है। परन्तु केवल जबानी बातचीत चाहे यंत्रों की सहायता से भी हो, न तो याद रखी जा सकती है ग्रौर न चाहे जब यथा ग्रावश्यकता सन्दर्भ हेतु काम में ली जा सकती है। इस सम्बन्ध में भी निरक्षरता प्रगति के समान ग्रवसरों की प्राप्ति में बाधक हो जाती है। भारतीय खाद परिषद ने तथा ग्रनेक खाद कम्पनियों ने खादों ग्रौर कीटनाशक

दवाईयों आदि की खरीद और उपयोग के लिए बहुत सारा साहित्य प्रकाशित किया है। परन्तु जो कुछ लिखा है वह भाषा सरल होते हुए भी समझ में आना बहुत कठिन है। इन साधनों से लाभ उठाने के लिए यदि किसानों को आधुनिक तकनीक का लाभ उठाना है और यदि छोटे किसानों को खेती बाड़ी उद्योग बनाना है तो अपने स्वयं की जानकारी के लिए इस सब प्रकाशित सामग्री का एक छोटा सा पुस्तकालय बनाना होगा जिसमें समय-समय पर छपने वाली सभी जानकारी की पुस्तिकाएं रखी जा सकें।

बहुत से लोग, जो कृषि उत्पादन की नई तकनीकों और विस्तार से सम्बन्धित है, वे भारतवर्ष तथा अन्य देशों के भारी उपज देने वाली योजनाओं की सफलता का उदाहरण देकर बताते हैं कि कृषि की प्रगति में निरक्षरता कोई बाधा उपस्थित नहीं करती। उनके विचार से रेडियो पर प्रसारित सूचना तथा प्रत्यक्ष प्रदर्शन दोनों कृषि के आधुनिक ज्ञान को देने और उसके प्रयोग की प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त हैं। साक्षरता प्रसार कार्य अपनी धीमी गति के कारण उनके विचार में वहुत उपयोगी नहीं हैं।

परन्तु कृषि उत्पादन की तीव्र गति किसी देश में तब ही स्थाई हो सकती है जब छोटे किसान भी भारी संख्या में उपज के नये तरीकों को अपनाएं। छोटे किसानों के सामने अनेक बाधाएं हैं और भूमिदारी जैसे कानूनी बन्धन भी। निरक्षरता दूसरी बाधा है। निरक्षरता के कारण कृषकों में असामानता बनी रहेगी। निजी भूमि तथा साधनहीन किसान साक्षरता भी प्राप्त नहीं कर सकता। उधार लिये हुए धन का हिसाब नहीं रख सकता। फसल में सिंचाई और खाद लगाने का ब्यौरा नहीं रख सकता और सरकार के तथा मण्डी कमेटियों के नवोनतम आदेशों और फैसलों की जानकारी के लिए भी दूसरों के भरोसे रहता है।

प्राचीन और मध्यकाल में पढ़ाई लिखाई की योग्यता विशेष लोगों तक ही सीमित थी जैसे पुरोहित, व्यापारी तथा अधिकारी

वर्ग । उस योग्यता के आधार पर वे दूसरे लोगों को विशेष कर गरीबों को अपनी सत्ता तथा एकाधिकार से वंचित रखते थे । औद्योगिक क्रान्ति का एक प्रभाव तो यह हुआ कि ये असमानताएं कम हो गई । नये व्यवसायों में मशीन के उपयोग जैसे कुछ काम ऐसे थे जिनके लिए साधारण श्रमिकों को भी पढ़ाई लिखाई का थोड़ा बहुत ज्ञान जरूरी है । परन्तु जिन देशों में भी अभी तक कृषि ही मुख्य उद्योग है, उनमें अभी तक वही पुरानी विचारधारा तथा परिस्थिति चल रही है और चलती रहेगी, क्योंकि परम्परागत कृषि उद्योग के लिए पढ़ाई लिखाई के ज्ञान की अधिक आवश्यकता नहीं है ।

कृषि उद्योग में नये परिवर्तनों तथा आधुनिक उपकरणों और यंत्रों के प्रयोग के कारण कृषि उद्योग भी अब केवल व्यवसाय नहीं उद्योग ही बन गया है । ऐसी परिस्थिति में निरक्षर किसान को बड़ी असुविधा होगी । इसलिए यदि प्रगति के अवसरों की समानता सब को देनी है और सबको उसका लाभ पहुंचाना है तो साक्षरता प्रसार का कार्यक्रम अनिवार्य है । छोटे किसानों को यदि साक्षरता के ज्ञान से वंचित रखा गया तो वे पिछड़े हुए ही रहेंगे । न तो वे आत्मनिर्भर हो सकते हैं और न ही उनमें आत्मविश्वास पैदा हो सकता है ।

यह दुःख की बात है कि इस साधारण परन्तु स्पष्ट मनोविज्ञान के सिद्धान्त को अभी तक नहीं समझा गया और न ही विधायकों एवं नीतिज्ञों ने इसको अपनाया । भारत सरकार ने छोटे किसानों को आर्थिक तथा अन्य सहायता देने के लिए अगले तीन साल में ११५ करोड़ रुपये का प्रावधान किया है । परन्तु इसमें साक्षरता प्रसार का कोई स्थान नहीं है । इसका परिणाम यह होगा कि इस योजना में किसान की सहायतार्थ जो सेवा संस्थाएं बनाई गई हैं, वे हमेशा चलती रहेंगी और किसान आत्म निर्भर न हो पायेंगे ।

जन शिक्षण में समूह ज्ञान के साधन रेडियो आदि सूचना एवं

जानकारी देने के अच्छे साधन हैं, पर दूरदर्शन के अतिरिक्त सब में कोई व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा प्रभाव का साधन नहीं हैं। लिखित जानकारी पाठक को यह व्यक्तिगत बातचीत की चेतना दे सकती है। इसलिए इसके द्वारा पाठक किसान का आत्मविश्वास सबल होगा। यह आंकड़ों की तथा प्रमाणों की गहराई तथा सत्यता को जांच सकेगा और बहुत सारी जानकारी को भविष्य में यथा समय प्रयोग के लिए सुरक्षित रख सकेगा।

इसलिए हमारा यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि साक्षरता ज्ञान प्रसार छोटे किसानों को प्रगति के अवसरों की समानता देने के लिए पहला कदम है। यह ज्ञान उसकी आर्थिक प्रगति के लिये उतना ही जरूरी है, महत्वपूर्ण है जितना कि रासायनिक खाद और भंडार यन्त्र। यह सामाजिक न्याय का साधन है। मोरक्को में किये गये यूनीसेफ के एक अध्ययन में बताया गया है कि जब वहां एक युवक से पूछा कि साक्षरता ज्ञान क्यों जरूरी है तो उसने कहा कि कुछ लोग अनिभिज्ञ हैं और कुछ लोग अच्छे विद्वान हैं। पहले गरीब रहते हैं और दूसरे अमीर हो जाते हैं, पहले आज्ञाकारी रहते हैं और दूसरे हुकम चलाते हैं। यह ठीक है कि नई पद्धतियों को अपना लेने की प्रेरणा का साधन केवल साक्षरता ही नहीं है परन्तु जब नये कारीगरी और युक्तियों को काम में लेने से लाभ मिलता है तो साक्षरता ज्ञान रहित किसानों को पूरी प्रेरणा मिलने में असुविधा होती है।

हो सकता है कि ऐसी स्थिति में भी बड़े किसानों की उपज बढ़ जाने से देश का उत्पादन बढ़ा हुआ जान पड़े और १९ वीं शताब्दी के मध्य में इंगलैंड और फ्रांस में ऐसा ही हुआ। उन देशों की प्रति व्यक्ति आय आज के प्रगतिशील देशों की व्यक्तिगत आय से बहुत अधिक हो गई थी, फिर भी उन देशों की आधी जनसंख्या गरीब और निरक्षर थी। इसका कारण यह नहीं था कि छोटे-छोटे निरक्षर श्रमिकों की उत्पादन शक्ति बहुत बढ़ गयी थी।

बल्कि इसका अधिकतर कारण यह था कि देशों की समुद्र पार के राज्यों की प्रगतिशील मण्डियों की कमाई से बहुत धन अर्जित हो गया था। प्रगतिशील देश जिनको न तो समुद्र पार के राज्यों की कमाई उपलब्ध है और न ही उनके पास अन्य राज्य हैं, वे अपने समाज में इस प्रकार की दोहरी दुनिया, यानि एक अमीरों की और दूसरी गरीबों की, नहीं बना सकते। हमें तो सभी छोटे बड़े उत्पादकों को बराबरी के स्तर पर लाना होगा और सबको उत्पादन के साधनों की सुविधा तथा उनके प्रयोग की योग्यता बराबर देनी होगी।

इससे स्पष्ट है कि विकासशील समाज अथवा राष्ट्र के लिए साक्षरता ज्ञान की मुख्य उपयोगिता यही है कि वह सामाजिक न्याय तथा समानता दे सके, परन्तु यह मानना भूल होगा कि किसी प्रकार का भी साक्षरता ज्ञान इस समय व्यापक गरीबी तथा प्रगतिशील समाजों की अन्य स्वभाविक असमानताओं को दूर करने में उपयोगी होगा। प्रगतिशील देशों को तो व्यवसायोपयोगी तथा उत्पादन आधारित एवं अनुकूलित साक्षरता की आवश्यकता है। व्यावसायोपयोगी साक्षरता अभी हाल में बहुत प्रचलित हो गई है और इसके अनेक अभिप्राय समझे जाते हैं।

मेरी राय में साधारण प्रौढ़ साक्षरता और व्यावसायोपयोगी साक्षरता में यह भेद है कि प्रथम तो व्यवसायोपयोगी साक्षरता का उद्देश्य पढ़ने वाले को उसके अपने व्यवसाय को उत्तम बनाने की क्षमता देना है और जिस वातावरण में वह रहता है उसे संवारने की समझ और क्षमता देना है ताकि वह अपने वातावरण में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। दूसरे व्यवसायोपयोगी साक्षरता में कार्यक्रम, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति को इस प्रकार ढाला जाता है कि शिक्षार्थी पढ़ते रहने के साथ-साथ ही इस प्रकार उस ज्ञान को भी प्रयोग में ला सकें अर्थात् सीखने का सारा तरीका ऐसा व्यावहारात्मक होता है कि पढ़ना और

व्यवहार करना दोनों साथ-साथ चलते हैं। सीखने और करने में कोई भेद नहीं रहता।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि व्यवसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रम सभी शिक्षार्थी एक ही जैसे पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सामग्री को उपयोग में नहीं ला सकते। पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सामग्री को शिक्षार्थियों की व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार अदल-बदल कर उपयुक्त बनाना होगा। इसलिए यह जरूरी हुआ कि व्यवसायोपयोगी साक्षरता की जब कोई योजना बनाई जाये तो पहले यह निश्चय कर लेना होगा कि यह योजना किस वर्ग विशेष के लिए बनाई जा रही है। जब यह निश्चय हो गया तो अगला काम यह होगा कि वह व्यावसायिक वर्ग अपने दैनिक वातावरण में जिस भाषा का प्रयोग करता है और जो उनके व्यवसाय से सम्बन्धित शब्द प्रयोग में आते हैं अथवा आने चाहियें, उनकी एक शब्दावली बनाई जाये। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि आजकल प्रत्येक व्यवसाय में प्रति दिन उन्नति और फेरबदल हो रहे हैं। खेती बाड़ी में, मछली उद्योग में, मशीनी उद्योगों में, उद्योगों की व्यवस्था और प्रबन्ध में, व्यापार में सभी में बहुत प्रगति हो रही है। यदि शब्दावली पुरानी रह गई और आधुनिकतम न हुई तो प्रौढ़ों को उस पाठ्य सामग्री के पढ़ने में आनन्द न आयेगा। वह रुचिकर न होगी।

भिन्न-भिन्न व्यवसायिक वर्गों की साक्षरता के लिए भिन्न-भिन्न शब्दावली तथा पाठ्यसामग्री की बात करते समय विशेषकर किसानों के लिए मेरा मतलब प्रत्येक ब्लाक अथवा जिला क्षेत्र की बात करना नहीं है। मैं तो समान व्यवसायी वर्ग समूहों की बात कर रहा हूं या प्रशासनिक समानता के एक विशेष क्षेत्र की बात कर रहा हूं यदि वह व्यवसाय जैसे खेती बाड़ी किसी एक विशेष क्षेत्र की परिस्थिति से जुड़ा है तो मैं उस सारे क्षेत्र की समान परिस्थितियों से सम्बन्धित सभी व्यवसायों को एक समूह मानूंगा

श्रौर उन सबके लिए साक्षरता का एक ही जैसा कार्यक्रम बनेगा।

ऐसी विशेष शब्दावलियों के बन जाने पर ऐसे पाठ बनाने होंगे जिनमें मुख्यत: इन विशेष शब्दों का ही प्रयोग किया गया हो श्रौर शिक्षार्थियों को इन्हीं पाठों द्वारा पढ़ाया जायेगा। पाठ्य सामग्री की लिपि श्रौर भाषा दोनों ही पाठन विधि का श्रंग है। लिपि ज्ञान तथा भाषा ज्ञान दोनों साथ-साथ ही चलाने होंगे। नमूने के ये पाठ बनाते समय प्रौढ़ मनोविज्ञान की मूल बातों को भी ध्यान में रखना होगा। कभी-कभी विषय श्रौर भाषा की सरलता तथा सुगमता के विचार से शिक्षक ऐसे साधारण विषय छाँट लेता है जो प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिए कुछ व्यावसाविक महत्व नहीं रखते। ऐसी दशा में प्रौढ़ शिक्षार्थी ऐसी बचकाना सामग्री को पढ़ने में या पढ़ाये जाने में श्रपमानित श्रनुभव करते हैं। उन्हें तो श्रारम्भ से ही पढ़ने के लिए गंभीर मसाला चाहिए।

कुछ लोगों का विचार है कि श्राधुनिक तकनीक के लिये जो शब्द जानने जरूरी हैं श्रौर जिनको किसान श्रथवा श्रमिक जानते भी हैं वे प्रौढ़ शिक्षार्थियों को श्रक्षर जैसी सरल चीज सिखाने के लिये बहुत भारी हैं प्रत्यक्ष तो यह तर्क बहुत वाजिब मालूम पड़ता है। परन्तु सरलता श्रथवा सुगमता तो बड़ा श्रस्थिर गुण है। उत्तर भारत का रहने वाला साधारणतया दक्षिण भारत में बोली जाने वाली एक मामूली तमिल शब्द को भी बड़ा कठिन समझता है। वास्तव में कठिन तो शब्द नहीं बल्कि शब्द का श्रभिप्राय या पद श्रथवा निबन्धन का श्रर्थ है। परन्तु किसानों के लिये तथा व्यवसायों में लगे श्रमिकों के लिए तो बहुत सारे शब्द रोज काम करते-करते जाने पहचाने पद बन गये हैं। कठिनता तो उनके लिखने की है या पढ़ने की, यही उनके रास्ते में बाधक है। इस-लिए ऐसे जाने पहचाने श्रोर रोज काम में लिये जाने वाले विशेष शब्दों, पदों तथा वाक्यों के द्वारा उन प्रौढ़ों को श्रक्षर सिखाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

ऐसे नवसाक्षरों के लिए जो इस प्रकार व्यावसायिक साक्षरता प्राप्त कर रहे हैं, दोनों श्रेणियों की पाठ्य सामग्री चाहिए, प्राथमिक भी और अनुवर्ती भी। दोनों ही स्तर का साहित्य, प्राथमिक भी और अनुवर्ती भी शिक्षार्थियों को उनके दैनिक व्यवसाय में उपयोगी होना चाहिए। ऐसे सभी शिक्षार्थियों के लिए जो व्यावसायोपयोगी साक्षरता प्राप्त कर रहे हैं, एक ही जैसी पाठ्य सामग्री का प्रयोग उपयोगी नहीं होगा, इसलिए इस पर फिर से विचार करना जरूरी है, एक ही जसे प्राथमिक और अनुवर्ती साहित्य की वजाय व्यवसायोपयोगी साक्षरता के सभी शिक्षार्थियों को व्यवसाय की एकरुपता के आधार पर वर्गों में बांटकर प्रत्येक व्यवसायी वर्ग के लिये भिन्न-भिन्न पाठ्य सामग्री बनानी होगी। प्रत्येक व्यवसायी वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न विशेष पाठ्य सामग्री का बनाना आरम्भ में बहुत खर्चीला अवश्य पड़ेगा। बहुत सारी व्यवसायिक तकनीकों में प्रति वर्ष नई से नई प्रगति और परिवर्तन होने के कारण साहित्य भी बार-बार दोहराना होगा, इससे खर्च और भी बढ़ जायेगा। बहुत सी ऐसी संस्थाएं जो प्रौढ़ नव साक्षरों के लिये अनुवर्ती साहित्य प्रकाशित करती हैं उन्होंने भारी मात्रा में ऐसा साहित्य बनाया था जो अब अनुपयुक्त हो गया है परन्तु उनके भंडार में जमा है। इन सब बातों को देखते हुए सम्भवतया यह अधिक उपयोगी होगा कि आरम्भ में पाठ्य सामग्री पुस्तकों के रूप में न छपवाई जाये, केवल अनुलिपित करवा लेना अधिक उपयौगी और किफायती होगा। ऐसी दशा में पाठ्य सामग्री की उपयुक्तता और उपयोगिता को उसके कागज छपाई तथा सुन्दरता की बजाय अधिक महत्व दिया जाना चाहिये।

किसान तुरन्त उपयोग की ऐसी बात सीखना चाहता है जो प्रमाणित तथा आधुनिकतम हो और जिसे वह अपने खेत पर एकदम काम में ला सके। दूसरे व्यवसायी वर्गों के साथ यही बात सच है। जब १९६१ में घनी खेती का कार्यक्रम जिलावार कुछ जिलों में

आरम्भ किया गया, जिनकी संख्या अब केवल पांच रह गई है तो ऐसे प्रत्येक जिले को पाठ्य साहित्य तैयार करने के लिये एक-एक छपाई की मशीन दी गई। ऐसी छपाई की मशीनें कहीं-कहीं बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। अनुलिपित पाठ्य सामग्री के स्थान पर इन मशीनों द्वारा छापी गयी पाठ्य सामग्री शिक्षार्थियों की संख्या बढ़ जाने पर अधिक उपयोगी होगी। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार बनाई गयी पाठ्य सामग्री, सरकारी विभागों द्वारा प्रदर्शन तथा प्रचारार्थ बनायी गई सामग्री से सर्वथा भिन्न है। प्रचार साहित्य का विषय तो सरल होता है, परन्तु वह सज्जा में बहुत उदार तथा अपव्ययी जबकि व्यवसायोपयोगी साक्षरता की पाठ्य सामग्री का विषय दैनिक जीवन के व्यवसाय से सम्बन्धित तथा उसके लिए उपयोगी होता है। परन्तु साज सज्जा में सरल तथा दिखावा रहित।

व्यवसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रम प्रेरणादायक तथा आकर्षक तब ही हो सकता है जब वह दैनिक जीवन के विकास और प्रगति से सम्बन्धित हो। भविष्य निर्माण के लिए जो भी प्रगति तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रम बनाये जायें, उन सब का वह एक आन्तरिक अंग बन जाये, उनसे पूरा सामंजस्य स्थापित करे और केवल नाममात्र के लिये न किया जाये। ऐसी साक्षरता की शिक्षण पद्धति ऐसी होगी जिसमें अक्षर ज्ञान से लेकर उन सब ही विकसित तथा तकनीकी कलाओं की जानकारी देना भी शामिल होगा जो शिक्षार्थियों के दैनिक जीवन के उद्योगों की सफलता के लिये जरूरी हैं।

साक्षरता ज्ञान का देने वाला शिक्षक प्रगति के रास्ते में शिक्षार्थियों का साथी है। उसका योगदान कार्य क्षेत्र के विशेष उद्योग तथा उसकी आर्थिक प्रगति के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। यदि वह विद्यालय का शिक्षक है तो व्यवसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रम की व्यवस्थापकों को चाहिये कि उसे शिक्षार्थियों के आर्थिक

कार्यक्रम का कुछ क्रियात्मक अनुभव दे दें ताकि वह शिक्षार्थियों की रहनुमाई कर सके। खेतों का अथवा उद्योग का केवल दिखावे का ज्ञान उसके लिये पर्याप्त न होगा। किसान अथवा श्रमिक ऐसे अनभिज्ञ शिक्षक से प्रभावित न होगा। इसका परिणाम यह होगा कि अक्षर ज्ञान और उन्नत व्यवसायिक ज्ञान में बड़ा भेद हो जायेगा। जब कभी ऐसा हो जायेगा, उसी समय व्यवसायोपयोगी साक्षरता का कार्यक्रम ठप्प हो जायेगा और उसके स्थान पर केबल परम्परागत साक्षरता कार्यक्रम तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम रह जायेगा। ऐसा कहने से मेरा मतलब साधारण प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम की अवहेलना करना नहीं है। मतलब वास्तव में यह है कि व्यबसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रम यदि चलाना है तो उसको सफल और उपयोगी बनाने के लिये यदि शिक्षकों के बारे में ऊपर बताई बातों का ध्यान न रखा गया, तो ऐसा कार्यक्रम चलाना व्यर्थ है।

शिक्षक भले ही वे लोग भी हो सकते हैं जो स्वयं उस आर्थिक कार्य में एक न एक रूप में लगे हुए हैं जैसे कृषि शास्त्री, डाक्टर, इन्जोनियर, नर्स तथा प्रशिक्षित कला दस्तकार आदि आदि। ऐसी दशा में इन लोगों को प्रौढ़ मनोविज्ञान के मुख्य और मूल सिद्धान्तों का ज्ञान कराना होगा, पढ़ाने के लिये तथा आपसी बातचीत की योग्यता उत्पन्न करने की मूल आवश्यकताओं की तथा प्रौढ़ों को प्रौढ़ समझ कर बचकाना तरीके से न पढ़ाने की जानकारी देनी होगी। यह वास्तव में एक दोतरफा तरीका है। एक ओर तो शिक्षक को प्रगतिशील आर्थिक कार्यक्रम की जानकारी देनी होगी और दूसरी ओर व्यबसायी विशेषज्ञ को शिक्षण पद्धति की विशेषताओं की जानकारी देनी होगी, अक्षर ज्ञान के तरीकों तथा शब्दावली की।

ऐसी दशा में अनुवर्ती शिक्षा एवं प्रशिक्षण का क्या होगा। यह प्रश्न अब उठता है। इसका उत्तरदायित्व आर्थिक विकास कार्य के लिये धन देने वाली संस्थाओं जैसे बैंकों और सहकारी

समितियों पर होगा । इसके अतिरिक्त खाद, रासायनिक दवाइयों, बीजों तथा मशीनी यंत्रों आदि के देने वाली संस्थाओं का भी यह उत्तरदायित्व होगा । बड़े उद्योगों में यह उत्तरदायित्व श्रमिक संघटनों का है । कृषि विभाग तथा इसी प्रकार के अन्य सरकारी विभाग भी इस अनुवर्ती कार्यक्रम के लिये उत्तरदायी होंगे ।

अभी तक के व्यवसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रमों की व्यवस्था तथा संचालन के आधार पर जो अनुभव हुए हैं, उनमें यह बात बड़ी निराशाजनक है कि कार्यक्रम के बाद शिक्षार्थियों और शिक्षकों में कोई सम्बन्ध नहीं रहा है । पत्र, पत्रिकाओं, सम्पादकीय पत्रों, समाचार पत्रों तथा पाक्षिकों में नवसाक्षरों के लिये विशेष स्तम्भों के प्रकाशन तथा अन्य जानकारी पूर्ण साहित्य का प्रकाशन यह सब तो साक्षरता कार्यक्रम का अनुवर्ती अथवा मनोवैज्ञानिक स्वाभाविक भाग ही है । परम्परागत साक्षरता कार्यक्रम में साधारणतया एक जनता पुस्तकालय का योगदान अनुवर्ती कार्यक्रम के रूप में बहुत महत्वपूर्ण है । परन्तु व्यवसायोपयोगी साक्षरता कार्यक्रम में तो शिक्षार्थी को अपना स्वयं ही पुस्तकालय बनाना होगा जिसमें पत्रक, पत्रिकाएं, सरकारी विभागों द्वारा प्रसारित प्रचार सामग्री तथा आदेश पत्र, बैंकों, सहकारी संस्थाओं तथा अन्य ऐसी ही संस्थाओं द्वारा प्रसारित व प्रकाशित प्रचार सामग्री जो आर्थिक उन्नति के कार्यक्रमों से सम्बन्धित है, वे सभी रखनी होगी और विषय सम्बन्धी जानकारी के इस भंडार को सभी नये से नये प्रकाशनों से भरपूर रखना होगा । इस प्रकार व्यवसायोपयोगी साक्षरता प्राप्त प्रत्येक शिक्षार्थी चाहे शैक्षिक तौर पर विद्या विशेषज्ञ विद्वान न हो परन्तु क्रियात्मक रूप से ज्ञानी अवश्य है ।

अध्याय ५

किसानों में सूचना तथा संचार सेवा

"कृषि सूचना" शब्द से इसके बड़े विस्तृत होने का आभास होता है और साथ ही संकीर्ण होने का भी। विस्तृत यह इसलिए है क्योंकि इसमें कृषि सम्बन्धी सूचना देने के सभी साधन सम्मिलित हैं और सूचना पाने वालों में उपज की मण्डियों में वस्तुओं के भावों पर प्रभाव जानने के इच्छुक नगर निवासियों से लेकर कृषि विस्तार सेवा कर्मचारी, कार्यकर्त्ता तथा स्वयं किसान भी शामिल हैं। संकीर्ण यह इसलिए है कि इसका अभिप्राय किसानों को केवल सूचना देना ही समझा जाता है, उसे समझने, याद रखने तथा प्रयोग में लेकर बढ़ाने की कोई विधि नहीं बताई जाती।

सामान्य पाठकों के लिए, सुनने वालों के लिए तथा देखने वालों के लिए कृषि सम्बन्धी सूचना का अर्थ कृषि उत्पादन में लगे हुए किसान की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न है। कार्यशील किसान के लिए तो इसे उसके प्रशिक्षण का अभिन्न अंग माना जायेगा जो वास्तव में उत्पादन क्रिया ही है। किसान प्रशिक्षण योजना में जानकारी केवल बता देने के लिए ही नहीं दी जाती, यह प्रयोगात्मक प्रदर्शन का ही अंग होती है, ताकि नई कलाएं, नया ज्ञान और नई तकनीक खेती में काम करने के साथ ही साथ सीखी जा सकें अथवा किसान को उसके खेत में काम करते करते ही सिखाई जा सकें।

सूचना एवं संचार साधनों का पहला योगदान तो यह है कि उनके द्वारा कृषि उद्योग में नई तकनीकों तथा साधनों के प्रयोग का

अनुकूल वातावरण बन जाता है। यह तो उनका प्रेरणादायक योगदान है। हाल में किये गये अध्ययनों से जान पड़ता है कि भारतीय किसानों को उन्नत खेती योजना अपनाने के लिए संचार साधनों से बहुत प्रेरणा मिली है। परन्तु सच तो यह है कि गेहूं पैदा करने वाले क्षेत्रों में किसान को उन्नत खेती करने के लिए जो प्रेरणा मिली है, उसके दो मूल आर्थिक कारण हैं। एक तो यह कि बौनी जाति के गेहूं के प्रयोग से गेहूं की उपज तथा किसानों की आमदनी मामूली नहीं, कई गुणा बढ़ जाती है। जब तक नये साधनों और तरीकों अर्थात् उत्तम बीज, खाद, सिंचाई तथा कीट-नाशक दवाई के प्रयोग से केवल मामूली-सा आर्थिक लाभ हुआ तब तक बारानी क्षेत्र के किसानों ने अपनी सीमित पूंजी को इन नये साधनों को अपनाने में नहीं लगाना चाहा। परन्तु जब यह देख लिया कि इन उत्तम बीजों के तथा नये साधनों के प्रयोगों से उपज प्रति एकड़ तीन चार गुणा बढ़ जाती है, तो उनके प्रयोग करने में किसी को भी कोई झिझक नहीं हुई। दूसरी बात यह है कि पैदावार पर खर्च करने की अपेक्षा उससे आमदनी बहुत अधिक हो गई। कीमतों के इस सन्तुलन से किसान के लाभ में बढ़ोतरी हो गई। अनाज की खरीदारी भी खाद्य निगम द्वारा की जाती है, इससे भी किसानों को बहुत प्रोत्साहन मिला हैं।

जब तक ये दोनों बातें किसान को प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दी, तब तक अनेक संचार साधनों अर्थात् रेडियों, फिल्म, समाचार पत्र, परिपत्र तथा चित्रों आदि द्वारा बहुत कुछ किया जाते रहने पर भी किसान प्रभावित तथा प्रेरित नहीं हुआ। प्रश्न उठता है कि क्या यह समझ लिया जाये कि संचार तथा सूचना के माध्यम किसानों को रुचिकर अथवा प्रेरणादायक नहीं हैं। ऐसा समझ लेना ठीक न होगा क्योंकि कृषि में नये साधनों तथा नये तरीकों के उपयोग की प्रेरणा का एक बहुत महत्वपूर्ण स्रोत उन्नत खेती के प्रयोग की सफलता की कहानी का संचार ही रहा है। जरूरी नहीं

कि सफलता की कहानी बहुत रोमांचकारी हो। प्रभावशाली सिद्ध होने के लिए कहानी दरअसल सत्य पर आधारित होनी चाहिए और उसके द्वारा किसानों की शंकाओं का समाधान होना चाहिए। यह बड़े हर्ष की बात है कि वर्तमान समय में तो राष्ट्रीय समाचार पत्रों में भी सफलता की इन कहानियों की चर्चा होती है। ऐसी कहानियों से किसानों में श्रद्धा और आत्म-निर्भरता उत्पन्न होती है और कृषि उद्योग मानव जीनन का अंग बन जाता है।

क्या बड़े प्रसिद्ध लोगों द्वारा दी गई रेडियो वार्ता तथा पत्र इस सम्बन्ध में प्रेरणादायक हो सकती है? साधारणतया नहीं। यदि ऐसा न भी कहा जाय, तो ऐसी प्रक्रियाओं को किसान लोग केवल रसमी और प्रभावहीन प्रणाली मानते हैं। परन्तु यदि किसी प्रमुख अधिकारी जैसे मन्त्री आदि द्वारा किसी नीति का वर्णन या किसी अधिकृत निर्णय का वर्णन सीधे बातचीत द्वारा किया जाय तो बह चर्चा प्रभावपूर्ण होती है।

प्रेरणा सीधे ही उत्पन्न हो सकती हैं तथा अवचेतन मनोभाव में भी। मार्शल मैकलूहन के मतानुसार बिजली से चलने वाले संचार साधन, रेडियो तथा टेलीविजन मानसिक विचारों को प्रभावित करने में इतने तीव्र हैं कि कार्य क्रम सुनने देखने वाले संचारित विषय की परवाह न करते हुए स्वयं इन संचार साधनों से प्रभावित होने लगते हैं। मेरे विचार से इन साधनों द्वारा प्रसारण धनी वर्गों में उपभोग सामग्री की प्राप्ति में प्रेरणा दे सकते हैं। परन्तु निर्धन तथा विकासशील वर्गों में तो इनका प्रभाव दुखदाई होता है क्योंकि उन्हें बहुत सी ऐसी वस्तुओं की याद आ जाती है जिन्हें वे प्राप्त नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त निर्धन समाज को कृषि विकास के लिए परिश्रम तथा साधन उपलब्ध करना है और इनसे लाभ उठाने के लिए नई तकनीकों को प्रयोग में लाना है। विद्युत शक्ति चालित सचार साधनों द्वारा आवचेतन मन पर जो प्रभाव होता है, वह

किसान को इन सब कार्यों के लिए प्रेरित करने के लिए काफी सबल नहीं है।

दूसरे, आज के युग में अधिकतम उन्नत तथा धनी वर्गों के समाचार तुरन्त पिछड़े वर्गों को मिलते हैं, यह भी एक असंगत परिस्थिति है। इसके प्रभाव से पिछड़े हुए लोगों की हरदम यह इच्छा रहती है कि जल्दी से जल्दी उन्हें भी वे सब समृद्धि प्राप्त हो जाये। उदाहरणार्थ कुछ भारतीय किसानों को कैनाडा और अमेरिका की फिल्म देखने के बाद उनके जैसे ट्रैक्टर तथा थ्रेशर लेने की इच्छा जागृत हो गई। लेकिन हमारे सीमित साधनों तथा श्रम शक्ति के वातावरण में तो ऐसी गम्भीर तकनीकी मशीनों की बजाय कुछ साधारण तकनीक अधिक उपयुक्त होगी।

यही वजह है जिससे कि भारतीय परिस्थिति में कृषि समाचार के संचारणार्थ उपग्रह का प्रयोग वास्तविक प्रक्रिया नहीं है। भारत भर में नई कृषि उन्नति की एक ही जैसी जानकारी का संचार किसानों को उन्नत खेती के तरीके अपनाने के लिए प्रेरणा नहीं दे सकता। टेलीविजन की तस्वीरें भी किसान के चाहे जितना निकट होने के बावजूद भी बहुत प्रभावशाली नहीं होगी, क्योंकि इसमें से कुछ केवल एक स्वप्न मालूम होगा। सफलता की कहानियों का प्रभाव भी बहुत साधारण ही होगा।

इस बात का तात्पर्य यह हुआ कि प्रभावपूर्ण होने के लिए कृषि समाचार सोद्देश्य, यर्थाथ, सूक्ष्म तथा स्थानीय परिस्थितियों से सम्बन्धित होने चाहिएं। ये गुण केवल प्रेरणादायक सूचना के ही नहीं हैं, बल्कि शिक्षाप्रद सूचना के भी हैं। किन्तु उन्नत खेती के तरीकों को अपना लिए जाने के बाद प्रेरणा दायक जानकारी भी दी जा सकती है। इसका अभिप्राय खेती के निवेशों तथा उपकरणों की भिन्न भिन्न जातियों से है चूंकि जानकारी प्राप्त करने वाला किसान वर्ग पहले से ही सिंचाई के पम्प, मशीनें तथा अन्य ऐसे ही निवेशों को काम में ला रहा है। इसलिए यह जान-

कारी प्रभाव युक्त होगी। प्रेरणादायक जानकारी देने का उद्देश्य किसान को अधुनिकतम बनाने का नहीं है, बल्कि आधुनिक बनने का प्रयत्न करने वाले किसान को यह सब जानकारी देना है ताकि यह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रमाणित तथा उपयोगी निवेशों और उपकरणों की छांट कर सके।

नये तरीकों के अपनाने के लिए प्रभावपूर्ण प्रेरणा तो प्रमाणित आर्थिक लाभ और उपज के ऊंचे दामों से मिलेगी। इसलिए प्रेरणा-दायक सूचना का पहला गुण तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। शिक्षा प्रद सूचना की पहला गुण भी यही है। यह आवश्यक है कि नये तरीकों का प्रदर्शन व्यक्तिगत क्रिया रूप से होना चाहिए जिसमें किसान स्वयं काम करके सीखे, केवल देखकर नहीं। अब से पाँच छः साल पहले तक सरकारी फार्मों पर जो प्रदर्शन होते रहे, उनमें यही कमी थी कि किसान ने स्वयं काम नहीं किया।

परन्तु जब बीजों की उन्नत किस्में प्रचलित हुईं, तो कुछ शोध संस्थाओं ने वैज्ञानिकों द्वारा आस-पास के किसानों के खेतों पर ही इनके क्रियात्मक प्रदर्शन कराये। प्रतिष्ठानों की सहायता से और वैज्ञानियों के आदेशानुसार किसानों ने स्वयं उन्नत बीजों को प्रयोग में लाने की अनेक प्रक्रियायें की। इन किसानों की कामयाबी से पास पड़ोस में इस नये कार्यक्रम की जानकारी तुरन्त फैल गई। आपसी व्यक्तिगत वार्तालाप भी हुआ। अब इस प्रकार के राष्ट्रीय प्रदर्शन लगभग एक सौ जिलों में प्रत्येक जिले में १५-१५ प्रयोग केन्द्रों के हिसाब से चलाये जा रहे हैं और इन सबकी देख-रेख योजना बद्ध तरीके से केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है।

भारतीय परिस्थितियों में कृषि प्रगति की सूचना संचार में प्रयोगात्मक प्रदर्शन से दूसरा स्थान रेडियो का है। परन्तु रेडियो प्रसार के साथ साथ व्यक्तिगत आपसी वार्तालाप भी होना चाहिये। यूनेस्को की सरंक्षता में १९६५-६६ में भारत और कोस्टारिका में रेडियो और परिपत्रों के प्रभाव का तुलनात्मक

अध्ययन किया गया था। भारत से सम्बन्धित यह अध्ययन सामुदायिक विकास योजना के राष्ट्रीय प्रतिष्ठान हैदराबाद द्वारा किया गया था। इसके द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि रेडियो का प्रभाव प्रसार के साथ साथ सुनने वालों के किसान समूहों में आपसी वार्तालाप भी होने से अधिक बढ़ जाता है। यही बातें १९५६ में अखिल भारतीय रेडियो के यूनेस्को द्वारा कराये गये अध्ययन में, जिसमें मैं भी शामिल था, सिद्ध हुई थी। इसके विरुद्ध प्रकाशित सामग्री का प्रभाव तो बहुत सीमित है।

रेडियो के इस प्रभाव का यह भी कारण हो सकता है कि रेडियो प्रसारण किसी न किसी अधिकार पूर्ण अधिकारी के द्वारा दिया हुआ प्रमाण है। और सीधा सुना जाता है, चाहे वह एक तरफा ही हो और दूर से आ रहा हो। रेडियो की आवाज एक विषय विशेषज्ञ द्वारा दिया गया अधिकृत प्रमाण पत्र है। बौनी जाति के गेहूं का जब प्रचलन हुआ तो आरम्भ में पंजाब और पश्चिम उत्तर प्रदेश के रेडियो सुनने वाले किसान कृषि वैज्ञानिकों द्वारा रेडियो प्रसार के समय कागज पैन्सिल लेकर बैटते थे।

उन्नत कृषि सम्बन्धी जानकारी के रेडियो द्वारा प्रसार को उपयोगी बनाने के लिये कुछ बातें पूर्वापेक्षित हैं। सबसे पहले तो रेडियो प्रसार का विषय फसलों की सामायिक गतिविधि से सम्बन्धित होना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक क्षेत्र में फसलों का समय विभाजन पहले से करना होगा और उस क्षेत्र के लिये जो रेडियो प्रसार किये जायें उनकी पूर्व व्यवस्था उसी समय विभाजन के साथ साथ पूरे तालमेल से करनी होगी। यदि किसान खेतों में फसलों की सिंचाई में लगा हुआ है तो उस समय यूरिया के भुरकने सम्बन्धी रेडियो चर्चा व्यर्थ होगी। किसानों के खेतों पर प्रदर्शन में जो गतिविधि चल रही है, उसी पर रेडियो चर्चा होनी उपयोगी होगी। इसका यह लाभ होगा कि क्रियात्मक प्रदर्शन में जो कठि-नाईयाँ होंगी या जो शंकाए उपस्थित होंगी, उन सब का हल एवं

समाधान रेडियो चर्चा द्वारा हो सकेगा ।

दूसरी बात यह है कि रेडियों प्रसारण की विषय वस्तु और उसका प्रस्तुतीकरण अनुभवपूर्ण और गम्भीर होना चाहिये, बचकाना नहीं । इन रेडियो वार्ताओं के सुनने वाले अनुभवी तथा समझदार लोग हैं, मामूली प्राथमिक सरसरी ज्ञान की बचकाना बातचीत से वे प्रभावित नहीं होंगे । साथ-साथ वार्तालाप की भाषा सुनने वाले किसानों की अपनी भाषा होनी चाहिये । इस सम्बन्ध में पहले जिस अध्ययन का जिकर किया गया है, उसमें आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र को वार्तालाप की प्रति लिपि में लिखी भाषा को सुनने वालों की बोली में बदलना पड़ा था । फिर भी अधिकतर बोलने वाले रेडियो प्रसार में भी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की भाषा का ही प्रयोग करते हैं । इस कारण संचार सेवा उपयोगी सिद्ध नहीं होती ।

तीसरे प्रसारित किये गये हर कार्यक्रम में सुनने वालों द्वारा भेजी गयी शंकाओं के समाधान के लिये उचित प्रबन्ध होना चाहिये । प्रश्नों के उत्तर विवेकपूर्ण होने चाहिये, केवल संक्षिप्त और टाल मटोल के उत्तर सुनने वालों को संतुष्ट न कर सकेंगे । उत्तर देने का उद्देश्य प्रश्न कर्त्ता किसानों की कठिनाई का हल बताना है, उनको परामर्श देना है, केवल रस्मी तौर पर एक दस्तूर को निभाना नहीं है ।

इन सब बातों से यह सिद्ध हुआ कि उन्नत कृषि सम्बन्धी सूचना प्रसार के लिये रेडियो का उपयोग केवल क्षेत्रीय आधार पर हो सकता है । ऐसा क्षेत्र जिसकी आर्थिक तथा कृषि उत्पादन की परिस्थितियां, उत्पादन कार्यक्रम तथा समस्याएं बिल्कुल एक जैसी हों, वही रेडियो प्रसार द्वारा जानकारी के संचार के लिये उपयुक्त होगा । अखिल भारतीय स्तर पर इस योजना को कारगार समझ लेना भूल होगी । इसीलिये एक बार तो प्रति जिले में प्रथक प्रथक आकाशवाणी केन्द्र स्थापित करने का कार्यक्रम

बनाया गया था। इस समय तो उत्तम खेती सम्बन्धी विशेष सूचना प्रसारण के लिये भारतवर्ष में २४ केन्द्र हैं। अभी और बनाये जाने की योजना विचाराधीन है। इन्हें "फार्म होम ब्राडकास्ट" केन्द्र के नाम से जाना जाता है। इस योजना में कृषि विभाग के अधिकारियों तथा सूचना केन्द्राधिकारियों के बीच आपसी बातचीत और सलाह मशवरा करने का तो पूरा प्रबन्ध है, परन्तु पूर्व वर्णित प्रसार कार्यक्रम तथा खेतों में फसलों की गति विधि में तालमेल बहुत सीमित है। रेडियो वार्तालाप करने वालों को खेतों में फसल के कार्यक्रम की और अधिक जानकारी की आवश्यकता है ताकि दोनों में प्रस्तावित तालमेल पूरी तरह हो सके।

भारत में ग्रामीण किसानों के लिये आकाशवाणी कार्यक्रम १९३६ में पहली बार आरम्भ हुआ। उससे कुछ समय पहले कनाडा में खेती के कार्यक्रम की प्रगति में कुछ गिरावट आ जाने के कारण कनाडा रेडियो विशेष प्रसारण के द्वारा किसान वर्ग को जानकारी पहुंचाने का प्रयत्न किया गया था। सुनने वाले किसान लोगों के समूह थे जिनको फार्म फोरम कहा जाता था। इन समूहों के सदस्य रेडियो संचार के समय ऐसे सदस्यों के घर पर इकट्ठे हो जाते थे जिनके पास रेडियो हो। ये लोग रेडियो सुनते, वार्तालाप करते, शंकाएं प्रस्तुत करते और उनको समाधान के लिये रेडियो विभाग के अधिकारियों के पास भेजते ताकि अगले कार्यक्रम में उनकी शंकाओं का समाधान भी मिलें और अधिक जानकारी के लिये प्रश्नों के उत्तर भी।

यूनेस्को की सहायता से ऐसे ही एक कार्यक्रम आकाशवाणी ने १९५६ में, बम्बई राज्य (जो अब महाराष्ट्र है) के १४५ गांवों में चलाया। प्रत्येक गांव में १२ से २० तक ग्रामीण किसानों की एक रेडियो गोष्ठी बनाई गई जिसका एक अध्यक्ष और एक संयोजक बनाया गया। आधे घंटे का एक विशेष कार्यक्रम सप्ताह में दो बार दस सप्ताह तक इन रेडियो गोष्ठियों के लिए चलाया गया।

सुनने वाले प्रोग्राम के समय से आधे घण्टे पहले इकट्ठे हो जाते थे। संयोजक उन्हें प्रोग्राम की भूमिका सुनाते थे, फिर वे रेडियो वार्ता सुनते थे और फिर आपसी प्रश्नोत्तर और वार्तालाप, जिसमें सदस्य प्रोग्राम में दी गई जानकारी सम्बन्धी अपने-अपने विचार प्रस्तुत करते थे, नई जानकारी समझ लेते थे, कुछ बातों पर प्रश्न करते थे और स्पष्टीकरण मांगते थे। संयोजक इन गोष्ठियों की रिपोर्ट रेडियो केन्द्र पर भेजते थे। रेडियो विभाग के अधिकारी गोष्ठियों से प्राप्त प्रश्नों को सम्बन्धित विभागाधिकारियों कृषि विशेषज्ञों के पास उत्तर के लिए भेजते थे और अगले प्रसारण में सुनने वालों के प्रश्नों का उत्तर और शंकाओं का समाधान और अधिक जानकारी के साथ-साथ करते थे।

कुछ गोष्ठियों ने रेडियो पर बताई गई जानकारी के अनुसार गांव में कुछ कार्यक्रमों की व्यवस्था भी की। ये कार्यक्रम मुख्यत: कृषि सम्बन्धी विषयों पर ही थे जैसे चूहों से छुटकारा, मुर्गीपालन, पशुसुधार, शिशुविद्यालय व्यवस्था, तथा नीम हकीमों से खतरा आदि। प्रत्येक रेडियो प्रसार के कुछ भाग में गोष्ठियों की गतिविधियों, उनके प्रश्नों, उनके कार्यक्रमों, उनके विचारों, तथा उनकी रिपोर्टों पर प्रकाश डाला जाता था। लगभग १७ प्रतिशत गोष्ठियां सफलतापूर्वक रेडियो के कार्यक्रम में दी गई हिदायतों को मानती थीं।

पौल न्यूरेथ द्वारा १४५ में से २० रेडियो गोष्ठियों के अध्ययन के अनुसार जो परिणाम निकले वे निम्नलिखित हैं। एक रेडियो गोष्ठी वाले गांव में सुनने वालों की जानकारी लगभग दो गुणी हो गई जबकि बिना गोष्ठी वाले दूसरे गांवों में ग्रामीणों की जानकारी २० प्रतिशत भी नहीं बढ़ पाई। दूसरे, रेडियो गोष्ठियों के २० प्रतिशत सदस्य तो आपसी वाद विवाद में सक्रिय भाग लेते थे, ५० प्रतिशत भिन्न-भिन्न रूप से और ३० प्रतिशत सक्रीय नहीं थे। तीसरे, रेडियो गोष्ठियाँ गांव के जीवन में जनतंत्रीय व्यवस्था

की नई सँस्थाएं बन गई थीं। कुछ ग्रामवासी पशु मेले लगाते थे, कुछ प्रदर्शन, कुछ मार्ग निर्माण का काम करने लगे तो किसी ने कुंओं की मरम्मत तथा सुधार कार्य अपनाया और कुछ ने मुर्गी-पालन कार्य तथा अंडों का उत्पादन। ये सभी कार्य लोगों ने निजी रुचियों के अनुसार स्वयं करना आरम्भ किया था। ग्राम पंचायतों अथवा प्रबन्ध समितियों के तत्वाधान से बाहर ग्रामीण वर्गों में ग्रामीण समस्याओं पर वार्तालाप का होना अत्यन्त प्रेरणादायक अनुभव था और साथ-साथ वार्तालाप मण्डलों की सुचारू व्यवस्था का प्रशिक्षण भी। इसके द्वारा ग्रामीणों के पथ-प्रदर्शन के नये अवसर भी मिलते थे। चौथे, इन रेडियो गोष्ठियों के द्वारा रेडियो कार्यक्रम की लोकप्रियता, सफलता, उपयोगिता और उपयुक्तता को भी जाँचा जा सकता था। रेडियो गोष्ठी की प्रगति रेडियो कार्यक्रम की उपयुक्तता का सही आधार समझा जा सकता था। जिन सदस्यों से इस सर्वेक्षण में प्रश्न किये गये उनमें से ६० से ८० प्रतिशत ने यह स्पष्ट तौर पर उत्तर दिया कि रेडियो संचारों में बताये गये कार्यक्रमों को वे रुचि पूर्वक अपनाएंगे। यह भी सिद्ध हुआ कि जब संचार का विषय ग्रामीणों के जीवन सम्बन्धी विषयों पर होता था तो वाद विवाद और आपसी वार्तालाप अधिक क्रियाशील होता था और यदि संचार का विषय उनके दैनिक जीवन से दूर होता था तो वार्तालाप जीवन रहित रहता था।

उसी समय से जन शिक्षण के साधनों का प्रयोग खेती के नये तरीकों की जानकारी देने के लिये किया जाने लगा। जन शिक्षण साधनों के इस प्रयोग से सिद्ध हुआ है कि इन साधनों का उपयोग पूरे समन्वय के साथ होना चाहिए। आजकल भारतीय सरकार की ओर से अनेक क्षेत्रों में प्रसार कार्यकर्त्ता जीपों द्वारा फिल्म प्रोजेक्टर ले जाकर फिल्म दिखाते हैं। भारतीय सरकार के कृषि विस्तार सेवा निदेशालय में विशेष प्रचार साहित्य के प्रकाशन के लिये अलग छापे खाने हैं। सूचना व प्रसारण मंत्रालय के फिल्म

विभाग में खेती के ज्ञान की फिल्में दृश्य शिक्षण के लिये बनाई जा रही हैं। क्षेत्रीय प्रचार के इन सभी जन शिक्षण के साधनों यानि फिल्म प्रदर्शन, रेडियो संचार ग्रादि के प्रयोग में एक बड़ी कठिनाई या कमी यह है कि वे प्रगति, विकास ग्रौर ग्रभिलाषाग्रों की एक समूची तस्वीर तो पेश कर देते हैं, परन्तु सामान्यता उनके द्वारा सुनने देखने वालों के किसी वर्ग विशेष की प्रगति का चित्रण प्रस्तुत नहीं किया जाता। ऐसा तब ही हो सकता है जब कि संचार साधनों के ये कार्यक्रम ग्रारम्भ से ही क्षेत्रीय समस्याग्रों के ग्राधार पर विशेष वर्गों के लिये बनाये जायें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ विशेष क्षेत्रों में ग्राकाश-वाणी केन्द्र खोले गये हैं। फिर भी यह देखना है कि कहां तक संचार के ये कार्यक्रम स्थानीय समस्याग्रों तथा विशेष योजनाग्रों की समस्याग्रों पर ग्राधारित किये जा सकते हैं। ऐसी बहुत सी योज-नाएं हैं जिनमें विशेष श्रव्य दृश्य साधनों द्वारा पथ प्रदर्शन जरूरी है। जैसे उन क्षेत्रों की योजनाएं जहां भूमि के विकास ग्रौर समतलन की ग्रावश्यकता है। संचार सेवा तो मुख्यता विकास शिक्षण का साधन है। फिल्मों द्वारा वर्तमान जीवन की जो ग्राकर्षक तस्वीर प्रस्तुत की जाती है, वह तो युवकों को वास्तविक तथा रुचिकर इसलिये जान पड़ती है, क्योंकि उनमें से बहुत से बड़े होने पर स्वयं वैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं ग्रौर उसके ग्रवसर प्राप्त करना चाहते हैं। वे तुरन्त ही ग्रपने संरक्षकों से, जो उनके जैसा नहीं सोचते हैं, ग्रपना जेब खर्च बढ़ा देने की प्रार्थना करने लगते हैं, स्वयं कमाई करने की नहीं सोचते। इसका परिणाम है केवल निराशा ग्रौर ग्रापसी मन मुटाव। इसलिये बहुत सारे ग्रामीणों के लिये तो संचार साधनों की बजाय ग्रपने साथी उन ग्रामीणों की जीवन कथाएं, जो नागरीय जीवन से प्रभावित हो गये हैं, ग्रधिक प्रेरणादायक होती हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय ग्रामीणों के लिये

संचार सेवा कार्यक्रम को ग्राह्य, रोचक और उपयोगी बनाने के लिये प्रोग्राम रचना की तकनीक (रचना विधि), उसकी भाषा, प्रस्तुत विषय, और सन्देश अथवा चित्र, कला तथा व्यवहार को प्रस्तुत करने वाले पात्र, सभी का ख्याल रखना जरूरी है। यह पांचवां विशेष गुण है, जिसका ग्रामीण संचार सेवा की उपयुक्तता के लिये ध्यान में रखना जरूरी है। समाचारपत्रों, पुस्तकों तथा पत्र, पत्रिकाओं की अपेक्षा फिल्म और रेडियो लोगों के अधिक निकट है, चूंकि भारतीय ग्रामों में अभी सुनकर समझने सीखने का रिवाज कायम है। बड़ी फिल्मों की भाषा तो अधिकतर नगर-निवासियों के लिए होती है। रेडियो प्रसार में नगरनिवासियों के लिये कुछ अधिक विद्वतापूर्ण भाषा प्रयोग में लाई जाती है क्योंकि उसमें कुछ नये-नये शब्द, जो प्रचलित नहीं होते, भी कुछ तथ्यों एवं दैनिक गति विधियों को समझाने के लिये लाने पड़ते हैं। परन्तु ग्रामवासियों के लिये जो प्रसारण प्रति संध्या एक से डेढ़ घंटे तक के लिये किया जाता है, उसके लिये देहाती भाषा का ही प्रयोग करना पड़ता है। इसलिये क्षेत्रीय आकाशवाणी सेवा संचार के और सभी साधनों की अपेक्षा अधिक उत्तम तथा उपयोगी है।

छपा हुआ साहित्य अथवा पत्रिकाएं और पत्रक यहां तक के नारे और आदर्श वाक्य भी साधारणतया पहले अंग्रेजी भाषा में ही सोचे जाते हैं, जो केन्द्रीय तथा शहरी स्तर के विशेषज्ञों के लिये संचार जैसी नई तकनीक की मुख्य भाषा है। अंग्रेजी भाषा का अनुवाद बड़ा अजीब सा हो जाता है। इसका सबसे दुखद प्रभाव संचार सेवा पर ही पड़ा है। यहां यह बता देना असंगत न होगा कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में इसी प्रकार की अनुवादित भाषा मिलती है जिसे आने वाली शिक्षित पीढ़ी मूल भाषा ही समझती है। भारतीय भाषाओं में कुछ अनुवादित ऐसी भाषा मिलती हैं जिस पर अंग्रेजी जानने वाले विदेशी लोग हंसते हैं परन्तु आज का विद्यार्थी उन शब्दों को तथा पदों

को भली प्रकार अपनी भाषा में जानता और बोलता है और उनके मूल अंग्रेजी शब्दों को इतना नहीं जानता। जहाँ तक फीचर फिल्म का सम्बन्ध है उसके बारे में यह कहा जाता है कि उसमें जन साधारण की भाषा का प्रयोग नहीं है परन्तु यह कोई नहीं कहता कि फिल्म में राजनीति की अथवा फिल्म बनाने की तकनीक तथा उसके सिद्धांन्त की कोई बात नहीं होती। समस्या साधारण भाषा को गूढ़ तरीके से प्रयोग करने की नहीं है बल्कि कहानी को ही जनसाधारण की भाषा में सोचे व लिखे जाने की है।

कार्यक्रम का पूर्व परीक्षण बहुत महत्वपूर्ण है, इसकी वजह से संचार विशेषज्ञ को सामाजिक वातावरण, जिसमें ग्रामीणों की सामयिक परम्परागत संस्कृति और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं दोनों शामिल हैं, का पूरा-पूरा विचार रखना होगा। बीते समय में संस्कृति की परम्परागत कृतियां शहरों में आकर बसने वाले लोगों और उनके साथी देहात में रहने वाले अधिक शान्त और सन्तोषी लोगों के दोनों वर्गों में तालमेल पैदा करने में उपयोगी होती थीं। नये साधनों से यह मेल कुछ कम हो गया है और बीच की खाई बढ़ जाने की सम्भावना हो गई है। इसलिये नये संचार विशेषज्ञ का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपने साधनों और तरीकों को पुरानी परम्परा से ऐसे जोड़े जैसे देहाती बढ़ई से एक एक शहरी इंजीनियर अपने तकनीक को जोड़ता है। ऐसा करने से वह ग्रामीणों के निकट पहुंचेगा और उनमें श्रद्धा पैदा कर सकेगा।

१९५२ में, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने यह घोषणा की कि आदिम जातियों तथा देहातियों के नृत्यों का प्रति वर्ष एक विशेष पर्व देश की राजधानी नई दिल्ली में मनाया जायेगा तो इन पिछड़े वर्गों के असंख्य लोगों को अपने व्यक्तित्व तथा संस्कृति को अकस्मात ही मान्यता मिल जाने पर बड़ा आश्चर्य और आत्म विश्वास हुआ। संचार के साधनों के द्वारा ऐसी परम्पराओं को विशेष उपयोगार्थ अपना लेने में कोई कठिनाई न होगी। भारत के

केरल राज्य में चकियार अर्थात् एक पात्र-अभिनायक किसी शास्त्रीय प्रसंग से सम्बन्ध जोड़कर सामयिक गतिविधियों की चर्चा करने की परम्परा को निभाता है। जेम्स एन० मौसेल ने थाइलैंड की एक बड़ी दिलचस्प परम्परा का उल्लेख किया है। उसने बताया कि स्थानीय समाचार पत्रों में सम्पादकीय पृष्ठ पर दी गई टिप्पणी चित्रित कविता में होती है। इसको याद रखना आसान होता है। इसका उद्देश्य है किसी समस्या के नैतिक तथा भावात्मक पहलुओं को प्रस्तुत करना, और शंकाओं का समाधान करना। सम्पादकीय विचारों को कविता रूप देने से यह विचार साक्षात प्रवचन का रूप ले लेते हैं और जन साधारण में रुचि जागृत कर देते हैं।

देहाती क्षेत्रों में प्रदर्शनों की व्यवस्था के द्वारा स्थानीय लोगों से मेल बढ़ाना आसान हो जाता है। यह आवश्यक है कि परम्परागत वातावरण को प्रस्तुत करने में कार्यक्रम के मूल-प्रसंग तथा पात्रों में शिथिलता नहीं आनी चाहिए। वास्तव में तो देहाती राग तथा स्वाँग नई परिस्थितियों में बड़े आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण होते हैं। युद्ध के समय में दक्षिणी बिहार में जब आदिम जाति महिलाओं ने सरकारी अधिकारियों को फौजी बैंक बनाये जाने के लिए अधिग्रहणार्थ अपनी जमीनों को नापते देखा तो एक गाना बना लिया :

क्यों नापते हो हमारे खेतों की लम्बाई।
नाप सको तो नापो भूखे पेटों की गहराई।।

अवकाश प्राप्त सिपाही लोहासिंह बिहार रेडियो का एक मुख्य अभिनेता है। रेडियो पर उसका अभिनय कार्यक्रम असीम प्रसन्नता पैदा करता है। दो साल हुए उसने एक प्रगतिशील किसान बनना स्वीकार कर लिया तो उसके कार्यक्रम पहले से भी अधिक प्रभावशील हो गये। जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया, तब तो उसके कार्यक्रम बहुत ही प्रेरणादायक थे।

रूस में राष्ट्रीय क्रान्ति की बदलती हुई आवश्यकताओं को प्रदर्शित करने के लिये फिल्म कला में प्रसंगों के ऐसे ही बदलाव को अपनाया गया था। एलेक्स इन्कलीज ने चार ऐसी युक्तियां चलाई हैं—शताब्दी के दूसरे दशक में जन व्यापी आन्दोलनों के केमरा चित्र उतारना, बड़े भवन निर्माण योजनाओं के चित्र लेना, पंच-वर्षीय योजना के दिनों में सामूहिक खेती योजना के चित्र लेना, द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले और उसके दरमियान ऐतिहासिक वीरों तथा देश भक्तों के चित्र लेना और युद्ध के बाद से ख्रुश्चेव के आने तक नये रूस के परिश्रमी तथा निष्ठावान श्रम नेता के चित्र लेना।

स्वतन्त्र समाज में विकास की आवश्यकता होते हुए भी राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा सांस्कृतिक संचार कार्यक्रमों में ऐसा तालमेल होना बहुत कठिन है। परन्तु उच्च कोटि के संस्कृति तथा संचार विशेषज्ञ यदि भारतीय लोकगीतों, लोक अभिनय तथा नृत्यों के निष्पक्ष रूप से अध्ययन करके देखें कि उनमें से कौन से संचार सेवा में उपयुक्त हो सकते हैं तो अच्छा होगा। मध्यकालीन भारत में भक्ति युग के प्रवर्तक आसाम में शंकरदेव, बंगाल में चैतन्य, बृज में वल्लभाचार्य और दक्षिणी भारत के अनेक भगवत मेलों के व्यवस्थापकों ने जन शिक्षण की ऐसी युक्तियों का सहर्ष प्रयोग किया था। शहरी लोगों को चाहे ऐसे कार्यक्रम में रुचि न हो परन्तु जन साधारण कला को केवल कला और मनोरंजन को केवल मनोरंजन के लिये पसन्द नहीं करता।

वास्तव में यदि कार्यक्रम बनाने वाले, विषय विशेषज्ञ, स्थानीय संस्कृति के ज्ञाता, लेखक और कलाकार सब मिलकर कार्य करें तो ग्राम विकास के कार्यक्रम बहुत उपयोगी बन सकते हैं। भारत में छोटी फिल्मों तथा आकाशवाणी के कार्यक्रमों में ऐसा ताल मेल कम मिलता है क्योंकि ये सारे विशेषज्ञ केन्द्रीय स्तर पर संचार सेवा में एक साथ नहीं लाये जाते। लेखक अपने आपको लेख-

सौन्दर्य पर सीमित रखता है, इंजीनियर उसकी पूर्तिकला पर तथा विषय विशेषज्ञ उसके ज्ञान प्रभाव पर। स्थानीय संस्कृति विशेषज्ञ का इसमें कोई स्थान ही नहीं है। नई दिल्ली की प्रयोगात्मक दूरदर्शन संचार सेवा के लिये इन सब विशेषज्ञों को एक साथ लाकर बहुत ही उपयोगी कार्यक्रम बनाया गया था। इसमें लेखक, इंजीनियर तथा शिक्षक सभी ने अपने-अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार अनुभव किया।

लोक शिक्षण के संचार साधनों को काम में लाने वाले कार्यकर्ता की अपेक्षा आपसी बात-चीत करके समझाने वाला कार्यकर्त्ता साधारणतया अधिक प्रभावशाली होता है। यह सत्य हमको संचार सेवा के छटे अंग पर विचार करने की प्रेरणा देता है अर्थात् लोक शिक्षण में आपसी बातचीत के महत्व की। इस अध्याय के आरम्भ में हम पढ़ चुके हैं कि भारतीय ग्रामों में समाज शिक्षा कार्यकर्त्ताओं तथा प्रचार विशेषज्ञों की यह टोली कार्य कर रही है। स्वतंत्र भारत की सरकार ने इस व्यवस्था पर इसलिये खर्च करना स्वीकार किया क्योंकि देहात में अभी तक बहुत से लोग रेडियो तथा अन्य आधुनिक साधन नहीं खरीद सकते। यथा समय सस्ते ट्रांजिस्टर रेडियो प्रचलित हो जाने पर इस प्रथा में अन्तर हो जाएगा। राष्ट्रीय नेताओं को भी आपसी बात चीत का माध्यम ही अधिक उपलब्ध तथा ग्राह्य है।

स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में ग्राम सभाओं की व्यवस्था ही सूचना प्रसार का मुख्य साधन रहीं और ऐसा सोचा जाता था कि भारत के नव निर्माण काल में भी यही साधन रहेगा। इसी आधार पर देहाती सूचना व प्रसार विभाग कार्य करता रहा है। परन्तु अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि चाहे लोग नेताओं के भाषण ग्राम सभाओं में सुनने के इच्छुक भी हों फिर भी विशेष उद्देश्य के विकास हेतु कार्यक्रम को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने का साधन ग्राम सभाएँ नहीं हैं। आपसी बातचीत, वाद-विवाद गोष्ठी

तथा चर्चा मण्डल इन कामों के लिये अधिक उपयोगी हैं। ये साधन आकाशवाणी संचार कार्य से भी अधिक उपयोगी हैं। ऐसा अनेक प्रयोगों से स्पष्ट हो गया है कि आकाशवाणी तथा अन्य कार्यक्रम चित्त की एकाग्रता, सूचना, प्रसार, चित्रण तथा रुचिवर्धन में तो सफल होते हैं परन्तु कला शिक्षण एवं स्वभाव परिवर्तन में इतने प्रभावशाली नहीं हैं।

समाज शिक्षा तथा प्रचार कार्यकर्त्ता मनोवैज्ञानिक आधार पर इस व्यक्तिगत चर्चा के योग्य नहीं हैं। चूंकि वे अधिकतर शहरी वातावरण में रहने वाले शिक्षित लोग हैं, वे देहात में केवल उच्च वर्ग के लोगों से ही मेल जोल रखते हैं तथा बातचीत करते हैं। १९६३ में, ग्रामीण क्षेत्रों के ३००० लोगों के एक सरकारी सर्वेक्षण से पता चला कि १० में से ४ लोगों ने अपने मित्रों और पड़ोसियों से चीन के आक्रमण की बात सुनी थी। यह भी मालूम पड़ा कि अधिकतर ग्रामीणों को सूचनाएं ग्राम के दुकानदारों से मालूम होती हैं, सूचना अधिकारियों से नहीं, और यह अजीब बात थी कि ग्रामीण शिक्षकों से तो और भी कम लोगों का सम्पर्क हुआ था। यह वास्तविकता इस भावना के विरुद्ध है कि देहाती लोग किसी बात को तब ही अधिकृत मानते हैं जब वह उसको ग्राम प्रचारक अथवा शिक्षक से भी उच्च स्तरीय अधिकारी से मिली हो।

भारतीय ग्रामों में व्यक्तिगत आपसी बातचीत की प्रणाली तथा रूस और चीन देशों की प्रणाली में चार प्रकार का भेद है। प्रथम, भारतीय प्रचारक तो एक सरकारी अधिकारी है परन्तु रूस का स्थानीय—"आन्दोलक" तथा चीन का "अधिप्रचारक" स्वयं किसान अथवा स्थानीय कार्यकर्त्ता है जो इस काम को जन सेवा की भावना से अपने ऊपर ले लेते हैं। फ्रेड्रिक सो० टी० यू० के अनुसार ऐसे प्रचारकों की संख्या १९५२ में केवल शानटुंग सूबे में ४, ५०, ००० थी 'इन प्रचारकों की संख्या ही अधिक नहीं

होती बल्कि इसके साथ-साथ उन्हें इन सेवा की महत्ता, सत्यता और उपयोगिता पर दृढ़ विश्वास है। एलेक्स इन्कलस के कथानुसार यह आन्दोलन पक्का बोल्शविक होता है और अपने दल की नीति तथा कृति का स्थाई आधार।

दूसरे, भारतीय सूचना अधिकारी कोई किसान या कारीगर नहीं होता। वह जब गांव में भी होता है तो गरीब किसान के निकट नहीं होता। किसान तो उसे धरती के साथी की बजाय उसकी मोटर तथा अन्य यन्त्रों आदि का अधिकारी समझते हैं। आरम्भ में रूस और चीन में भी इन कार्यकर्त्ताओं की कुछ ऐसी ही स्थिति थी। परन्तु भारतीय अधिकारी की शिक्षा उसकी और भी कमजोरी बन गई।

तीसरे, रूसी स्थानीय शिक्षक चूंकि सरकारी अधिकारी नहीं होता इसलिये वह नीति निर्धारित करने वालों को लोगों के मत तथा विचारों से सूचित कर सकता है, परन्तु भारत में समाज शिक्षा तथा प्रचार कार्यकर्त्ता केवल केन्द्र निरीक्षण, सभा व्यवस्था तथा फिल्म प्रदर्शन की सूचना अपनी सफलता प्रगट करने के लिये देते हैं। जन मत का उल्लेख तो कभी-कभी ही होता है और वह भी केवल प्रशंसापूर्ण।

चौथे, भारतीय प्रचारक को कभी भी व्यक्तिगत बातचीत विधि का प्रशिक्षण नहीं मिलता। समाज शिक्षा कार्यकर्त्ता तो संचार कार्य को अपना कर्त्तव्य क्षेत्र ही नहीं समझते और संचार कार्यकर्त्ता कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं चला सकते। उन्हें छांट करने की, सान्निध्य की, प्रचार शैली की, समय की तथा बार-बार दोहराने की विधियां नहीं मालूम है। इसलिए उसकी अपनी योग्यता ही सारी सफलता का आधार रहती है और जब कभी उसे अड़चन होती है तो विभागीय आदेशों का सहारा लेता है जो संचार-प्रचार सेवा की अच्छी तकनीक नहीं हैं।

ग्रामीण नागरिकों तथा स्थानीय नेताओं के शिक्षण का विस्तृत

तथा आधुनिकतम चीनी कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप चीन के असंख्य सैनिक, जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया, अत्यन्त भयानक शत्रु सिद्ध हुए। यह विषय हमारे विचारणीय प्रस्ताव का सातवां अंश है। इस अध्याय के आरम्भ में हम बता चुके हैं कि भारतीय ग्राम नेताओं के सभी प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा चलाये जा रहे हैं। परन्तु इसमें चीन के "विचार सुधार", कार्य जैसी कोई चीज नहीं है। 'विचार सुधार' कार्यक्रम के द्वारा नागरिकों में आत्म अध्ययन तथा आत्म निरीक्षण द्वारा भ्रमात्मक विचारों को छोड़ देने का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक कारखाने, खेत तथा बस्ती में अध्ययन मण्डल पार्टी के मान्य नेताओं के संरक्षण में बनाये जाते हैं। इन मण्डलों को कुछ प्रलेख दिये जाते हैं जिन पर चर्चा करके मण्डल के सदस्य इन प्रलेखों के विषय की सत्यता को जानने का प्रयत्न करते हैं, और उन परिस्थितियों से सम्बन्धित करते हैं। हर व्यक्ति कुछ न कुछ बात करता है और चर्चा के परिणामस्वरूप हर व्यक्ति को उस विषय से सम्बन्धित अपने गलत विचारों अथवा कार्यों और भावनाओं को प्रगट करना होता है और सत्य को जानकर भूल सुधार करनी होती है। फ्रेड्रिक सी० टी० यू० के कथनानुसार यह पद्धति मनोविज्ञान शास्त्री फ्रायड तथा जंग के सिद्धान्तों के अनुसार साम्यवादी दल की नीति राष्ट्र की विचारधारा को पार्टी की विचारधारा में परिवर्तित करने की उत्तम विधि है। इसके द्वारा सभी लोग साम्यवादी विचारों तथा नीतियों में विश्वास करने लगेंगे।

दूरदर्शन तो अभी भारत में आया ही है और अभी से रेडियो तथा दूरदर्शन की उपयोगिता का मुकाबला नहीं किया जा सकता। यह तो स्पष्ट ही है कि दूरदर्शन के द्वारा कुछ गम्भीर विषय चित्र के द्वारा आसानी से समझाये जा सकते हैं। शारीरिक परिश्रम के

स्थान पर मशीनी युग में दूरदर्शन संचार का एक नया साधन तो है ही। दूरदर्शन के प्रयोग से मशीन तथा उपकरणों के क्रियाशील प्रयोग को बातचीत के साथ-साथ देखने से कार्यक्रम को समझने में रेडियो की अपेक्षा बहुत सरलता होती है। रेडियो अथवा फिल्मों में तो यह क्रिया स्पष्ट नहीं होती। टैलीविजन में तो पूरी क्रिया ही वातावरण बन जाती है। इसलिए समझना सहज है। इसके कारण चाहे जो कार्यक्रम हो, चाहे नलकूप का हो, चाहे खाद प्रयोग का, चाहे कीट नाशक दवाई का, प्रत्यक्ष प्रदर्शन होने से उसमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

संचार कर्त्ता के व्यक्तित्व से यह श्रद्धा और भी बढ़ जाती है। दूरदर्शन पर बोलने वाला अथवा प्रदर्शन दिखाने वाला कोई साधारण कारीगर तो होता नहीं है, वह तो कोई विशेषज्ञ ही होता है। यदि सम्भव हो तो अनुवेषक स्वयं भी हो सकता है। परिणाम स्वरूप देखने वालों को यह विश्वास होता है कि संचारक जो बता रहा है, उसे स्वयं खूब जानता समझता है। वैसे तो संचार के किसी भी विद्युत माध्यम में यह विश्वास हो ही जाता है क्योंकि फल प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है, परन्तु दूरदर्शन में तो संचारक स्वयं ही दर्शक के सामने होता है। इसलिये वातावरण के बदल देने में दूरदर्शक एक प्रभावशाली माध्यम है।

दिल्ली दूरदर्शन केन्द्र के कृषि दर्शन कार्यक्रम में आरम्भ में बड़ी बाधा आई क्योंकि दूरदर्शन एक नया माध्यम था। इसलिये प्रोग्राम देखने वालों में सभी प्रकार के लोग बड़ी संख्या में सरकार द्वारा, विशेषकर किसानों के लिये लगाए गए दूरदर्शन यंत्रों पर भीड़ कर लेते थे। परिणामस्वरूप इस विशेष कार्यक्रम के प्रभाव में कुछ कमी हो जाती थी। साथ ही दिल्ली दूरदर्शन केन्द्र के कार्यक्रमों की प्रसार सीमा भी आस-पास के ही गाँव थे। अधिक दूर तक प्रसारण नहीं जा सकता था। भारतीय कृषि अनुसंधान प्रतिष्ठान के निकट ही होने के कारण, किसानों में साक्षरता

पर्याप्त होने के कारण तथा सारा वातावरण लगभग आधुनिक प्रभावों से परिवर्तित होने के कारण दिल्ली के आस-पास के किसान केवल खेती के कार्यक्रम के लिये दूरदर्शन पर आकर्षित नहीं हो सकते थे। जब तक उसमें कोई ऐसा और कार्यक्रम न जोड़ा जाये जो दूसरे माध्यमों से उनको प्राप्त न हो सके तब तक वे दूर-दर्शन कार्यक्रम देखने के लिये प्रेरित नहीं हो सकते थे, इसलिए कृषि दर्शन कार्यक्रम बहुत गम्भीर न हो सका, जितना कि अर्द्ध-विकसित क्षेत्रों के लिए हो सकता था। इसके अतिरिक्त दिल्ली दूरदर्शन के पास स्थान-स्थान पर पहुंचकर प्रोग्राम रिकार्ड करने की सुविधाएं भी नहीं थी। इसलिये बाहर के कार्यक्रम या तो फिल्म द्वारा लिये जा सकते थे या वहीं तक सीमित थे जहां तक कैमरा ले जाया जा सकता था।

चाहे दूरदर्शन हो चाहे रेडियो, वास्तव में, कृषि संचार की सफलता तो सुनने देखने वालों पर ही निर्भर करती है। संचार कार्यकर्त्ताओं को तो साधारणतया यही सन्तोष होता है कि उन्होंने उपयोगी तथा रुचिकर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उनको सुनने देखने वालों पर उनके प्रभाव से कोई सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु जैसा पहले कह चुके हैं, अनेक अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि रेडियो कार्यक्रम तो तब ही सफल होते हैं जब देखने सुनने वाले प्रोग्राम के बाद उस पर चर्चा करें और आपसदारी में उपयोगी जानकारी को काम में लाएं। वास्तव में तो इस प्रकार की आपसी बातचीत प्रत्यक्ष प्रदर्शनों में भी जरूरी है। परन्तु उसमें तो किसान लोग निश्चित दिन और समय पर एक स्थान पर आकर वैज्ञानिकों द्वारा दिखाया गया प्रदर्शन देखते हैं और वह विशेषज्ञ उनकी शंकाओं का समाधान भी कर सकते हैं।

रेडियो कार्यक्रम के लिये सुनने वालों की बहुत बड़ी भीड़, जैसी आरम्भ में हो जाती थी, वह कृषि संचार में दी गई जानकारी से लाभ नहीं उठा सकती। डा० पाल नौरेथ के साथ मैंने भारतीय

रेडियो गोष्ठी कार्यक्रम का जो अध्ययन किया उसमें मैंने बताया है कि किस प्रकार इस कार्यक्रम में सुनने वालों की भीड़ जन साधारण की बजाय केवल समउद्योगी प्रौढ़ कृषकों में बदल गई। प्रत्येक गोष्ठी में १५ से २० तक वह सदस्य थे जिन्हें अपने कृषि कार्यक्रम सम्बन्धी जानकारी पाने की लगन थी तथा उसकी समस्याओं को सुलझाना चाहते थे और उस बारे में विशेष जानकारी लेना चाहते थे। इस प्रकार के छोटे व्यवस्थित समान रुचियों वाले दलों के द्वारा कार्यक्रम का सुनना, उस पर वार्तालाप करना, शंका समाधान करना तथा अधिक जानकारी प्राप्त कर उसको काम में लाना सम्भव हो सकता है। अपनी शंकाओं को मण्डल वाले रेडियो अधिकारियों को भेजते हैं, वहाँ से अगले कार्यक्रम में अपनी शंकाओं का समाधान सुनते हैं और लाभ उठाते हैं। इस तरीके से मण्डल के सभी सुनने वाले सदस्यों को शंकाएं प्रस्तुत करने तथा उनका समाधान ढूंढ कर उसे काम में लाने की आदत पड़ जाती है। इससे ज्ञान वृद्धि होती है और सूझ-बूझ बढ़ती है। यह कहना व्यर्थ होगा कि जो कुछ रेडियो कार्यक्रमों पर लागू होता है या वहां उनके बारे में कहा गया है वह सब दूरदर्शन कार्यक्रम पर भी उतना ही लागू है। आल इण्डिया रेडियो ने रेडियो गोष्ठियों की तरह "दूरदर्शन मण्डल" भी बनाये हैं। और उनकी संख्या लगभग १२,००० है।

फिलम बनाने वाले तो संचार सेवा की बारीकियों को और भी कम समझते हैं क्योंकि फिलम के दृश्य प्रभाव के कारण उन्हें इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं है। छोटी फिलमों (डोक्यूमेन्ट्री फिलमों) के बनाने वाला विभाग भारतवर्ष में संसार भर के देशों के विभागों से श्रेष्ठ है और कृषि ज्ञान सम्बन्धी फिलम बनाने वाले वर्ग ने अनेक अति उत्तम तथा मान्यता प्राप्त पुरस्कृत फिलमें बनाई हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि यह फिलमें किसानों को कृषि की नई तकनीक सम्बन्धी सूचना, ज्ञान

तथा प्रशिक्षण देने में सफल हुई हैं। परिस्थिति तथा वातावरण बदलने में उनसे प्रोत्साहन तथा प्रेरणा अवश्य मिली है, और प्रगतिशील खेती करने की चाह भी जागृत हुई है।

इन फिल्मों के पूरी तरह सफल न होने का एक कारण यह है कि फिल्म बनाना इतना खर्चीला है कि प्रत्येक क्षेत्र के लिये स्थानीय वातावरण की फिल्म अलग-अलग नहीं बन सकती और न ही ये फिल्में भारी तादाद में बन सकती हैं। इसके लिये ८ मिली मीटर की फिल्में बनानी होंगी, जो साधारण उपक्रमों से सस्ती बन सकेंगी, परन्तु इस काम में अभी समय लगेगा। दूसरे आज के तेजी से बदलते हुए युग में और ज्ञान के तीव्र विकास की परिस्थितियों में ताजा बनी हुई फिल्म भी जल्दी ही पुरानी पड़ जाती हैं और जानकारी बहुत आगे बढ़ जाती है। भारतवर्ष की परिस्थितियों में फिल्म बनाने में बहुत समय लगता है परन्तु प्रशिक्षण तथा जानकारी के सफल साधन के नाते यह बहुत जल्दी और सस्ती बनानी चाहिऐं।

इसके अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी फिल्मों का प्रदर्शन किसान की आवश्यकताओं पर आधारित नहीं होता। साधारणतया क्षेत्रीय प्रचार संस्थाएं इन फिल्मों को जन साधारण को बड़े समूहों में दिखाते हैं और इनके साथ सूचना तथा प्रचार की और भी कई फिल्में इनके साथ-साथ दिखाते हैं। विश्वविद्यालयों तथा अन्य विभागों के पास भी प्रोजेक्टर होते हैं, जहां प्रदर्शन इतनी भीड़ के सामने नहीं होता। परन्तु किसी भी दशा में फिल्म का सम्बन्ध आम तौर पर फसल के क्रम से नहीं होता और न ही चक्र के आधार पर कोई कार्यक्रम बनाया जाता है। देखने वालों की संख्या बहुत अधिक होती है। इसलिए व्यक्तिगत वार्तालाप सम्भव नहीं होता, और स्थाई जानकारी का आधार तो वह व्यक्तिगत वार्तालाप ही है, प्रशिक्षण का साधन चाहे जो भी हो।

वास्तव में, भारत में तो कृषि प्रदर्शनी तथा मेले इन नये

साधनों की अपेक्षा ज्ञान और जागृति फैलाने में अधिक उपयोगी रहे हैं। ये नुमाइश और मेले नाश्ते की दुकानों की तरह होते हैं, जहां से जिनका जो जी चाहे, ले लें। उनमें सभी के उपयोग की चीजें होती हैं विशेषकर वे वस्तुएं प्रदर्शित की जाती हैं, जिनकी किसान को जरूरत है, उनकी जानी पहचानी हैं। चित्रों में वे अपने जैसे लोगों को क्रियाशील देखते हैं।

दूसरे, नुमाइशें बिजली से चलने वाले यंत्रों की तरह तेजगामी नहीं है। इनमें तो किसानों को आराम से सुविधा पूर्ण हर चीज और कार्य को देखने समझने का अवसर मिलता है और अपने निजी अनुभवों के आधार पर जांचने तोलने का भी। इसलिए जानकारी वास्तविक तथा स्थाई होती है। कृषि जानकारी प्रसार की यह एक ऐसी विधि है जो बीच का रास्ता प्रस्तुत करती है, न खाली मौखिक और न द्रुतगामी।

तीसरे, वर्तमान परिस्थितियों में जब किसान आधुनिक तकनीक जानने का इच्छुक हो गया और उसे अधिक उपज देने वाले बीजों तथा बहुफसली कार्यक्रम के बारे में आधुनिकतम जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हुई तो यह कृषि मेले भी बहुरूपीय हो गये। इनमें विशेषज्ञों द्वारा प्रयोग भी दिखाये गये, किसानों की अपनी उगाई हुई और लाई गई सर्वोत्तम वस्तुओं का प्रदर्शन भी हुआ और प्रश्नोत्तर के लिये किसानों तथा वैज्ञानिकों के बीच व्यक्तिगत वार्तालाप और शंका समाधान के लिये बैठक भी बुलाई गई। जहां कहीं इस प्रकार के संग्रथित मेले हुये, वहां कृषि जानकारी प्रसार तथा किसान की निजी सूझ-बूझ की प्रगति बड़ी सफल रहीं। मेले जानकारी बढ़ाने में तथा नई सूझ-बूझ देने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

चित्र प्रदर्शन भी नुमाइशों, मेलों तथा प्रदर्शनों से सम्बन्धित है। इन सभी प्रकार के दृश्य साधनों का काम लिया जाता है, और उनकी सहायता से हर प्रकार की जानकारी दी जाती है।

इनका प्रयोग विद्यालयों में तो होता ही रहा है परन्तु विस्तार सेवा कार्यकर्त्ताओं के लिये भी ज्ञान प्रसार के ये साधन बहुत सस्ते और सुविधापूर्ण हैं। इनके प्रयोग के लिये यह जरूरी है कि ये नई परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर बदलते रहें ताकि विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता वातावरण और वास्तविक परिस्थिति के अनुसार सभी समस्याओं का समाधान कर सके।

विशेष प्रकार से बनाई गई और सभी आवश्यक सामग्री से सुसज्जित चलती-फिरती नुमाइशी गाडियां भी इस प्रचार के लिए दूर-दूर के देहाती क्षेत्रों में सफलता पूर्वक काम में ली गई हैं। केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने यह योजना आरम्भ में ३४ ऐसी प्रदर्शनी गाड़ियों से चलाई थी। परन्तु भारत जैसे विशाल देश में तो ऐसी बहुत सारी गाड़ी टोलियों की आवश्यकता थी। साथ ही यह गाड़ी टोलियां यदि प्रदर्शनी के साथ-साथ कृषि सेवा कार्य भी करें तो किसान लोग इन्हें बहुत ही उपयोगी पायेंगे। उदाहरणार्थ यदि यह टोली कीट नाशक दवाईयों के छिड़काव की व्यवस्था भी कर दे अथवा खाद के प्रयोग की तरकीबें बताएं या नये उपकरणों की मरम्मत की सेवा भी उपलब्ध कर सके, तो गाड़ियों की सहायता से व्यवस्थित मेले में बड़ा आकर्षण हो जायें और बड़ी संख्या में लोग इन्हें देखने आवें और उनकी सेवा से लाभान्वित हों। दूसरे इस प्रकार के प्रदर्शनों का एक और लाभ यह भी होगा कि इसके द्वारा किसानों की समस्यायें तथा आवश्यकताएं अधिकारियों तक भी पहुंचाई जा सकेंगी। इस प्रकार यह सेवा दुतरफा संचार सेवा की कमी को पूरा कर देगी। दुर्भाग्यवश विकाशसील देशों में धनाभाव के कारण अभी तक इस प्रकार की सेबा ने बहुत व्यापक रूप ग्रहण नहीं किया।

सारी परिस्थितियों को देखते हुए यह तो जरूरी ही है कि किसान शिक्षा तथा जानकारी के ऐसे श्रव्य दृश्य सहाय साधनों की खोज की जाये जो अधिक खर्चीले न हों और जिन्हें किसान लोग स्वयं

ही बिना विशेष कारीगरों की सहायता के काम में ले सकें। वैसे तो इस काम के लिये वीडियो रिकार्ड प्लेग्रर्ज बहुत ही उपयोगी हो सकते हैं क्योंकि उनके द्वारा सभी प्रकार के अनुभवों का श्रव्य-दृश्य चित्रण प्रस्तुत हो सकता है, परन्तु वह भी बहुत खर्चीले होंगे। दुर्भाग्य से विकासशील देशों की आवश्यकताओं की ओर अभी तक शोधकर्त्ताओं का ध्यान नहीं गया क्योंकि बहुत सारा उत्पादन का काम व्यापार कम्पनियों द्वारा ही किया जाता है जो ग्रामीणों के लिये सस्ते साधन बनाने की चेष्टा नहीं करतीं।

देखना यह है कि कृषि सूचना के माध्यम के नाते पुस्तकें, पत्र, पत्रिकाएं, पत्रक आदि छपी हुई सामग्री श्रव्य-दृश्य साधनों की अपेक्षा कहां तक उपयोगी होगी। लगभग २० करोड़ निरक्षर प्रौढ़ों के देश में और २० करोड़ भी वह जिनमें से अधिकतर गांवों में रहते हों, छपी सामग्री के प्रयोग की अपनी सीमाएं हैं। पत्रों, लेखों, पत्रकों, पुस्तकों, और पुस्तिकाओं के रूप में छपी हुई अधिकतर सामग्री तो किसानों के शिक्षित नेताओं तथा विस्तार सेवा कार्यकर्त्ताओं के उपयोग की ही है। छोटे-छोटे किसानों के पास इस सामग्री को पहुंचने में और उनको उपयोगी सिद्ध होने में अभी समय लगेगा। फिर भी इस छपी हुई सामग्री के दो विशेष लाभ तो हैं ही।

एक तो सुधरी खेती के लिये बीज, खाद, कीटनाशक दवाईयां, उपकरण तथा यंत्र आदि जो कुछ भी सामग्री किसानों को उपयोग के लिए दी जाती है, उसके उपयोग में लाने की विधि, उसके लाभ, हानि तथा सावधानी के बारे में जो भी हिदायतें हों, वह सब छपी हुई पुस्तिकाओं के रूप में सामग्री के साथ ही चित्रों सहित दी जाती है। प्रत्येक किसान को इस छपे हुए साहित्य में दी गई जानकारी को समझना जरूरी है, चाहे वह खुद पढ़े और चाहे किसी पड़ोसी शिक्षित व्यक्ति से पढ़वाए। दुर्भाग्य से बहुत थोड़ी व्यापारिक संस्थाएं ऐसे साहित्य को भारतीय भाषाओं में और

विशेषकर किसान की अपनी भाषा में छपवाती हैं। अधिकतर ऐसा साहित्य अंग्रेजी भाषा में ही होता है। जिसके कारण उसका उपयोग बहुत सीमित रहता है।

दूसरे, इस प्रकार का जरूरी तथा उपयोगी जानकारी पूर्ण साहित्य यदि साक्षर नवयुवकों तथा उत्साही किसानों के लिये उपलब्ध किया जाये, तो वह उनको स्वाध्याय मण्डलों तथा चर्चा मण्डलों की व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होगा। इसका प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि रेडियो गोष्ठियों का और इस प्रकार नव साक्षरों के लिये यह पत्राचार शिक्षा व्यवस्था का काम देगा। एक दो जगहों के सिवाय ऐसा प्रयोग अभी तक नहीं किया गया है।

ऐसी दशा में स्थानीय भाषा के समाचार पत्रों का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण हो सकता है। इसी वजह से भारतीय ग्रामों में राजनैतिक चेतना आर्थिक विकास चेतना से भी पहले पहुंच गई। इसका बहुत सारा श्रेय भाषाई पत्रों को ही दिया जा सकता है। यदि किसी ग्रामवासी के एक पत्र अथवा सप्ताहिक पत्र भी आता है तो उसी के द्वारा राजनीति की सारी सूचना पा लेने के इच्छुक सब लोग रहते हैं।

अभी थोड़े पहले तक खेती सम्बन्धी विशेष सूचना स्तम्भ भी बहुत थोड़े समाचार पत्रों में ही होते थे क्योंकि भारतीय भाषाओं के सभी समाचार पत्र अधिकतर नगर निवासियों के लिए लिखते थे। अब जबकि बहुत सारे गांवों और छोटे नगरों की परिस्थितियां बदल रही हैं और उनमें भी समाचार पत्र जाते हैं, तो यह जरूरी है कि समाचर पत्रों में कृषि सम्बन्धी विशेष सूचना पृष्ठ अथवा स्तम्भ हों। बहुत सारे समाचार पत्रों के कर्मचारी इसके लिये पूरी तरह उपयुक्त नहीं हैं। गिने चुने राष्ट्रीय स्तर के अंग्रेजी समाचार पत्रों ने ऐसी सेवा के लिये विशेषज्ञों का प्रबन्ध कर लिया है। अच्छा होगा यदि भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र भी ऐसी व्यवस्था कर लें और किसानों के उपयोग की जानकारी के लिये विशेष

पृष्ठ अथवा स्तम्भ देने लगे।

किसानों के लिये ही अलग से विशेष समाचार पत्र अभी नहीं निकल रहे हैं और वे सम्भवतया सफल भी न हों क्योंकि किसानों की राय में विशेषकर कृषि सम्बन्धी समस्याओं में ही उनकी रुचि होते हुए भी समाचार पत्र का मतलब ऐसे पत्र से ही है जिसमें साधारण गतिविधियों के समाचार भी हों। ऐसा न होने पर किसान की राय में समाचार पत्र का कोई महत्व नहीं है। परन्तु गांवों में नव साक्षरों के लिए समाचार पत्रों का लाभ हो सकता है। केन्द्रीय सूचना तथा संचार मंत्रालय द्वारा प्रकाशित "अपना देश" काफी लोकप्रिय हुआ है। इसमें अधिकतर सूचना तथा जानकारी सम्बन्धी बातें होती हैं। अभी प्रशिक्षण सम्बन्धी कुछ नहीं होता।

कुछ राज्यों में तो यह पत्र ग्रामीण पुस्तकालयों के माध्यम से जाता है जिनमें से अधिकतर स्वतन्त्रता संग्राम काल में बने। इन पुस्तकालयों में अधिकतर पुस्तकें और मासिक पत्रिकाएं विशेष कर पिछड़ी माध्यम श्रेणी के समझदार लोगों के उपयोग की हैं। नव साक्षरों, अर्धशिक्षितों, स्कूल छोड़ बैठने वालों तथा किसानों के काम की न वह पुस्तकें हैं न पत्रिकाएं।

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया है कि कृषि सम्बन्धी सूचना तथा जानकारी देने में शिक्षा के संचार साधन तब ही उपयोगी हो सकते हैं जब उनके आधार पर व्यक्तिगत वार्तालाप के लिये चर्चा मण्डल बनाये जायें और उन संचार कार्यक्रमों का समय कृषि कार्यक्रम से समन्वयित हो और उस समय जो उत्तम खेती के साधन, बीज, खाद, सिंचाई, उपकरण आदि काम में लिये जा रहे हों, उनका संचार कार्य कर्म में उल्लेख हो। अथवा संचार सेवा का स्थानीय खेती की गतिविधियों से पूर्ण सम्बन्ध हो। यह अभी काफी नहीं हैं।

कृषि सम्बन्धी सूचना प्रसार से पूरा लाभ उठाने के लिये

भिन्न-भिन्न साधनों में भी ताल मेल होना चाहिये, उदाहरणार्थ यदि किसानों को यह बताना है कि अन्न की पौष्टिक तथा उत्पादक शक्तियों की रक्षा करने के लिये खाद का प्रयोग संतुलित होना ज़रूरी है तो जानकारी संचार के सभी साधनों अर्थात् रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, पुस्तकों, पत्रिकाओं, प्रदर्शनों और मेलों आदि सब के द्वारा साथ साथ यही जानकारी दी जानी चाहिये। ऐसी सूरत में यह जानकारी प्रभावशाली हो सकती हैं और याद भी रखी जा सकती है अर्थात् उसका प्रभाव स्थाई हो सकता है।

बहुत थोड़े विकासशील देशों में भिन्न भिन्न संचार के साधनों में ऐसा तालमाल बनाया गया है। इसके लिये व्यक्तिगत नहीं, योजना के आरम्भ काल में तथा उसके क्रियाकाल में दलगत व्यवस्था की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में कुछ आन्दोलन तो कभी कभी चलाये गये है जैसे अधिक वृक्ष लगाने के सम्बन्ध में जलूस निकाले और नारे लगाए गये—"अधिक अन्न उपजावों" अथवा "अधिक वृक्ष लगावो" आदि। आन्दोलनों का अपना उपयोग है परन्तु उनके द्वारा क्रियात्मक ज्ञान की गहराईयों तक नहीं ले जाया जा सकता और न ही उन्हें नये कार्यक्रम को अपनाने की प्रेरणा दी जा सकती है। इसलिए जो बात कही गई है वह आन्दोलन से कुछ भिन्न है। उसका अभिप्राय संचार सेवा के साधनों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण के लिये प्रयोग में लाने का है।

केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के सूचना प्रसार विभाग तथा राज्य कृषि मंत्रालयों के सूचना प्रसार विभागों और ऐसी ही ग़ैर सरकारी संस्थाओं द्वारा इस सम्बन्ध में काफी कार्य हुआ है और हो रहा है। केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के सूचना प्रसार विभागों द्वारा जो कुछ किया गया है और किया जा रहा है, उसका लेखा पुस्तक के पीछे दी गई टिप्पणियों में दिया गया है। इसमें जो कमी रह गई है उसका उत्तरदायित्व प्रसार विभाग पर नहीं है बल्कि इस कार्यक्रम के महत्व को समझने और उपयोग में लेने की कमी के

कारण है ।

संचार साधनों के इस कार्यक्रम की चर्चा मण्डलों के माध्यम से व्यक्तिगत बात चीत करके पुष्टि करनी होगी । संचार के इन साधनों द्वारा प्राप्त जानकारी पर चर्चा मण्डलों में बात चीत होने से दोतरफा शिक्षा कार्यक्रम पूरा हो जायेगा । मंडल के सदस्यों को जानकारी भी दी जा सकेगी और व्यक्तिगत शंकाओं का समाधान भी हो सकेगा । साथ ही उनकी समस्याओं को अधिकारियों तक पहुंचाने से उनके उत्तर विषय विशेषज्ञों द्वारा प्राप्त हो सकेंगे । यह सब कार्य बहुत सहायक होगा ।

एक और जरूरी बात संचार के सभी साधनों में तालमेल की है । यह जरूरी है कि किसी भी विशेष समय पर विशेष कार्यक्रम पर ही सारे संचार साधन प्रयोग किये जायें । तीसरी सबसे जरूरी बात यह है कि संचार साधनों द्वारा दी गई जानकारी विशेष समय पर हो रही कृषि गतिविधि तथा फसल-चक्र से सम्बन्धित हो । संचार सेवा कार्य कत्ताओं को कृषि विशेषज्ञ, माटी परीक्षक, खाद विशेषज्ञ, सिंचाई विशेषज्ञ, कीट नाशक दवाई विशेषज्ञ तथा रूपया उधार देने वाली संस्था के प्रतिनिधि सब मिलकर एक दल के नेता हों और पूरे तालमेल से कार्य करें । इन सब को साथ मिलकर योजना कार्यक्रम, समय विभाजन तथा कार्य निरीक्षण करते रहना चाहिये ।

अध्याय-६

जनशिक्षा उपकरण—साक्षरता प्रसार के सहायक

यूनेस्को के एक एशियाई क्षेत्रीय कार्यालय के साक्षरता और विकास से सम्बन्धित विभाग की एक टिप्पणी के अनुसार मैकोंग रिपोरियन देश के कृषि विस्तार सेवा विशेषज्ञों ने मालूम किया कि ३३ प्रतिशत किसान वर्ग के सदस्य भली प्रकार शिक्षित होते हुए भी उनको दिये गये छपे हुए साहित्य का वे कोई प्रयोग नहीं करते। बहुत सारी जानकारी मौखिक रूप से ही देनी पड़ती है। परिणाम स्वरूप, किसान लोग बहुत सारी प्रक्रियाओं को भूल जाते हैं।

वास्तव में साक्षरता-ज्ञान दो सूरतों में सहायक हो सकता है। पहले तो कृषि के लिये आकर्षक परिस्थितियों का उपलब्ध होना जरूरी है—जैसे आजकल पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश, बिहार, तामिलनाडु और आन्ध्रप्रदेश जैसे भारत के कुछ क्षेत्रों में यह वातावरण बहुत सबल है। नये तकनीकी ज्ञान के कारण किसान धन लगाना चाहता है। सरकार कर्जे की सुविधाएं गावों तक पहुँचा रही है। देश भर में खेती में काम आने वाले सभी निवेश उपलब्ध हो रहे हैं। निवेश, धन तथा नई तकनीक सम्बन्धी किसान के उपयोग की सभी जानकारी पुस्तक रूप में मिलने लगी है। भूमि सुधार कानून के पूरी तरह लागू हो जाने पर यह आकर्षण और भी बढ़ जायेगा।

दूसरी शर्त यह है कि साक्षरता प्रसार को दूसरे तरीकों से भी सहायता पहुँचानी चाहिये। जन शिक्षा के यांत्रिक साधन रेडियो तथा फिल्म और दूरदर्शन आदि साक्षरता प्रसार के बहुत

ही उपयोगी साधन हैं। जन शिक्षा के इन सभी साधनोंका उपोयग साक्षरता कार्यक्रम के साथ साथ बहुत लाभदायक है।

हालांकि दुनिया के अनेक भागों में रेडियो तथा टेलीविजन आदि के द्वारा साक्षरता प्रसार के बहुत प्रयोग हुए हैं फिर भी सबकी यह निश्चित राय है कि केवल रेडियो, दूरदर्शन, अथवा फिल्म के द्वारा साक्षरता प्रसार का कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता। दूसरे साधनों के द्वारा आपसी बातचीत के कार्यक्रम की व्यवस्था भी साथ साथ करनी होगी।

गरीब देशों में रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्म जैसे साधनों को अक्षर, शब्द और वाक्य अथवा भाषा ज्ञान तथा गणित ज्ञान प्रसार के काम में लाने के लिये अनेक कठिनाईयां उपस्थित हो जाती हैं।

दूरदर्शन यंत्र काफी कीमती है। इसे मध्य श्रेणी के तथा धनी लोग ही रख सकते हैं। सरकारी तौर पर जन साधारण की सुविधा के लिये कुछ सेट लगाए जाते है तो दिल्ली के अनुभव के अनुसार इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है और निजी दूरदर्शन यंत्र रखने वालों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। १९५९ में, आकाशवाणी विभाग ने ६७ दूरदर्शन गोष्ठियों की व्यवस्था की। प्रत्येक गोष्ठी के उपयोग के लिये एक एक दूरदर्शन यंत्र दिया गया। माध्यमिक विद्यालयों में भी ५०० से अधिक सैट दिये गये। उस समय निजी दूरदर्शन यन्त्र नहीं थे। परन्तु १९७१ में निजी दूरदर्शन यंत्रों की संख्या ३४००० हो गई। परिणाम स्वरूप, १९५९ के शिक्षाप्रद तथा सामाजिक व नागरिक चेतना पूर्ण कार्यक्रम पीछे पड़ गये। आरम्भ में यह कार्यक्रम साहित्यिक नहीं थे। अब सरकारी सेट केवल ९४ है जिनमें कृषि दर्शन कार्यक्रम के लिये लगाए गये सेट भी शामिल हैं।

कोई भी धनी नागरिक जिसके पास अपना दूरदर्शन यंत्र है, वह केवल कृषि दशन के अथवा नागरिक एवं सामाजिक चेतना के

कार्यक्रमों में संतुष्ट नहीं हो सकता। वास्तव में, निजी दूरदर्शन यंत्र रखने वाले सभी लोग या तो फिल्म देखना चाहते हैं या ऐसा ही और कोई मनोरंजन का कार्यक्रम। उन्हें शिक्षा तथा सूचनाप्रद कार्यक्रमों में कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसा ही अनुभव अफ्रीका देश से यूनेस्को को भेजी गई एक रिपोर्ट से भी स्पष्ट जान पड़ता है। ऐसी दशा में अधिकतर दूरदर्शन यंत्रों के मालिक साक्षरता प्रसार के कार्यक्रम में कोई दिलचस्पी नहीं रखते।

व्यावहारिक साक्षरता प्रसार के लिये प्रयोग में लाया जाने वाला दूसरा यंत्र रेडियो है। हांलाकि बहुत सारे देशों से मिले हुए अनुभवों के अनुसार रेडियो व्यावहारिक साक्षरता प्रसार में काफी उपयोगी रहा है फिर भी इसके साथ साथ दूसरे दृश्य साधनों जैसे फिल्मस्ट्रिप तथा पोस्टर आदि की बहुत जरूरत है। ये भी रेडियो कार्यक्रम के अनुसार ही बनाये और प्रयोग किये जाने चाहियें। चूंकि शिक्षा के इन श्रव्य-दृश्य साधनों का बनाना रेडियो विभाग का उत्तरदायित्व नहीं है। इसलिये इनमें सामन्जस्य स्थापित होना कठिन हो जाता है। रेडियो अकेला अक्षर, शब्द और वाक्य की बनावट और लिखावट में उपयोगी नहीं हो सकता। और यह ज्ञान साक्षरता कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंश है।

अब फिल्म के बारे में कुछ विचार कर लें। बहुत सी छोटी फिल्में जो शिक्षा प्रसार के लिये बनाई जाती हैं, वे जल्दी ही पुरानी और वर्तमान से दूर हो जाती हैं। भारतीय फिल्म विभाग को कई बार ऐसा अनुभव हो चुका है। इसके अतिरिक्त ३५ मिलीमीटर अथवा १६ मिलीमीटर की फिल्में अक्षर ज्ञान कराने के लिये अथवा व्यावहारिक साक्षरता प्रसारार्थ पूरी उपयोगी नहीं हो सकती। यह तो साक्षरता प्रसार के लिये प्रेरणादायक वातावरण तैयार करने के लिये और उसकी चाह जागृत करने के लिये उपयोगी हो सकती हैं। साक्षरता प्रसार के लिये तो ८ मिलीमीटर की फिल्म काम में ली जा सकती हैं। जिन पर अभी

कोई शोध कार्य नहीं किया गया। इसलिये शिक्षा विशेषज्ञ इस पर संदेह करते हैं। परन्तु गतिशीलता, उपलब्धि तथा विषय मुख्यतया जो तीनों बातें साक्षरता प्रसार के कार्यक्रम के लिये जरूरी हैं, वे तीनों गुण ८ मिलीमीटर फिल्म में ही हैं।

जहां तक साधारण फिल्मों के उपयोग का सम्बन्ध है, व्यापारिक लोगों की तो शिक्षा के कार्यक्रम में दिलचस्पी सीमित ही है। भारतवर्ष में हर फिल्म की कहानी से कुछ न कुछ ज्ञान सन्देश तो मिलता है परन्तु यह तो एक दिखावा है, वास्तव में तो पूरी फिल्म मानव जीवन की एक ऊंच नींच भरी कहानी होती हैं। व्यापारिक क्षेत्र में फिल्म बनाने वाले फिल्म को शिक्षाप्रद बनाने के नाम पर तो उसे घाटे का सौदा समझते हैं। हाल में ही इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न किये गये हैं परन्तु उनका उपयोग केवल विद्यार्थियों के लिये ही सीमित है।

उद्योग से सम्बन्धित शब्दावली, जो व्यावहारिक साक्षरता प्रसार के लिये जरूरी है, उसके लिए तथा अक्षरों और वाक्यों की बनावट को सिखाने के लिये तो आपसी बातचीत का तरीका अथवा आत्म अध्ययन का कोई और आधुनिक यंत्र होना जरूरी है। दूसरे यांत्रिक तरीके के सफल उपयोग के लिये यदि शिक्षा शास्त्री प्रयत्नशील हों तो फिल्म तथा दूरदर्शन का उपयोग किया जा सकता है।

जन शिक्षा के आधुनिक साधन तो शिक्षा प्रसार कार्य के सहायक साधन ही हैं। यह अकेले शिक्षण के दूसरे तरीकों तथा पद्धतियों का स्थान नहीं ले सकते। इन सहायक साधनों का क्या योगदान हो सकता है, यह समझ लेना जरूरी है। रेडियो तथा दूरदर्शन जैसे प्रसार साधनों द्वारा देखने वाले अथवा शिक्षार्थी पर एकाग्रता का प्रभाव होता है। इस सम्बन्ध में मार्शल मैल्कूहन ने कुछ महत्वपूर्ण खोज की है। दर्शक की मानसिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करके दूरदर्शन के द्वारा शिक्षक प्रशिक्षार्थियों की विचार

धाराओं को केन्द्रित कर सकता है। दूरदर्शन के द्वारा शिक्षण कार्य में यही सहायता ली जा सकती है जो बहुत महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त दूरदर्शन, रेडियो तथा फिलम तीनों ही साधन बड़े दूर दूर के अगम्य स्थानों तथा क्षेत्रों के लिये भी शिक्षण प्रसारण में सहायक हो सकते हैं। ट्रान्जिसटर ने तो पिछले कुछ वर्षों में परिस्थितियाँ ही बदल डाली हैं। इसकी सहायता से विकासशील देशों में शिक्षार्थियों की गोष्ठियां स्थान स्थान पर बन गई हैं। कोई स्थान बड़े नगर से जितना अधिक दूर होता है उतना ही यह रेडियो गोष्ठियों का कार्यक्रम अधिक दिलचस्पी से चलता है, क्योंकि वहां तो यह ट्रान्जिसटर रेडियो भी एक नई नियामत है। जोन मैडीसन द्वारा यूनेस्को को दी गई रिपोर्ट के अनुसार, जन शिक्षण के इन साधनों ने शिक्षण कार्य को लोगों के घरों तक नहीं तो कम से कम गोष्ठी केन्द्रों तक तो बिना ही विद्यालयी व्यवस्था के प्रौढ़ों के लाभार्थ पहुंचा दिया है।

व्यावहारिक साक्षरता प्रसार के सम्बन्ध में तो इन साधनों का एक बड़ा भारी योगदान यह है कि इनके द्वारा साक्षरता ज्ञान को श्रमिकों तक बिना उनके काम काज में बाधा डाले पहुंचाया जा सकता है। देहाती रेडियो प्रोग्रामों में यदि प्रसारित कार्यक्रम प्रमाणित, विषय सम्बन्धी स्थानीय परिस्थितियों में उपयोगी तथा सामयिक हो तो सुनने वाले सभी किसान आसानी से शिक्षित हो सकते हैं। ऐसी दशा में शिक्षण कार्य दैनिक कार्य सम्पादन में सहायक होता है, उसके लिये पूर्व प्रशिक्षण नहीं। पूर्व प्रशिक्षण होने से तो कमाई के काम में बाधा ही पड़ेगी। रेडियो तथा दूरदर्शन के किसी उपयोगी प्रोग्राम के द्वारा ऐसी कोई बाधा नहीं पड़ती। इस प्रकार इन साधनों का प्रयोग व्यवसाय सम्बन्धी साक्षारता प्रसार में किया जाता है।

अनेक विकासशील गरीब देशों में प्रशिक्षित तथा सुयोग्य शिक्षकों की विद्यालयों में भी बहुत कमी है। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों

की तो बात ही क्या। प्रौढ़ शिक्षण की अभी कोई विशेष पद्धति नहीं अपनाई गई है। आरम्भ में ही थोड़े बहुत अनुभवी शिक्षक मिल सकते हैं, परन्तु जिन देशों में सक्रिय प्रौढ़ों में निरक्षरता बहुत व्यापक है वहां तो बहुत अधिक शिक्षकों का मिलना अर्थ व्यवस्था को ही छिन्न भिन्न कर देगा। परन्तु प्रगति के लिये साक्षरता प्रसार की आवश्यकता तो बहुत गम्भीर है। इसलिये जिन क्षेत्रों में निरक्षरता बहुत ही व्यापक है, उनमें दूरदर्शन को साक्षरता प्रसार का माध्यम सफलता के साथ बनाया जा सकता है। दल नायकों अथवा शिक्षकों के नेतृत्व में शिक्षार्थियों के दल बनाकर दूरदर्शन के शिक्षाप्रद कार्यक्रम देखे जा सकते हैं और उन पर बातचीत की जा सकती है। यदि कहीं ये अर्ध प्रशिक्षित तथा भली प्रकार योग्य शिक्षक न भी हों, तो दूरदर्शन का कार्यक्रम देखने वाले स्वयं ही दल नायक का कार्य कर सकते हैं और दूर-दर्शन के माध्यम से शिक्षित बनाये जा सकते हैं।

कुछ विकासशील देशों में खेती को केवल जीविका का साधन न मान कर व्यवस्थित रूप से एक वैज्ञानिक उद्योग बनाया जा रहा है। ऐसी दशा में तो प्रति मास आये दिन खेती तथा किसानों के ज्ञान की अनेक नई बातें मालूम हो रही हैं। इस नये ज्ञान और खोज को सभी किसानों तक पहुँचाने के लिये विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता बहुत जरूरी तो हैं परन्तु पर्याप्त नहीं। किसान तो इस नई जानकारी को पाने के लिए बेचैन रहता है, वे विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता की राह कब तक देखेंगे। ऐसी दशा में विशेषकर कृषि विज्ञान विशेषज्ञ स्वयं ही रेडियो, दूरदर्शन और फिल्मों के माध्यम से किसान तक सीधे पहुंचकर उसकी ज्ञान पिपासा को संतुष्ट कर सकते हैं और एक ही साथ अनेक किसानों के भारी दलों को नये ज्ञान से अवगत करा सकते हैं। इससे पहले एक ऐसे प्रदर्शन का उल्लेख किया गया है जिसके द्वारा कृषि विशेषज्ञों को किसानों से उनके खेतों पर मिलने और बातचीत करने का अवसर

मिलता था। परन्तु वह प्रदर्शन कार्यक्रम भी उतना प्रेरणादायक सिद्ध नहीं होगा जितना कि ऊंचे से ऊंचे कृषि विज्ञान विशेषज्ञ से रेडियो अथवा दूरदर्शन पर आधुनिकतम खोजों और नई जानकारियों के बारे में सुनना और देखना। प्रेरणापूर्ण ऐसे अवसर पर यदि किसानों से पढ़ाई लिखाई और गणित ज्ञान की बात भी की जायेगी, तो भी वे ध्यान देंगे।

परन्तु सूचना के इन साधनों द्वारा दी गई जानकारी बहुत टिकाऊ नहीं हो सकती। इसे टिकाऊ बनाने के लिये तो अक्षर ज्ञान आवश्यक हैं। ऐसी दशा में रेडियो तथा दूरदर्शन पर मिली हुई जानकारी को जब किसान स्थाई बनाना चाहेंगे तो उनमें पढ़ना लिखना सीखने की चाह अपने आप ही जग जायेगी।

जन शिक्षा के ये साधन, विशेषकर रेडियो तथा दूरदर्शन, साक्षरता प्रसार सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण में भी उपयोगी हो सकते हैं। यह प्रशिक्षण दो प्रकार के किसान साक्षरता में सेवारत लोगों के लिये किया जा सकता है। प्रथम तो किसान साक्षरता प्रसार में लगे शिक्षकों को तो कृषि विज्ञान की जानकारी देना जरूरी है ताकि वे कृषि विज्ञान की आधुनिकतम बातों के जानकार हो कर किसान साक्षरता कार्य को उससे सम्बन्धित करके व्यावहारिक साक्षरता का प्रसार कर सकें। दूसरे इस क्षेत्र के सभी विषयों के विशेषज्ञों जैसे कृषि शास्त्री, बैंक अधिकारी, पशु सुधारक, दुग्ध उत्पादक, विकास सम्बन्धित अधिकारी, कृषि उत्पादन निवेश आपूरक तथा बिक्री व्यवस्था संस्थाओं के कार्यकर्त्ता आदि को प्रौढ़ शिक्षा पद्धति का ज्ञान कराने की आवश्यकता है ताकि वे अपने अपने क्षेत्र की परिस्थिति को समझ कर उपयुक्त सहयोग दे सकें। उन सब के प्रशिक्षण के लिये रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्म बड़े उपयोगी साधन हो सकते हैं और यह सब प्रशिक्षण कार्य उनके कार्यरत रहते चलाया जा सकता है।

जन शिक्षण के इन साधनों द्वारा किसानों को स्थानीय कष्टों

जैसे फसल की बीमारी, बाढ़, अनिश्चित मौसम आदि की जानकारी और उससे सुलझने के उपाय तुरन्त बताए जा सकते हैं। इस सूचना के पुराने साधन तो बहुत धीमे थे। यह मानना होगा कि इस प्रकार की सेवा साक्षरता प्रसार का कार्य नहीं है परन्तु यह ऐसी सेवा है कि जिससे किसानों को साक्षरता ज्ञान की उपयोगिता की प्रेरणा दी जा सकती है। एक बार लोगों को इन साधनों के उपयोग में श्रद्धा हो जाने के बाद ऐसी जानकारी बड़ी सरलता से दी जा सकती है।

अन्त में, साक्षरता ज्ञान तो जीवन पर्यन्त चलता रहने वाला कार्यक्रम है। व्यावहारिक साक्षरता योजना के कार्यक्रम में तो किसान अथवा उद्योगी श्रमिक निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करने के साथ साथ काम करते करते अनेक नई बातें सीखता रहता है। नव साक्षरों को यदि दूरदर्शन और रेडियो प्रसारण कार्यक्रम में भाग लेने दिया जाये, तो उन्हें बड़ी प्रेरणा मिलेगी और उनमें जीवन भर कुछ न कुछ नई जानकारी प्राप्त करते रहने की चाह जागृत हो जायेगी। साक्षरता के पाठों में सीखे गये कार्यक्रम से तथा उनमें बताये गये उपकरणों तथा तरीकों की जानकारी से उनमें यह चाह जागृत हो जायेगी।

इस दशा में समाचार पत्र, पत्रिकाएं तथा चल पुस्तकालय की पुस्तकों का योग बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि समाचार पत्र केवल एक तरफा साधन नहीं है। कुछ देशों में तो समाचारपत्रों में नवसाक्षरों की जानकारी के लिये विशेष स्तम्भ दिये जाते हैं। राष्ट्रीय समाचार पत्रों में "सम्पादक के नाम पत्र" वाला स्तम्भ पाठकों को अपने विचार व्यक्त करने का सुन्दर अवसर देता है। इसके अतिरिक्त विशेष उद्योगों की जानकारी प्रसारार्थ समय समय पर पत्रों के सम्पूरक अंक भी निकलते रहते हैं। इसलिये प्रगतिशील देशों में नवसाक्षर वर्गों के लिये समाचार पत्रों में विशेष स्तम्भ होना तथा पत्रों और पत्रिकाओं के विशेष सम्पूरक

अंक निकलना बहुत महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है। ऐसे विशेष पत्रों तथा स्तम्भों में जो जानकारी दी जाये, उसका गम्भीरता के साथ अध्ययन करना चाहिये और उससे पूरा लाभ उठाना चाहिये।

नव साक्षर प्रौढ़ आखिर अनुभवी तथा समझदार नागरिक होते हैं। जन साधारण के उपयोगार्थ प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों को यह समझना जरूरी है कि उनके उद्देश्य की पूर्ति तब ही हो सकती है जब वे नव साक्षर प्रौढ़ों में पहुंच कर उन्हें सन्तोष दे सकें। भारत जैसे देश में इसकी विशेष जरूरत है। यहाँ पर भाषाओं की साप्ताहिक पत्रिकाओं का वितरण बराबर बढ़ रहा है, परन्तु भारत जैसे ही देश में हिन्दी साप्ताहिक का ढाई लाख तक का वितरण तो केवल पहला कदम ही होगा, प्रौढ़ नव साक्षरों के प्रोत्साहन के लिए इन पत्रिकाओं में उनके उपयोगार्थ विशेष पृष्ठ अथवा स्तम्भ होने चाहिएं। ऐसा होने से धीरे-धीरे इनका वितरण बढ़ जायेगा। व्यापक रूप से सस्ती पुस्तकों के मिलने की सुविधा भी इस मामले में बड़ी उपयोगी होगी।

अभी तक व्यापक रूप से छपने वाली सस्ती पुस्तकें केवल मध्यम श्रेणी के नगर निवासियों के मतलब से छापी जाती हैं। इनमें पाठ्य विषय छोटी कहानियों अथवा शहरी जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को लेकर उपन्यास पर सीमित है। फिर भी पटड़ियों पर पुस्तकें बेचने वाले अपने अनुभव से यह बता सकते हैं कि ग्रामीण प्रौढ़ों के मतलब की यदि सस्ती किताबें उपलब्ध हो, तो बिक्री अच्छी हो सकेगी। अभी तक यह पटड़ी पुस्तक विक्रेता लोक नाटक तथा लोक कथाएं बेचते हैं, परन्तु और दूसरी किस्म के उपयोगी विषय भी छापे जा सकते हैं। कहने का अर्थ यह है कि मध्यम श्रेणी के शहरी पाठकों के लिए किताबें छापकर आसानी से रुपया कमा लेने की नीति में परिवर्तन करना होगा। यह ठीक है कि प्रारम्भ में तो नव साक्षर प्रौढ़ अच्छे खरीदार नहीं होंगे, परन्तु

ऐसे साहित्य का मूल्य बहुत थोड़ा होगा तो सफलता अवश्य प्राप्त होगी, शायद यह विषय खोज का विषय है और इस पर आसानी से शोध की जा सकती है।

जन शिक्षा साधनों के प्रत्येक विभाग में अलग-अलग शिक्षा शाखाएं रही हैं। काफी दिनों से वही विशेषज्ञ कार्यक्रम की रूप रेखा तथा व्यवस्था एवं प्रसार करते रहे हैं, परन्तु फिर भी जब उन विशेषज्ञों ने अपने-अपने क्षेत्र का शिक्षा प्रसार का कार्यक्रम काफी पहले बनाया और बताया, तब ही सफलता मिली।

साक्षरता प्रसार कार्य में इन साधनों को प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित योगदान मिल सकता है।

(१) उपयुक्त वातावरण प्रारम्भ में तैयार करना।
(२) सीधे पढ़ाने के कार्यक्रम की व्यवस्था।
(३) शिक्षकों तथा दल नायकों का प्रशिक्षण।
(४) भिन्न-भिन्न शिक्षण साधनों तथा विधियों में उपयुक्त समन्वय स्थापित करना।
(५) नई शिक्षण पद्धतियों का प्रचार करना।
(६) साक्षरता कार्यक्रम की व्यवस्था तथा संचालन में सहायता करना।

व्यावहारिक साक्षरता कार्यक्रम के लिये समाज में मानसिक वातावरण की तैयारी में रेडियो, दूरदर्शन तथा समाचार पत्रों का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है। इन साधनों के द्वारा प्रसारण आदि करके जन साधारण को साक्षरता के लिए प्रेरित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक उपयोगी फिल्म दिखाकर यह भली प्रकार समझाया जा सकता है कि निरक्षर किसानों को रुपया उधार लेने में कितनी कठिनाई होती है और धोखा भी हो सकता है, मण्डी में खरीद बेचने के काम में धन हानि हो सकती है। तथा आज के युग में उन्नत खेती के साधनों को, नई तकनीकों को जानने, समझने और प्राप्त करने में कितनी अड़चन हो सकती है। ये

फिल्में बड़ी भी हो सकती हैं और छोटी-छोटी 'विज्ञापन' जैसी भी।

बर्मा और कीनिया में इस प्रकार के प्रयोग किये गये हैं। वह विशेषकर किसानों के लिये तो नहीं थे। जैसे कीनिया में इंगलिश और सुहाली की शिक्षा के लिए १३ प्रदर्शनों की एक शृंखला तैयार की गई जिसका प्रयोग राष्ट्रीय साक्षरता प्रसार के लिये किया गया। साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा विभाग के विशेषज्ञों द्वारा दूरदर्शन पर शिक्षार्थियों की शंकाओं का समाधान भी कराया गया। यह आश्चर्य की बात है कि भारत में अभी तक भी रेडियो या दूरदर्शन या फिल्म का ऐसा कोई प्रयोग प्रेरणार्थ नहीं किया गया। इन साधनों को परिवार नियोजन तथा न्यून बचत योजनाओं के लिए आन्दोलन की व्यवस्था में तो काम में लिया गया और ऐसे ही अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन, स्वच्छता और सफाई आन्दोलन, अधिक पेड़ उगाओ आन्दोलन आदि में भी काम में लिया गया, परन्तु साक्षरता प्रसारार्थ प्रारम्भिक प्रेरक रूप में कभी काम में नहीं लिया गया। यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के अवसर पर भी इन साधनों का प्रभाव प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता, व्यावहारिक साक्षरता कार्यक्रम में भारत में किसानों को अधिक उपज देने वाली खेती के बारे में प्रेरणा देने के लिए तो शायद इस प्रकार के कार्यक्रम की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि इसके लिये तो कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रदर्शनों के फलस्वरूप काफी प्रेरणा मिल गई थी। ऐसी प्रेरणा पहले से मिल जाने के कारण किसानों को कृषि प्रशिक्षण की इच्छा पैदा हुई। परन्तु व्यावहारिक साक्षरता प्राप्त करने की प्रेरणा जागृत करने के लिए तो साक्षरता के अभाव में किसानों को उत्तम खेती को अपनाने में कितनी अड़चनों का सामना करना पड़ता है, यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। तब जाकर ही यह इच्छा जागृत होगी।

युगोस्लाविया में, दूरदर्शन के द्वारा प्रेरणादायक प्रयोगों को एक नया मोड़ दिया गया, "निरक्षर नागरिक और दैनिक जीवन संचालन में उनकी कठिनाईयां", विषय लेकर दूरदर्शन पर जन साधारण में चर्चा प्रसारित की गई, रेडियो पर भी इसी चर्चा का प्रसारण किया गया और फिल्म भी बना ली गई। समाचार पत्रों में भी इस विषय की चर्चा की गई और राष्ट्रीय सभा की बैठक में भी इस पर चर्चा हुई। परिणामस्वरूप जन शिक्षण के ये साधन जन साधारण में शिक्षा प्राप्ति की इच्छा जागृत करने में सफल हुए और एक अनुकूल वातावरण उपस्थित हो गया। व्यावहारिक साक्षरता के आरम्भ में तथा अन्त में भी इस प्रकार के कार्यक्रम बड़े उपयोगी होते हैं। यह इन साधनों के योगदान का एक अंग है।

प्रेरणा उत्पादक इस उपयोग का एक और भी रूप हो सकता है। टयूनीशिना में रेडियो प्रसारणों को राष्ट्रीय छापा खाना अरबी भाषा में छापता है। राष्ट्रीय फ्रांसीसी दैनिक समाचार पत्र का दूरदर्शन आलोचक साक्षरता के कार्यक्रमों की चर्चा अपने समाचार पत्रों में करता है। अलजीरिया में दूरदर्शन के आठ कार्यक्रमों की श्रृंखला को दो सप्ताह पहले से एक पुस्तिका के रूप में छापकर बांटा जा सकता है।

आइये अब इस पर विचार करें कि व्यावहारिक साक्षरता के सीधे शिक्षण कार्यक्रम उन चालीस देशों में, जिनका विवरण यूनेस्को में उपलब्ध है, कितने सफल रहे। जन शिक्षण के इन साधनों द्वारा सीधे शिक्षण में एक कठिनाई तो यह है कि इन साधनों पर प्रसारित कार्यक्रम बड़े समूहों के लिए होते हैं और सुनने देखने वालों के ये समूह भिन्न-भिन्न रुचियों, और भिन्न-भिन्न आयु तथा उद्योग वर्गों के होते हैं। समान आवश्यकताओं तथा समस्याओं के अभाव में ऐसे समूहों में एकांगी व्यावहारिक साक्षरता का कार्यक्रम उपयोगी नहीं हो सकता। सैनेगल में किया गया प्रयोग इसी आधार पर सफल नहीं कहलाया जा सकता। रेडियो कार्यक्रमों

की एक शृंखला के प्रसार के बाद इसको अधिक बहुरूपी बनाने के प्रयोग में इसे बन्द कर दिया।

टयूनीशिया में व्यावहारिक साक्षरता के सीधे शिक्षण कार्यक्रम में रेडियो तथा दूरदर्शन के प्रोग्रामों को लिखित पुस्तकों के पाठ्य विषय से सम्बन्धित करके अधिक सफल बनाया गया। १९६७ से लेकर १९६९ तक टयूनीशिया का शिक्षण कार्यक्रम तीन स्तरों में चलाया गया और शिक्षार्थियों की संख्या २५,००० तक पहुंच गई। शिक्षण कार्यक्रम रेडियो तथा दूरदर्शन दोनों पर प्रसारित किये जाते हैं और दूरदर्शन पर प्रसारित पाठ अरबी भाषा में रोज समाचार पत्र में छापे जाते हैं। शिक्षार्थियों के लिए पुस्तकें सूचना केन्द्रों पर उपलब्ध होती हैं। नियमित शिक्षार्थी उन्हें वहां से खरीद सकते हैं। पढ़ाई, लिखाई तथा गणित की तीन पुस्तकें बनाई गई हैं। जो लगभग १,५०,००० बिक चुकी हैं। यह कार्यक्रम विशेषकर साक्षरता प्रसार का कार्यक्रम है और ग्रामवासियों के लिये दैनिक रेडियो प्रोग्रामों से भिन्न है।

ऐसा ही एक प्रयोग अरब गणराज्य में भी किया गया, परन्तु उसमें कोई पुस्तक नहीं छापी गई और शिक्षण पद्धति भी केवल अरबी लिपि के मौखिक प्रचार की ही थी। ऐसे रेडियो द्वारा शिक्षण कार्यक्रम में विभागीय आंकड़ों के अनुसार ५,००० शिक्षार्थियों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम के प्रभाव की जांच करने के लिए ३० से ५० तक की संख्या में शिक्षार्थियों को आकाशवाणी केन्द्र पर ही यह प्रशिक्षण दिया जाता है। एक पाठ ५० मिनट से अधिक का नहीं होता और सप्ताह में ६ बार कार्यक्रम चलाया जाता है। नवम्बर, १९६८ में आधे-आधे घण्टे के ९० पाठों का एक पाठ्यक्रम दूरदर्शन पर चलाया गया। प्रत्येक पाठ का सप्ताह में तीन बार प्रसार किया जाता था। इस कार्यक्रम को नियमित रूप से चलाने से पहले १९६३-६४ व १९६४-६५ में दो नमूने के कार्यक्रम चलाये गये। उनका मूल्यांकन भी किया गया। दूरदर्शन पर

प्रसार किये गये साक्षरता कार्यक्रम के आधार पर उससे सम्बन्धित कुछ पाठ्य सामग्री भी छाप कर दी जाती है ताकि कार्यक्रमों का अनुगमन उपयोगी रूप से किया जा सके। १९६८-६९ में दूरदर्शन द्वारा शिक्षा प्रसार के ३५० केन्द्र थे। प्रत्येक केन्द्र एक दलनायक की देख-रेख में चलाया जाता था। दूरदर्शन द्वारा प्रसारित इस साक्षरता कार्यक्रम से १०,५०० शिक्षार्थियों ने लाभ उठाया।

जाम्बिया का कार्यक्रम इससे भिन्न था। जाम्बिया में ८० साक्षरता केन्द्र चलाये जाते हैं जो देश के भिन्न-भिन्न भागों में हैं। इन केन्द्रों पर तांबा क्षेत्र के राज्यों की बाम्बी भाषा सिखाने के लिए रेडियो पर साक्षरता कार्यक्रम प्रसार किया जाता है। दूसरे अर्थ में, यह कार्यक्रम नियमित शिक्षण विधि द्वारा एक अतिरिक्त भाषा शिक्षण का कार्यक्रम है।

ग्वेटमाला में केन्द्रीय रेडियो केन्द्र के माध्यम से एक रुचिपूर्ण साक्षरता कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। यह कार्यक्रम प्रतिदिन दो घण्टे का होते हुए भी और मुख्यतया साक्षरता का होने पर भी बीच-बीच में संगीत को स्थान देता है तथा कृषि और स्वास्थ्य जैसे विषयों पर भी चर्चा होती है। इससे यह कार्यक्रम रुचिपूर्ण हो जाता है। भाषा तथा अन्य विषयों के शिक्षण का यह कार्यक्रम ६ महीने तक चलाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन प्रातः ६ बजे कृषि तथा स्वास्थ्य पर विशेष भाषण प्रसारित किये जाते हैं। ये कार्यक्रम जन साधारण के लिये भी होते हैं तथा रेडियो के माध्यम से व्यवस्थित उन शिक्षा केन्द्रों के लिए भी जिन पर शिक्षार्थी लगभग १२-१२ के वर्गों में सामूहिक रूप से समूह-नेता की संरक्षता में शिक्षा प्राप्त करते हैं।

(कीनिया तथा यूनेस्को के अन्तर्गत व्यावहारिक साक्षरता कार्यक्रम में शामिल अन्य विदेशों के जो अनुभव यहां बताये गये हैं, वे सब जोन मैंडिसन द्वारा लिखित १९७१ की रिपोर्ट पर आधारित हैं।)

ग्वेटमाला का यह कार्यक्रम लगभग वैसा ही था जैसा कि भारत वर्ष में, १९५६ में, पूना के निकट १४५ गांव में चलाया गया "रेडियो गोष्ठी" फार्म फोरम कार्यक्रम था। (जे० सी० माथुर तथा पौलनोरेथ द्वारा लिखित यूनेस्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक "रेडियो फार्म फोरम"।)

जैमेका ने इस प्रयोग को सीमित परिधि क्षेत्र में प्रसारण करके चलाया। रेडियो तथा दूरदर्शन दोनों के माध्यम से १२ कक्षाओं के २११ शिक्षार्थियों के लिए (६ कक्षाओं में दूरदर्शन, ५ में रेडियो और एक में टेपरिकार्डर के माध्यम से) चलाया। एक साल प्रयोग करने के बाद साक्षरता कक्षाएं व्यापक रूप से खुली परिधि पर चलाई गईं। जैमेका के प्रयोग की एक विशेष बात यह है कि व्यापारिक तथा अव्यापारिक दोनों ही किस्म के दूर-दर्शन कार्यक्रमों में साक्षरता कार्यक्रम शामिल है। जैमेका ने ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विशेष कक्षाओं की व्यवस्था की है। इन कक्षाओं में शिक्षार्थी रेडियो तथा दूरदर्शन दोनों ही कार्यक्रम, आधा-आधा घण्टे की अवधि के, सप्ताह में दो बार सुनते हैं। यह कक्षाएं १० मिनिट के लिए चलती हैं ताकि रेडियो तथा दूरदर्शन कार्यक्रम के बाद विचारों का आदान-प्रदान किया जा सके।

मैक्सीको में, रेडियो और दूरदर्शन का प्रयोग सीधे ही समूहों में साक्षरता कार्यक्रम के प्रसार में किया जाता है। इस पाठ्यक्रम का नाम है "मैं यह कर सकता हूं" (आई कैन डू इट)। आरम्भ में उन्होंने यह कार्यक्रम एक पाठ्य पुस्तक तथा दूसरी अभ्यास पुस्तक के माध्यम से किया। बाद में यही पाठ फिल्म पर, टेप पर और दूरदर्शन के टेप पर उतारे गये। व्यापारिक प्रसार संस्थाओं ने अपनी सामग्री का मुफ्त में ही उपयोग करने दिया। इस पाठ्क्रम में १० दूरदर्शन टेप तथा ११४ रेडियो टेप थे। प्रत्येक पाठ्यक्रम ६ महीने की अवधि का था और प्रत्येक प्रसार लगभग २७ मिनिट का। पाठ्य पुस्तकें सरकार ने निशुल्क दी और प्रत्येक पाठ्यक्रम में

५,००,००० प्रतियां बांटी गई।

मैक्सीको में, उस देश के सभी १५० रेडियो केन्द्रों को साक्षरता प्रसार के काम में लिया गया। रेडियो प्रसारणों के द्वारा साक्षरता का कार्यक्रम सीधे शिक्षार्थियों को सामूहिक रूप से भेजा जाता था। साक्षरता के पाठ या तो प्रातः काल या मध्यान्ह में प्रसार किये जाते हैं। सरकारी रेडियो विभाग के अतिरिक्त मैक्सीको की एक निजी संस्था ई० आर० एच० का उल्लेख करना भी इस सम्बन्ध में जरूरी है। इस संस्था के द्वारा ८० लाख की आबादी के ६ राज्यों में कार्यक्रम चलाया जाता है। पाठ्यक्रम में साक्षरता अर्थात् भाषा ज्ञान, गणित ज्ञान और सामाजिक अध्ययन शामिल हैं। शिक्षार्थियों के लिये चार भिन्न-भिन्न स्तरों पर सामूहिक रेडियो सैटों की व्यवस्था की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में, ८५ रेडियो केन्द्रों में रेडियो लगाए गये हैं। इन में छोटे छोटे नगर भी शामिल हैं। प्रत्येक रेडियो केन्द्र १ से ३ समूह नायकों की देख रेख में चलता है। इस समय लगभग १२०० शिक्षार्थी पंजीकृत हैं जिनमें से लगभग ३०० चौथी कक्षा तक पहुंच चुके हैं।

यह व्यवस्था कुछ खर्चीली है क्योंकि प्रत्येक केन्द्र का प्रबन्धक वैतनिक व्यक्ति है। मैक्सीको की इस सीधी शिक्षण योजना में अभी काफी सुधार और अनुभव की गुँजाइश है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में दो प्रयोग उल्लेखनीय हैं। एक तो उन मैक्सीकन इण्डियन अथवा रैड इण्डियन लोगों के लिये है जो स्पेनिश भाषा जानते हैं परन्तु अंग्रेजी भाषा नहीं जानते। यह जाम्बिया की तरह अतिरिक्त भाषा सिखाने का कार्यक्रम हैं और एरीजोना विश्वविद्यालय की सहायता से पूरे सरकारी खर्चे पर चलाया जाता है। दूसरा उल्लेखनीय कार्यक्रम "आपरेशन एल्फेबेट" नाम का है। यह कार्यक्रम आध घंटे की अवधि के १०० दूरदर्शन प्रसारणों का कार्यक्रम है जिसको आरम्भ में फिलेडेलफिया पब्लिक स्कूल के प्रौढ़ शिक्षा विभाग ने बनाया और बाद में पब्लिक

तथा प्रौढ़ शिक्षा विद्यालयों की राष्ट्रीय परिषद् ने राष्ट्र व्यापी स्तर पर प्रसारार्थ व्यवस्थित किया। १९६१ में आरम्भ होकर १९६४ तक इस कार्यक्रम को १०० नगरों में फैला दिया गया। यह कार्यक्रम विशेषकर निरक्षर हबशी लोगों के लिये है।

ब्राजील में, ग्वेटमाला जैसे रेडियो के माध्यम से संचालित स्कूलों का प्रयोग किया गया। दूरदर्शन के माध्यम को काम में लाने के कारण इन्हें "टैली स्कूल", कहते हैं। जिन दूरदर्शन केन्द्रों के माध्यम से ये केन्द्र चलाये जाते हैं, उनमें दूरदर्शन के ३६ प्रसारण किये जाते हैं और इसी आधार पर शिक्षार्थियों के लिये एक पाठ्य पुस्तक बनाई गई है। ब्राजील में भी एक गैर सरकारी संस्था "फैपलाम" नाम की है जिसने ऐसे टी० वी० विद्यालयों का एक जाल सा बिछा दिया है।

इक्वेडर में एक और उपयोगी कार्यक्रम केवल ५०० वाट के रेडियो केन्द्र द्वारा प्रति स्कूल ३० छात्रों के स्कूलों के लिये प्रसारित किया जाता है। परन्तु कोलम्बिया में इससे भी अधिक उपयोगी साक्षरता प्रसार का एक कार्यक्रम दो भिन्न भिन्न संस्थाओं द्वारा चलाया जाता है। एक सीधे सरकार के अन्तर्गत है और दूसरी 'रेडियो सुटाटेन्जा' के अधीन। सरकारी कार्यक्रम मुख्य मुख्य नगरों की गन्दी पिछड़ी बस्तियों में रहने वाले प्रौढ़ नागरिकों के लिये है। यह कार्यक्रम एक घंटे की अवधि में १५० घंटे के प्रसारण का है जिनमें से प्रत्येक में दस दस मिनिट के भिन्न भिन्न विषय शामिल किये जाते हैं। चार विषय तो पढ़ाई, लिखाई, नागरिकता तथा धर्म शिक्षा के हैं। इनमें से प्रत्येक १०-१० मिनिट का है और प्रत्येक के बीच में ५-५ मिनिट के लिये संगीत अथवा मनोरंजन का कार्यक्रम होता है। "रेडियो सुटाटेन्जा", का कार्यक्रम एन्डीज ऊंचे क्षेत्र पर रहने वाली किसान जाति के लोगों के लिए है। यह कार्यक्रम धार्मिक आधार पर चलाया गया और इसे अब भी धर्म गुरु पोप का सान्निध्य प्राप्त है। यह रेडियो अपना कार्यक्रम क्षेत्र

में काम करने वाली पुरुष तथा महिलाओं की दो प्रशिक्षक टोलियों के माध्यम से चलाता है। इसमें एक पत्रिका का भी वितरण किया जाता है जिसकी वर्ष भर में ३० से ५० लाख तक प्रतियां बाँटी जाती हैं। पाठ्यक्रम में लगभग १६ घंटे का रेडियो प्रसारण शामिल है। प्रसारण साधारणतया प्रतिदिन होता है और साधारणतया सूचनात्मक ही है। प्रत्येक कार्यक्रम में आधा घंटा प्रौढ़ साक्षरता प्रसार के लिये लगाया जाता है। यह कार्यक्रम सप्ताह में कई बार दोहराया जाता है ताकि जिन लोगों ने इसे एक दो बार न सुना हो, वे भी पूरा प्रोग्राम सुन लें।

पीरू में धार्मिक पादरियों द्वारा एक और प्रोग्राम 'टीपा' नाम से चलाया जाता है। यह रेडियो और दूरदर्शन दोनों माध्यमों से चलाया जाता है। यह कार्यक्रम एक घंटा प्रतिदिन चलाया जाता है और सारे पाठ्यक्रम का उद्देश्य शिक्षार्थी को प्राथमिक विद्यालय की चौथी श्रेणी तक का ज्ञान दे देना है।

एशियाई देशों में से भारत में अभी तक रेडियो या दूरदर्शन या फिल्म को अभी तक साक्षरता प्रसार के काम में नहीं लिया गया। ईरान में भी रेडियो को केवल यूनेस्को के व्यावहारिक साक्षरता कार्यक्रम में सहायक साधन के रूप में ही काम में लिया गया है।

इटली की टैलीस्कूली योजना व्यावहारिक साक्षरता की योजना नहीं है। यह दूरदर्शन की सहायता से प्रौढ़ों तथा स्कूल छोड़ बैठने वाले विद्यार्थियों में शिक्षा प्रसारार्थ काम में ली जाती है। यह शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में विश्व की सबसे सफल योजना है और इसकी वजह से दूरदर्शन शिक्षण-कार्यक्रम का एक अंग बन गया है।

इसमें दो प्रकार के पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। एक निरक्षर लोगों के लिये और दूसरा अर्धशिक्षित लोगों के लिये। इनमें से प्रत्येक छः महीने का पाठ्यक्रम है जो ६० पाठों में विभाजित है। प्रत्येक पाठ में तीन प्रसार कार्यक्रम बनते हैं और पाठ का प्रत्येक

भाग सप्ताह में एक बार शाम को आध घंटे की अवधि के प्रसार कार्यक्रम में पढ़ाया जाता है। यह आध घंटा पूरे दो घंटे के शिक्षण कार्यक्रम का अभिन्न अंग होता है। इस प्रकार शिक्षण कार्यक्रम में पढ़ाई और रेडियो अथवा दूरदर्शन प्रसार दोनों का पूर्ण समावेश है। इस कार्यक्रम में २०,००० से ३०,००० तक शिक्षार्थियों ने वर्ष भर में भाग लिया और बाद में तो ५५,००० तक शिक्षार्थियों ने इस कार्यक्रम से लाभ उठाकर शिक्षा प्राप्त की। इस कार्यक्रम के माध्यम से इटली वालों की, विशेषकर उत्तरी इटली वालों की एक आधारभूत आवश्यकता ऐसे समय में पूरी हुई जब कि इटली में औद्योगीकरण तेजी से हो रहा था और उसकी सफलता के लिए शिक्षित श्रमिकों तथा कर्मचारियों की आवश्यकता थी। टैलिस्कूलों के माध्यम से कारखाने का नौजवान श्रमिक काम करते करते ही अपनी कार्य दक्षता बढ़ा सकता था। और सरकार को भी बहुत सारे स्कूल खोलने का खर्च बच गया। इसका मुख्य उद्देश्य उद्योगीकरण की सफल व्यवस्था था। भारत की वर्तमान दशा कुछ ऐसी ही है। फर्क केवल इतना है कि यहां उद्योग के स्थान पर योजना का मुख्य उद्देश्य उन्नत कृषि होना चाहिए।

यूगोस्लाविया में साक्षरता प्रसार कार्यक्रम सैब्रो क्रोट में प्रसारित होता है। उसे "दूरदर्शन द्वारा ए० बी० सी०" का नाम दिया गया है। भाषा ज्ञान के बाद एक पाठयक्रम गणित का, एक इतिहास का और एक सन्तान ज्ञान का चलाया जाता है। चूंकि यह कार्यक्रम देखने वालों के लिए मनोरंजन के कार्यक्रम से होड़ करता है, इसकी व्यवस्था टैलीस्कूली कार्यक्रम की तरह समूह या कक्षा आधार पर नहीं की गई है। इस कार्यक्रम में एक देहाती निरक्षर महिला को आधार बनाया गया है और यह दिखाया गया है कि वह भी पढ़ लिखकर किस प्रकार नागरीय जीवन की कठिनाईयों पर विजय पा सकती है। आंकड़ों के अनुसार, ५ लाख शिक्षार्थी अक्षर ज्ञान का ए० बी० सी० प्रोग्राम

देखते हैं और दो लाख नियमित रूप से गणित ज्ञान का कार्यक्रम देखते हैं। तो यह रही जनशिक्षण के साधनों के उपयोग की कहानी। इटली में, जन साक्षरता प्रसार की और अन्य देशों में व्यावहारिक साक्षरता प्रसार की। यह स्पष्ट है कि हर दशा में साक्षरता ज्ञान प्रसार की प्रेरणा आर्थिक विकास की चाह से ही मिली है।

कुछ देशों में, शिक्षा के इन उपकरणों का प्रयोग प्रौढ़ों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के काम में भी किया गया है। ऐसा अमरीका, ब्राजील, कोलम्बिया और ईरान में किया गया। ईरान की योजना तो व्यावहारिक साक्षरता प्रसार से सम्बन्धित थी।

यदि एक साथ कई उपकरणों का प्रयोग करना हो तो एक सुव्यवस्थित तथा समन्वयित कार्यक्रम बनाना होगा। उसमें फिल्म, रेडियो, दूरदर्शन, ग्रामोफोन, वीडियोटेप, पोस्टर और फिल्म स्ट्रिप सब के सब व्यावहारिक साक्षरता प्रसार के कार्यक्रम में यथा आवश्यकता यथा स्थान भिन्न-भिन्न युक्तियों के प्रयोग दिखाने के काम में लाये जा सकते हैं।

ईरान में पोस्टर, रेडियो कार्यक्रम के साथ साथ सहायक साधन के रूप में काम में लिये गये हैं। साधारणतया भारत में भी ऐसा किया जाता है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि इन सभी साधनों के उपयोग के लिए कार्यक्रम सब विशेषज्ञों जैसे शिक्षक, तकनीकी विशेषज्ञ, प्रसारक, तथा जांचकर्त्ताओं को एकत्रित करके नहीं बनाए जाते। शिक्षा तथा प्रसार विभागों के विशेषज्ञ तो यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार मिलते रहते हैं परन्तु विशेषज्ञ जैसे कृषि शास्त्री, निवेशों के प्रदायक, तथा विज्ञान शास्त्री, जो सीधे इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित हैं, वे कभी नहीं मिलते या केवल नाम मात्र को।

बहुउपकरणीय प्रयोग पर अधिक चर्चा तो सूचना एवं प्रसार के अध्याय में की गई है। प्रौढ़ साक्षरता की पद्धतियों, उसकी व्यवस्था और प्रशासन की शिक्षा के बारे में इन उपकरणों के

योगदान की चर्चा किसान शिक्षा पद्धति तथा विकास के अध्याय में की है। फिर भी यहाँ यह कहना जरूरी है कि शिक्षा के इन उपकरणों और साधनों के जन साक्षरता प्रसार तथा व्यावहारिक साक्षरता प्रसार जैसे कार्यक्रम में प्रयोग करने के लिए बहुत सोच समझ कर एक सुव्यवस्थित समन्वयित योजना बनानी होगी जिसमें सभी सम्बन्धित विशेषज्ञ मिलजुल कर पाठ्यक्रम पाठ्य पुस्तकें, पाठ्यविधि आदि का निर्णय करेंगे।

साक्षरता प्रसार के क्षेत्र में इन साधनों और उपकरणों का उपयोग अभी तक बहुत थोड़े देशों में किया गया है। थोड़े समय के लिए किया गया है और ऐसे क्षेत्रों में किया गया है कि जहाँ की जनसंख्या बहुत थोड़ी है, इसीलिए किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता, परन्तु परिस्थितियां बहुत अनुकूल हैं, आसार बहुत संतोषजनक हैं और परिणाम आशाप्रद। अलबत्ता अभी और बड़े देशों में भी प्रयोग करने होंगे।

●

अध्याय ७

प्रशिक्षक तथा उनका प्रशिक्षण

पिछले कुछ वर्षों में किसान शिक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षक का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। उत्तरप्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने अपने भाषण में बताया कि लगभग बीस वर्ष पहले उस समय की कृषि की साधारण जरूरतों और ग्रामीण परिस्थितियों को देखते हुए बहुधन्धी ग्राम सेवक का किसान की रहनुमाई के लिये गांव में उपस्थित होना काफी था। १९६६ के बाद इस परिस्थिति में तीव्र प्रगति हुई है और ऐसे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं कि अब वह सीधा साधा ग्राम सेवक किसान का सफल प्रशिक्षक नहीं हो सकता। उसकी योग्यता वर्तमान वैज्ञानिक कृषि ज्ञान की नहीं है और न ही उसको आधुनिकतम कृषि की प्रक्रियाओं का ज्ञान है।

यह माना कि समस्याएं इसके अतिरिक्त और भी हैं, क्योंकि उस अकेले ग्राम सेवक के तत्वाधान में एक बहुत बड़ा क्षेत्र है और उसे कृषि के अतिरिक्त और भी अनेक काम जो कृषि से सम्बन्धित नहीं है, वह भी करने पड़ते हैं, क्योंकि वह ग्राम सेवा के लिये सरकार का अकेला ही प्रतिनिधि है। परन्तु आधुनिक खेती व्यवसाय तो बहुत वैज्ञानिक, गहन और तेज़गामी हो गया है, इसलिये केवल उच्च योग्यता के ग्राम सेवक की ही जरूरत नहीं है, बल्कि गैर कृषि कार्यक्रम को भी उससे हटा लेने की आवश्यकता है।

आज की कृषि प्रगति के लिये विषय विधि, विश्लेषण की आवश्यकता है अर्थात् यह खोज करने की जरूरत है कि किसी

क्षेत्र विशेष में अनेक परिस्थितियों के आपसी सम्बन्धों का कृषि उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ता है। अन्य वस्तुओं के अलावा इस विश्लेषण में फसलें, निवेश साधन, उधार धन की सुविधाएं, सिंचाई साधन और जोखम सहन की क्षमता सभी शामिल हैं। या यूं कहिये कि वे सभी लोग जिनका कृषि उद्योग से सीधा सम्बन्ध हैं, वे सब उतने ही अध्ययन के पात्र हैं जितने कृषि प्रशिक्षण तथा ग्राम सेवक आदि। कृषि विश्वविद्यालय के उपकुलपति जी ने मत प्रकट किया है कि विश्वविद्यालय के सभी स्नातकों को किसानों की रहनुमाई के लिए भेजा जाना चाहिए। यदि सभी राज्यों में और सभी गाँवों में ऐसा सम्भव हो सके तो बहुत ही उत्तम होगा। परन्तु एक बड़ी कठिनाई यह है कि विश्वविद्यालयों के स्नातक सीधे तौर पर न तो निवेशों की उपलब्धि से सम्बन्धित है और न ही सिंचाई और धन उपलब्धि के साधनों तथा नियमों से, इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि प्रौढ़ किसानों के प्रशिक्षण के लिए समय की परिस्थितियों को देखते हुए कोई ही एक योग्यता के प्रशिक्षक सफल न होंगे। बल्कि क्षेत्रीय सुविधाओं और परिस्थितियों के अनुसार खेती की जो भी आवश्यकताएं हों, उन सब का ज्ञान रखने वाले तथा उनसे सम्बन्धित सभी वर्गों का दल उत्तम प्रशिक्षण कार्य कर सकेगा। इन सभी लोगों को क्षेत्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए अपने अपने विषय के कृषि प्रदर्शन दिखाने चाहियें, किसानों की शंकाओं का समाधान करना चाहिये और उन्हें प्रेरणा देनी चाहिए कि वे नये तरीके प्रयोग में लायें।

साधारणतया किसान लोग नई नई खोजों और प्रयोगों के बारे में विशेषज्ञों के परामर्श और सम्पन्न लोगों के क्रियात्मक प्रयोगों की प्रतीक्षा करते हैं। बहुत सारे गांवों में तो वर्ग नेता तथा सम्पन्न किसान ही नये तरीकों को पहले अपनाते हैं, क्योंकि उनमें जोखिम उठाने की क्षमता है। इन लोगों द्वारा किये गये प्रयोग यदि लाभप्रद तरीके से सफल हो जाते हैं तो बाकी सब छोटे

किसान भी इन नये तरीकों को अपना लेते हैं। देखना यह है कि परम्परागत मान्य ये दल नेता क्या किसानों के प्रशिक्षक का काम कर सकते हैं।

मैक्सीको में खेती के नये तरीकों को समझाने में और उनको प्रयोग में लाने की प्रेरणा देने में ऐसा उपाय किया गया और दल नेताओं का योगदान काम में लिया गया। भारत में भी निसन्देह जिन क्षेत्रों में अभी तक परम्परागत जाति मुखिया प्रथा मान्य है जैसे आदिवासी क्षेत्रों में, वहां अब भी सम्पन्न नेता द्वारा किया गया सफल प्रयोग सब स्वीकार कर लेंगे। परन्तु दूसरे गाँवों में तो सम्पन्न किसान अपने नये प्रयोगों के अनुभवों तथा उनके लाभों को दूसरे किसानों को बताना ही नहो चाहते। और कुछ-कुछ तो ऐसे भी हैं कि दूसरों को उल्टी ही बात बतावेंगे। इसलिए नये तरीकों को प्रयोग में लेने की प्रेरणा देने का सर्वोत्तम तरीका तो यह होगा कि छोटे-छोटे किसानों को समान आवश्यकताओं और समान परिस्थितियों के आधार पर छोटे छोटे एकमत दलों में व्यवस्थित किया जाये और नये तरीकों के अपनाने में जो जोखिम है, उसे कम कर दिया जाये अथवा बिल्कुल सुरक्षित कर दिया जाये। ऐसा होने से नये तरीके काम में लिए जाने लगेंगे। अन्यथा तो परिस्थिति गम्भीर ही रहेगी।

जैसे ही छोटे किसान नये तरीकों को अपनाने लगेंगे, और स्वयं अपनी निजी खेती में अधिक समय और ध्यान लगाएंगे, वैसे ही बड़े किसानों को बड़े बड़े कामों के लिए किसान श्रमिकों की कमी पड़ जायेगी और उनके वेतन बढ़ जायेंगे। और बड़े किसान छोटे किसान के विरुद्ध हो जायेंगे। कुछ प्रान्तों में तो बड़े किसानों ने श्रमिक बाहर से मंगवाएं और बाहर से आये हुए श्रमिकों तथा स्थानीय परम्परागत श्रमिकों में जो अधिकतर छोटे किसान ही होते थे, झगड़े होने लगे।

ऐसी दशा में, सामाजिक मनोविज्ञान के आधार पर बड़े तथा

धनी किसानों का नेतृत्व छोटे किसानों को खेती के नये तरीके सिखाने के लिए, वाजिब होते हुए भी उपयोगी नहीं हो सकता। दूसरे कुछ देशों में बड़े तथा सम्पन्न किसानों के इस नेतृत्व का उपयोग निवेश बाँटने, सिंचाई के साधन देने, तथा मशीनी उपकरण और व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है। ऐसा करने पर ये बड़े किसान अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में दूसरे किसानों से कुछ धन ले सकते हैं और इस प्रकार वे उनकी प्रगति में सहयोगी हो सकते हैं और हितैषी भी। जिन क्षेत्रों में फसल पर लगाए गए धन के आधार पर उपज का बंटवारा होता था, उन क्षेत्रों में अधिकतर ऐसा ही अनुभव रहा है। क्योंकि इस प्रथा के अनुसार छोटा किसान उपज के निवेशों में जितना अधिक धन लगाते थे, उपज में उतना ही अधिक बड़े किसान का भाग होता था।

मध्यप्रदेश राज्य के रायपुर जिले के घनी खेती के कुछ गांवों में छोटे किसानों को खेती के नये तरीकों का प्रयोग कराने में बड़े किसानों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि वहाँ पर सम्पूर्ण गांव को एक इकाई मानकर नये प्रयोग किये गए। जब कभी सभाएं होतीं तो शंकाओं का समाधान भी विस्तार सेवा विभाग के अधिकारी नहीं करते बल्कि गांव के दूसरे किसान ही करते थे। हालांकि इन सभाओं में ग्रामसेवक ही मुख्य कार्यकर्ता होता है। परन्तु सारे गांवों के किसानों को यह मिला जुला प्रयास सम्मिलित रूप से सभी को नये कार्यक्रम अपनाने और जोखिम उठाने की शक्ति देने में सफल होता था। यहां तक कि कुछ बड़े और सम्पन्न किसान तो छोटे किसानों को रुपया उधार देने के लिये और जोखिम न होने की श्रद्धा उत्पन्न करने तथा संरक्षण देने के लिये भी तैयार हो जाते थे।

परन्तु अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बड़े और सम्पन्न किसान छोटे तथा साधन हीन किसानों के लिए इतना सहयोग तब ही दे सकते हैं जब उनके बीच में जो ग्राम

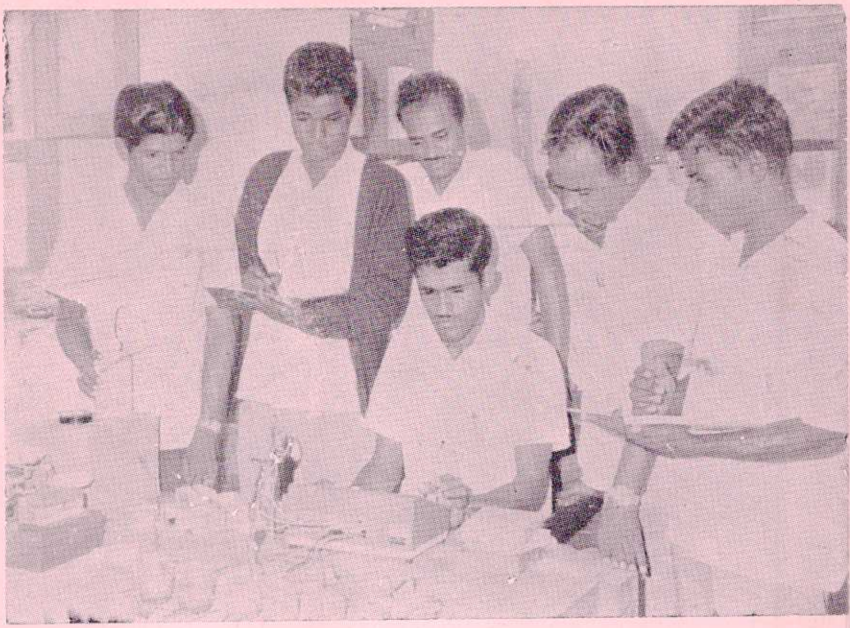

दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक दृश्य
प्रशिक्षार्थी यहां नाप तोल का विशिष्ठ प्रशिक्षण ले रहे हैं ।

फसल पर लगे रोग के कीटाणु पर मांड्या में एक प्रशिक्षण कार्यक्रम ।

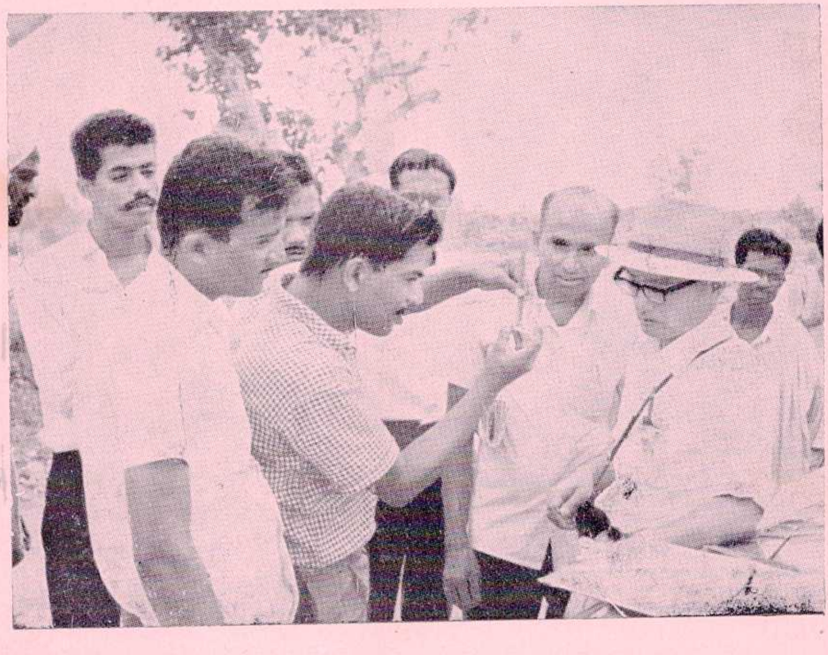

युवा किसानों को पम्पिग सैट की मरम्मत सिखाई जा रही है ।

सेवक हैं, वो ही अपनी योग्यता और सम्मान के आधार पर इन सबके लिए प्रेरणा का स्रोत बने। सम्पन्न किसान अपने आप ही छोटे किसानों का सहयोगी और हितैषी नहीं बन सकता। ऐसा तब ही होगा जब सरकारी प्रतिनिधि ग्राम सेवक पूर्णतया योग्य और जानकार हो और अपनी योग्यता तथा सेवा के आधार पर गांव वालों के बीच मान्य हो।

रायपुर का प्रयोग तो बहुत नवीन है। बहुत सारे और दूसरे गाँवों में तो पंचायतों तथा ऐसी ही दूसरी संस्थाओं के चुनावों के समय उन्नत शील और सम्पन्न किसानों ने विशेषकर उच्च जातियों के किसानों ने छोटे किसानों को आर्थिक समस्याओं के बजाय जाति प्रथा के आधार पर राजनैतिक मसलों का शौकीन बना दिया। वास्तव में तो प्रगतिशील किसानों के लिए छोटे किसानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनको खेती के नए तरीके समझाना और उनके आर्थिक हितों की रक्षा करना ही एक साधारण तरीका है परन्तु यह परमार्थ का रास्ता तो बहुत धीमा और लम्बा होता है। जातिवाद का नारा लगाकर उनकी शुभकामनाएं तथा सहयोग प्राप्त कर लेना तो बहुत सरल और तुरन्त फलदायक नीति है। इससे उन्हें सब साथियों के मत मिल जाते है और वे मान्य नेता बन जाते हैं। इसलिए परम्परागत जाति मुखियाओं तथा सम्पन्न किसानों को प्रशिक्षक बना देने के काम में यह बड़ी भारी कमी है। तो फिर आखिर कौन इस काम को कर सकता है, यह देखना होगा।

समय समय पर प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के दलों को किसानों के प्रशिक्षक के रूप में उपयोग किये जाने की बात कही गई है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि ग्रामीण स्कूलों में जो खुली भूमि है, उसे इन अध्यापकों को खेती करने के लिए दिया जाये, ताकि अध्यापक की खेती को देखने के लिए कम से कम स्कूल के विद्यार्थियों के संरक्षक तो आवेंगे ही।

परन्तु इन स्कूलों के साथ जो भूमि होती है, वह तो मुश्किल से गृह वाटिका के काम में आ सकती है। इसलिए जहाँ स्कूल के उपयोग के लिए अधिक भूमि मिल सकती है, वहाँ पर तो इस भूमि पर की गई खेती की पैदावार से स्कूल का खर्चा भी चल सकता है और स्कूल के यह खेत दूसरे प्रौढ़ किसानों के लिए खेती की प्रयोगशाला का काम भी दे सकेंगे।

परन्तु ऐसी दशा में प्राथमिक आवश्यकता यह है कि ग्रामीण शिक्षकों को खेती के नये तरीकों का प्रशिक्षण दिया जाए। बिना इस ज्ञान के तो वे दूसरों को प्रशिक्षण कैसे दे सकेंगे। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का दायित्व विश्वविद्यालयों पर होना चाहिए और उन्हें इस अतिरिक्त कार्य के लिये जो अधिक उत्तरदायित्व निभाना पड़े या खर्च करना पड़े, उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यह कार्यक्रम विश्वविद्यालय के अवकाश काल में किया जा सकता है क्योंकि उन दिनों में किसानों के ठहरने के लिए स्थान उपलब्ध होगा। विश्वविद्यालय में ठहर कर यह प्रशिक्षण तो थोड़े ही समय का होगा। इसलिये वर्ष के बाकी भाग में विश्वविद्यालय के अधिकारियों को प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के साथ पत्राचार, छोटी पत्रिकाओं तथा प्रश्नोत्तरी कार्यक्रमों के द्वारा यह प्रशिक्षण पूरा करना होगा।

स्कूल के अध्यापकों के इस प्रशिक्षण कार्य में जिले के कृषि अधिकारियों, शिक्षा अधिकारियों तथा राज्य के दोनों विभागों के अन्य अधिकारियों का सहयोग भी जरूरी है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों का प्रशिक्षण इन अधिकारियों की सहमति से ही करना चाहिए ताकि प्रशिक्षण के बाद जब शिक्षकगण वापिस लौटें तो उन्हें इन विभागीय अधिकारियों का सहयोग प्राप्त हो। ग्राम सहायकों के, जिनमें विद्यालयों के शिक्षक भी शामिल थे, एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के मूल्यांकन से पता चला कि इस प्रशिक्षण के सफल संचालन और उपयोगी होने के लिए ऐसे लोगों को ही

इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए जो स्वयं खेती करते हों, नई बातों का और नए ज्ञान का स्वागत करते हों, प्रगतिशील हों, कृषि के उच्च प्रशिक्षण में रूचि रखते हों, शिक्षित हों, साक्षर हों, बूढ़े न हो और बहुत बच्चे भी नहीं अथवा प्रौढ़ आयु वर्ग के हों, साधन सम्पन्न हों और सम्भव हो सके तो समाज में मान्य हों, प्रभावशाली स्थान रखते हों। स्कूल के अध्यापकों तथा ऐसे ही और दूसरे सुयोग्य ग्रामवासियों में ये सब गुण हो सकते हैं।

कुछ योजनाओं में, साधारण स्कूल के अध्यापकों में कुछ गूढ़ कमियाँ भी पाई गई हैं, उदाहरणार्थ, अखिल भारतीय आकाशवाणी की १९५६ की पूना योजना में, जिसके अन्तर्गत ग्रामों में रेडियो के माध्यम से १४५ रेडियो गोष्ठी का कार्यक्रम चलाया गया था और जिनमें रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रम पर कार्यक्रमोत्तर वाद विवाद ही प्रौढ़ किसानों के कृषि प्रशिक्षण का मुख्य भाग था। उसमें देखा गया कि जहाँ रेडियो गोष्ठी का संयोजक स्कूल अध्यापक था वहीं वह गोष्ठी को एक कक्षा मानकर स्वयं प्रश्न करता था और किसानों को बच्चे समझकर उनसे प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम चलाता था जिसके कारण विचार विमर्श तथा स्वतन्त्र विचार प्रदर्शन का अवसर ही नहीं मिलता था। चूंकि स्कूल का अध्यापक स्वयं तो प्रगतिशोल किसान होता था, इसलिये उसे वे दूसरे सदस्य किसान बराबर का साथी नहीं समझते थे। इस प्रकार यह असामान्य परिस्थिति रेडियो गोष्ठी को सफल और उपयोगी नहीं बना सकती थी। उसकी अधिक जानकारी का कारण किसानों की समस्याओं का ज्ञान नहीं था बल्कि उसकी शैक्षणिक योग्यता थी। यदि वह स्वयं खेती भी करता हो तो उसे प्रौढ़ मनोविज्ञान की जानकारी नहीं होती। इसके विपरीत उसे तो अपनी विद्वता का अभिमान होता है और वह एकतरफा ही बात-चीत करने का स्वभाव रखते हैं। फिर भी इन अध्यापकों के लिए विश्वविद्यालय जो प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बनाएं यदि उसमें प्रौढ़

मनोविज्ञान तथा प्रौढ़ शिक्षण पद्धति का भी ज्ञान करा दें, तो उत्तम होगा।

क्या ग्रामीण विद्यालय का वातावरण प्रौढ़ किसानों के प्रशिक्षण के अनुकूल है ? अब तो सामुदायिक विद्यालय, अर्थात् विद्यालय एक सामुदायिक शिक्षा केन्द्र है, का प्रसंग जोर पकड़ता जा रहा है। अब स्कूल की दीवारों को तोड़ा जा रहा है अर्थात उसके उद्देश्य को व्यापक बनाया जा रहा है, जिसका लक्ष्य है स्कूल केवल बालकों के लिये नहीं, बालकों और प्रौढ़ों अर्थात् पूरे समुदाय के लिए है। दरअसल जिन स्कूलों में किसान प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया जायगा, वह जीवन की परिस्थितियों के अधिक निकट आ जाएंगे और ग्रामीण जीवन तथा पुस्तकीय ज्ञान में जो दूरी है, वह कम होती चली जाएगी। साथ ही शिक्षक का महत्व भी बढ़ेगा और जीवन भी प्रगतिशील हो जायेगा क्योंकि वह भी एक ऐसे ही कृषि फार्म का प्रबन्धक होगा जैसे दूसरे उन्नत खेती के फार्म हैं। साथ ही उसको नयी नयी तकनीकी सुविधाएं उसके अतिरिक्त होंगी। फिर भी एकदम तो प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों की परिस्थितियाँ अभी सामुदायिक समस्याओं से जूझने के लिए बहुत अधूरी हैं। प्रौढ़ किसानों का प्रशिक्षण केन्द्र बनाने के लिए उच्च माध्यमिक विद्यालय अथवा कालेज अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि उनमें प्रयोगशाला भी होगी तथा उस स्तर पर पुस्तकीय ज्ञान के साथ साथ औद्योगिक जानकारी भी असंगत न होगी।

भारत में स्कूलों को सामुदायिक शिक्षा केन्द्र बनाने की योजना की अभी तक असफलता के दो कारण हैं। एक तो प्रशासनिक ढांचे में स्कूलों का प्रशासन शिक्षा मंत्रालय तथा उससे सम्बन्धित शिक्षा विभागों के अधीन है। उनको कृषि उत्पादन की योजनाओं से न कोई सम्बन्ध है न जानकारी। इन विभागों के अधिकारियों को अधिक उपज बढ़ाने के कार्यक्रमों में कोई दिलचस्पी नहीं है। वे तो अन्तिम परीक्षा में पास होने वाले छात्रों की संख्या को ही

अपनी सफलता का माप दंड मानते हैं। अधिकतर विकासशील देशों में प्रौढ़ शिक्षा स्कूली शिक्षा का ही भाग रहा है। इसीलिये शिक्षण कार्य को विवरण पत्रिकाओं में अक्सर साक्षर बनाये गये प्रौढ़ों की संख्या, प्रौढ़ कक्षाओं को संख्या, प्रमाणपत्र दिये गए प्रौढ़ों को संख्या आदि का विवरण दिया जाता है। शिक्षित प्रौढ़ों द्वारा नई जानकारी के आधार पर बढ़ाई गई उपज का उसमें कोई विवरण नहीं होता, न ही कृषि की नई तकनीक का, नये निवेशों का, नई पद्धतियों का अथवा पढ़ने लिखने और हिसाब कर लेने की उनकी योग्यता अर्थात् व्यावहारिक साक्षरता ज्ञान और उपयोग का कोई विवरण होता। यदि कोई विद्यालय अपनी प्रगति के विवरणों में ऐसे आंकड़े प्रकाशित करता भी है, तो वे वास्तविक नहीं होते, केवल पाठ्य पुस्तक में दिए गये विषय के आधार पर ही होते हैं।

फिर स्कूल को कृषि प्रशिक्षण का सामुदायिक केन्द्र बनाने में यह जो अड़चने हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। इसका यही रास्ता है कि ऐसे सब स्कूलों को दोनों निदेशालयों अर्थात् शिक्षा तथा कृषि निदेशालय के अधीन होना चाहिये। यदि स्कूल के शिक्षक को प्रौढ़ किसान का प्रशिक्षक भी होना है तो उसे दोनों विभागों के अधिकारियों से जानकारी लेनी होगी। उसे अपने शिक्षा के कार्यक्रम को तथा उसके सभी साधनों को पाठ्य पुस्तकों तथा श्रव्य दृश्य सहायक साधनों को लेकर स्कूल के समय विभाग में तथा उस क्षेत्र की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं में पूरा तालमेल पैदा करना होगा। उपज के लिये जो नये निवेश उपलब्ध हों, उसकी जानकारी भी रखनी होगी। इतना सब कुछ वह तब ही कर सकता है जब प्रशासनीय ढंग से वह दोनों विभागों से सम्बन्धित हो और अपना कार्यक्रम बनाने में दोनों ही विभागों से निदेश प्राप्त करता हो।

परन्तु जैसा हम इस अध्याय में पहले बता चुके हैं, किसानों

के प्रशिक्षण का मुख्य विषय उत्पादन के नये निवेश होना चाहिये इसलिये यदि वे सब लोग जो ये निवेश अर्थात् बीज, खाद, और दवाई आदि उपलब्ध कराते हैं, प्रशिक्षण और प्रयोगात्मक प्रदर्शन में सम्मिलित न किए जायेंगे तो प्रशिक्षण का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। जो व्यापारिक संस्थाएं इन निवेशों को बनाती हैं, वे सब प्रशिक्षण का महत्व समझती हैं। उनमें से कुछ तो प्रयोगात्मक प्रदर्शन करने में अगुआ रही हैं। हालाँकि अभी तक उसका परिणाम तथा प्रभाव साधारण ही रहा है। कामयाबी की इस कमी का कारण यही रहा है कि वे लोग प्रौढ़ किसानों के उत्तम प्रशिक्षक नहीं हो सकते।

आर्थिक प्रगति के क्षेत्र में बढ़ते हुए किसी भी समाज का यह एक स्वाभाविक दृष्टिकोण रहता है कि निवेशों के उत्पादक तथा उद्योगपति दोनों ही थोड़ा सा पैसा लगाकर तुरन्त ही बहुत कुछ कमा लेना चाहते हैं और आरम्भ में ही भारी धन लगाकर दीर्घकालीन स्थाई लाभ की प्रतीक्षा नहीं करते। किसी भी उद्योग में उपभोक्ताओं को वस्तुओं के उपयोग का उपयुक्त प्रशिक्षण देना एक दीर्घकालीन विनियोग है। खाद पैदा करने वाले उद्योग का यह उद्देश्य रहता है कि वह सब खेतों में अपने द्वारा बनाये गये खादों के ही प्रयोग की बात सुझावें। किसानों के खेतों में प्रयोगात्मक प्रदर्शन के नमूने खेत दिखाये जाते हैं और आरम्भ में तो खाद का नमूना मुफ्त में ही बांटा जाता है और खरीद पर कमीशन भी दिया जाता है।

ताजा अनुभव से सिद्ध हुआ है कि आरम्भ में तो नाइट्रोजन की खाद के प्रयोग से अत्यन्त संतोषजनक परिणाम निकलते हैं। चाहे वह खाद पूरी तरह से शुद्ध भी न की गई हो और फास्फेट और पोटाश की पूर्ण मात्राएं भी उसमें न दी गई हों। इसके अतिरिक्त और भी विस्तृत कार्यक्रम जो नाइट्रोजन की खाद देने से पहले होना चाहिए जैसे बहुफसली कार्यक्रम अथवा भूमि की

गहरी जुताई और क्षेत्रफल विभाजन आदि चाहे यह कुछ भी न किया गया हो। परन्तु बाद में एक ऐसी हालत आ जाती है जब ये सब सावधानियाँ मुख्य रूप से महत्वपूर्ण हो जाती हैं और अनभिज्ञ किसान नई तकनीक को विधिपूर्वक प्रयोग न करने के कारण नाइट्रोजन खाद का अन्धाधुंध प्रयोग करके हानि उठाता है।

निवेशों के उपलब्ध करने वाला अच्छा प्रशिक्षक हो सकता है यदि प्रयोगात्मक प्रदर्शनों में वह केवल अपने ही बनाये हुए निवेश पर सीमित न रह कर उन सभी निवेशों का प्रभाव और प्रयोग समझावे जो दूसरों द्वारा बनाये गये हैं परन्तु उत्तम खेती के लिए वह भी जरूरी हैं क्योंकि उन सब के उचित प्रयोग के बिना भारी उपज होना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षक को खेती की समस्याओं के अनुसंधान करने वालों का सहयोग भी ज़रूरी है। इसका एक तरीका यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के निवेशों के उत्पादक सब मिलकर एक सम्मिलित प्रशिक्षक दल बना लें और प्रयोगात्मक प्रदर्शन करके सभी निवेशों का प्रयोग और प्रभाव समझावें। वास्तव में नलकूपों के उत्पादक, पम्पों के बनाने वाले, खादों के उत्पादक तथा कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता और उत्पादक, दवाई छिड़कने के तथा अन्य मशीनी उपकरणों के उत्पादक, और रुपया उधार देने वाली संस्थाओ के प्रतिनिधि यदि सभी मिलकर एक सम्मिलित प्रशिक्षण दल बनावें, तो बहुत उत्तम होगा और इस प्रकार दिया गया प्रशिक्षण बड़ा संतुलित और उपयोगी होगा। आजकल के जैसे खाद उत्पादकों द्वारा किये गये प्रदर्शनों का उपयोग तो बहुत ही सीमित है।

कुछ दिनों से राष्ट्रीयकृत बैंक किसानों के पास रूपया उधार देने की सुविधाएं देने के लिए पहुंचने लगे हैं। उधार की नई नई योजनाएं बनी हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने बैंकों को सलाह दी है कि वे छोटे किसानों को विशेष तौर पर ऋण देने की सुविधाएं

दें। ऋण उपलब्ध कराने के लिए यह सिफारिश बहुत उपयुक्त है। परन्तु कठिनाई यह है कि बैंकों द्वारा इस काम के लिए जो कार्य-कर्त्ता ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्त किये हैं, उन्हें प्रौढ़ ग्रामीण किसानों से बातचीत करने तथा किसानों की आवश्यकताओं को जांचने समझने का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया। रूपया उधार देने के लिए बैंक जो कागजात और परिपत्र किसानों से भरवाते हैं, वे इतने विस्तृत तथा उलझे हुए हैं कि उनको समझ कर पूरा करने के लिए किसान को बिचौलिये की आवश्यकता होती है। एक किसान समुदाय में एक बैंक के उद्घाटन उत्सव में मैं मौजूद था। अगले दिन मुझे बताया गया कि वकील लोग मैदान में कूद पड़े हैं और उनकी सहायता के बिना कर्ज लेने के लिए प्रार्थी किसान उन परिपत्रों को नहीं समझ सकते और नहीं पूरा कर सकते हैं।

ऐसी परिस्थिति में बैंकों के अपने कर्मचारी ही किसानों के रहनुमा और प्रशिक्षक क्यों नहीं बन सकते? आखिर रुपया उधार देने के बाद उस रुपये के सदुपयोग को देखना भी तो बैंकों का काम है। छोटे और सीमान्त किसानों के लिए विशेष रियायतों और उधार की सहूलियतों के देने की जो सरकारी योजना है, वह बिल्कुल नई है और उसमें सबसे बड़ी चुनौती यही है कि उधार दिये गये रुपये का उचित प्रयोग हुआ या नहीं। ऐसी उपयोगी योजनाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि रुपया उधार देने वाली संस्थाएं अर्थात् बैंक अपने कर्मचारियों को किसानों तथा कृषि विस्तार सेवा कार्यकर्त्ताओं की रहनुमाई करने का प्रशिक्षण दें ताकि वह उनके सफल सहयोगी बन सकें।

भारत जैसे व्यापक ग्रामीण क्षेत्र के देश में प्रौढ़ किसानों की शिक्षा के लिये भारी संख्या में स्थानीय मुखियाओं और समाज सेवी महानुभावों की आवश्यकता है, इसलिए अवकाश प्राप्त सैनिक तथा सेना अधिकारी गण इस सम्बन्ध में बहुत उपयोगी

हो सकते हैं। साधारणतया ऐसे लोगों को लगभग ५० वर्ष की आयु में अवकाश दिया जाता है। ये सब लोग कुशल कार्यकर्त्ता होते हैं, स्वस्थ, चैतन्य तथा विशाल दृष्टिकोण और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले। इसके अतिरिक्त वे लगभग सबके सब ग्रामीण क्षेत्रों के ही होते हैं और नौकरी के बाद गांवों में ही वापिस अपने वातावरण में ही आ जाते हैं। आमतौर पर तो यह समझा जाता है कि धीरे धीरे ये लोग व्यवस्थित रूप से काम करने की आदत छोड़ देते हैं और ग्रामीण क्षेत्रों के रोज के जातिवाद तथा पारिवारिक और जायदाद के लड़ाई झगड़ों में उलझ जाते हैं। कुछ थोड़े बहुत ही पुराने सैनिक जीवन की याद लिये शान्ति से जीवन व्यतीत करते हैं।

यह बड़े दुःख की बात है कि ऐसे लोगों का सहयोग हमारा देश खेती की उन्नति के क्षेत्र में नहीं ले रहा। परन्तु इसमें दोष किस को दें।

यह ठीक है कि उसमें एक बात की कमी है। वे लोग एक सैनिक अनुशासित वातावरण में से आये हुए हैं। उस वातावरण में नियमबद्धता, आज्ञापालन, फुर्ती और व्यवस्था थी और अब अव्यवस्था, अधिक उपज के लिए मारामारी, दहेज और काज आदि के अवसरों पर व्यर्थ भारी खर्चे। इन दोनों दशाओं में ऐसा गहरा अन्तर है कि ये अवकाश प्राप्त सैनिक जल्दी ही निराश हो उठते हैं। सैनिक सेवा के दिनों में प्राप्त उन्हें अपनी सारी शिक्षा तथा प्रशिक्षण नये वातावरण में एक दम व्यर्थ नजर आता है। वह या तो निराश हो जाते हैं या स्वयं भी नए ढाँचे में ढल जाते हैं। दोनों दशाओं में गांव को सुयोग्य और कर्मठ नेता नहीं मिल पाते और सारे समाज को हानि होती है।

किसान प्रशिक्षण के लिए सुयोग्य दल नायकों की यह एक अच्छी उपयोगी टोली हैं, जिसको अभी तक काम में नहीं लाया गया। परन्तु इनकी सेवाओं से लाभ उठाने के लिए सम्भवतया

अवकाश प्राप्ति से कुछ दिन पहले इन लोगों को आने वाले कल के उत्तरदायित्व को निभाने के लिए प्रशिक्षण देना होगा। वास्तव में, यह प्रशिक्षण यदि पहले ही दे दिया जाये, तो और भी अच्छा होगा क्योंकि जवान लोग तो लगभग प्रतिवर्ष ही गांवों में जाते रहते हैं, इन छुट्टियों को वे लोग मकानों की मरम्मत में, शादियों में या घर परिवार के कुछ और कामों में बिताते हैं, परन्तु यदि वह प्रशिक्षत हों, तो इसी समय को वे लोग उत्तम खेती के नए तरीकों का प्रचार करने में भी लगा सकते हैं क्योंकि उनके सगे सम्बन्धी आखिर सभी का यही उद्योग है और वे स्वयं भी अवकाश प्राप्त के बाद कृषि उद्योग को ही अपनाएंगे।

इसका यह अर्थ हुआ कि शान्ति काल में कभी कभी उत्तम खेती सम्बन्धी प्रदर्शन, कृषि वैज्ञानिकों द्वारा भाषण, कृषि केन्द्रों की शिक्षण यात्राएं तथा उत्तम खेती के सम्बन्ध में चुनी हुई प्रेरणा-पूर्ण फिल्मों का प्रदर्शन भी एक सैनिक की दिनचर्या का भाग होना चाहिये। ऐसा करने से बहुत पिछड़े हुए गाँव के जवानों को भी अभी सैनिक नौकरी करते करते ही खेती की उन्नति करने की प्रेरणा मिलेगी और वे अवकाश प्राप्ति के बाद गाँव वालों की भलाई के लिए अपने नेतृत्व में कृषि की उन्नति करने के लिये व्यवस्थित कार्यक्रम बना सकेंगे।

अवकाश प्राप्ति का समय निकट आने पर सैनिक विभाग शीघ्र रिटायर होने वाले अधिकारियों तथा जवानों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकता है। इसका बहुत लाभ होगा। इस प्रशिक्षण के दो उद्देश्य होंगे। पहले तो हर अवकाश पाने वाले जवान के गांव का तथा उसकी जमीन आदि का पूरा विवरण प्राप्त करना होगा। अवकाश प्राप्ति के बाद वह कहाँ लौटेगा, कैसी जमीन से उसका वास्ता होगा। उस भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने के और भारी पैदावार देने के लिए क्या करने की आवश्यकता है। बहुफसली पैदावार देने के लिये क्या

करने की जरूरत है। अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए जवान खेती के साथ-साथ कौन सा सहायक धन्धा कर सकता है। निवेशों को उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं के साथ उसे कैसे और क्योंकर सम्बन्ध बनाने होंगे और उसके गाँव की भूमि तथा सिंचाई के साधनों के हिसाब से कैसी परिस्थिति है, आदि आदि। वास्तव में, इस प्रशिक्षण के दौरान प्रत्येक प्रशिक्षार्थी अपनी अपनी भूमि के हिसाब से अपने अपने मतलब की कृषि उत्पादन योजना राष्ट्रीय स्तर के कृषि विशेषज्ञों की सहायता से बना सकता है।

यह अनुभव तो व्यक्तिगत लाभ के लिए होगा। इसके साथ साथ जवानों की टोली को अपने अपने गाँव के साथियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए तथा ग्रामीण समाज में उपयोगी जीवन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रशिक्षण देना होगा, क्योंकि वे उस ग्रामीण समाज से अधिकतर दूर ही रहें हैं और कभी कभी थोड़े समय के लिए केवल मेहमानों की तरह मिलते रहे हैं, अब उन्हें उसी समाज के साथ जाकर उनसे मिलकर रहना होगा। इसलिए उन्हें अपने आपको एक ऐसे समाज में, जो संकुचित तो है परन्तु जिसका भविष्य उसके प्रयत्नों से बड़ा उज्ज्वल हो सकता है, मिलजुल कर रहने के लिए तैयार करना होगा यह उनके लिए न तो कोई अनोखी बात होगी और न ही अनजानी। यह तो किसानों के सामाजिक मनोविज्ञान की जानकारी, खेती के लिए नए तरीकों और पुराने तरीकों के भेद और लाभ की जानकारी, छोटे खेतों और थोड़ी भूमि से भी भारी उपज लेने के तरीकों की जानकारी तथा बराबर वालों की एक अव्यवस्थित और सैनिक अनुशासन तथा आज्ञापालन से अपरिचित समाज में मिलकर रहने के तरीकों की जानकारी का एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन होगा और आखिर में इस प्रशिक्षण के द्वारा अवकाश पाने वाले जवानों को ग्रामीण समाज के भावी नेता, प्रेरक तथा अन्य किसानों के प्रशिक्षक बनाने का प्रयत्न किया

जायेगा। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हें किसानों का साथी, सहयोगी तथा मित्र बनना होगा। उनका शासक नहीं, सहायक और पथ-प्रदेशक बनना होगा। कार्य विधिपूर्वक परन्तु सहानुभूतिपूर्ण रूप से करना होगा। नया ज्ञान सीखने वालों के साथ पूरी हमदर्दी दिखानी होगी तथा सहनशीलता। इसका अर्थ है कि हर जवान को प्रौढ़ मनोविज्ञान की पूरी जानकारी प्राप्त करनी होगी।

यह आवश्यक नहीं है कि सभी अवकाश पाने वाले जवान इस प्रकार के प्रशिक्षण में सफलता प्राप्त कर लेंगे अथवा ग्रामीण समाज के भावी नेता और पथ प्रदर्शक बनना स्वीकार कर लेंगे परन्तु फिर भी इस प्रकार के दो उद्देशीय प्रशिक्षण के बाद बहुत सारे सैनिक सम्भवतया अपने लाभ के लिए तथा अपने द्वारा सारे साथी ग्राम समाज के हित के लिए इस भावी कार्यक्रम को जीवन के शेष सक्रिय भाग के लिए उपयोगी समझेंगे और स्वीकार करेंगे।

परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी कृषि व्यापारियों, कृषि विशेषज्ञों, निवेश उपलब्ध करने वालों, देहाती बैंकों और कृषि अभियन्ताओं की मिली जुली प्रशिक्षकों की टोली की तरह ही बल्कि उससे भी अधिक इस कार्यक्रम में भिन्न-भिन्न मंत्रालयों तथा सैनिक एवं असैनिक विभागों के प्रमुख सम्बन्धित अधिकारियों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है ताकि देहाती किसान प्रशिक्षकों की इस नई टोली से अधिक प्रभावित हो सकें। इसलिए प्रशिक्षण कार्यक्रम को और व्यापक रूप देने के लिए इन प्रशिक्षकों को भी बार बार प्रशिक्षण देना जरूरी है।

किसानों को कृषि प्रशिक्षण देने की मुख्य एवं मूल संस्था तो कृषि विस्तार विभाग ही है। केन्द्रीय स्तर पर कृषि विस्तार सेवा निदेशालय जो आरम्भ में सरकार की कृषि नीतियों से तथा कार्यक्रमों से सम्बन्धित मार्ग दर्शन तथा साहित्य वितरण के

लिए बनाया गया था, वह अब मंत्रालय के कृषि विस्तार सम्बन्धी सभी विभागों के लिए सरकार द्वारा चलायी जाने वाली योजनाओं में सामंजस्य उत्पन्न करने की सेवा कर रहा है। राज्य स्तर पर कृषि सूचना प्रसार के लिए श्रव्य दृश्य सामग्री बनाई जा रही है। परन्तु वास्तव में विस्तार सेवा कार्य का मुख्यालय जिला स्तर पर होता है जहां पर जिला कृषि अधिकारी, पशु विभाग अधिकारी तथा अन्य सभी विस्तार कार्यक्रमों से सम्बन्धित विभागों के अधिकारी मिलजुल कर सामूहिक रूप से सब काम करते है। इन सब अधिकारियों के काम की देख रेख तथा सामंजस्य का काम जिला अधिकारी अर्थात् उपायुक्त, जिला विकास अधिकारी की सहायता से करता हैं जो एक प्रकार से सर्वांगीण जिला प्रशासन अधिकारी होता है।

विदेशी विशेषज्ञों का यह परामर्श रहा है कि विशेषज्ञों के बीच राज्य स्तर से लेकर जिला और उससे भी नीचे के क्षेत्रों तक का सीधा पदानुक्रम अधिकार स्थापित होने से भारतीय कृषि विकास को लाभ पहुंचेगा। उनके मतानुसार ऐसी शासन प्रणाली में विशेषज्ञ अधिकारी जिला अधिकारी के अधीन न रहकर स्वाधीन हो जायेंगे और जल्दी जल्दी अधिक प्रभावपूर्ण कार्य कर सकेंगे।

परन्तु बहुत सारे राज्यों में विकास की वर्तमान गतिविधियों को देखते हुए मालूम होता है कि एकाधिकार तथा सम्मिलित अधिकार की प्रणालियों में तालमेल करना आसान काम नहीं है। हालांकि सम्मिलित अधिकार एवं उत्तरदायित्व की प्रणाली जिला स्तर पर बहुत उपयोगी है। जिला स्तर के कुछ विशेषज्ञ तथा तकनीकी विभाग तथा कमिशनरी स्तर के कुछ निरीक्षण अधिकारी निर्णय करने तथा कार्य संचालन में एकाधिकार की नीति बरतते हैं। परिणाम स्वरूप नीचे स्तर पर लिए गये सम्मिलित निर्णय सब भंग हो जाते हैं और आपसी तनाव पैदा हो जाता

हैं। इसलिए जिला और कमिशनरी स्तर के बहुत सारे अधिकारी नीचे के स्तरों पर अपने सहायक कार्यकर्त्ताओं को निर्णय लेने की स्वतन्त्रता नहीं देते।

वास्तव में, कभी कभी तो वे प्रशासनिक अधिकारों को अपने निजी सहयोगियों की बजाय जिला स्तर के सहयोगियों और उनके सहायक अधिकारियों को सौंप कर अधिक सन्तुष्ट होते हैं। यह कार्य विधि बड़ी अजीब मालूम होती है परन्तु है व्यावहारिक पद्धति। संक्रान्ति काल में जन सम्पर्क के महत्वपूर्ण साधनों को उन्हीं के हाथो में सौंपा जाना चाहिये जो उनके प्रयोग का अनुभव रखते हों। अपने सत्ताधारी व्यवहार के बावजूद भी कलक्टर कभी कभी दूसरे विभागों के अधीनस्थ कार्य कर्त्ताओं के साथ तकनीकी विभागों के अधिकारियों की अपेक्षा कम तानाशाही बरतता है। और ऐसा ही करना भी चाहिये, क्योंकि यदि वह ऐसा व्यवहार नहीं करेगा तो वह सभी विभागों का सम्मिलित प्रतिनिधित्व करने में असफल हो जायेगा।

ऐसी अनिश्चित परिस्थिति में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट विद्यमान हो गई हैं। एक ओर तो ग्राम विकास की सभी राजकीय गतिविधियाँ धुंधली और शिथिल पड़ गई हैं। ग्रामीण इस तथ्य को समझते हैं क्योंकि जिला तथा नीचे के स्तर के अधिकारियों की शक्तियां इस प्रभाव को दूर कर देने के लिये असीमित तो नहीं हैं। दूसरी ओर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की यह इच्छा है कि ग्राम विकास के सभी कार्य बड़ी तीव्र गति से सम्पन्न होने चाहियें, परिणाम स्वरूप उच्च सरकारों की सन्तुष्टि के लिए विभागीय अधिकारी अल्पकालीन विधियां अपनाते हैं, क्योंकि उनमें से बहुत से यही समझते हैं कि इस सन्दिग्ध शिथिलता को दूर करने का यही तरीका है। इसीलिए एक समय ऐसा आ गया था कि सामुदायिक विकास योजना की धीमी प्रगति का कारण उसके दूसरे विभागों से जुड़ जाना ही समझा जाने

लगा था।

वास्तव में प्रयोगात्मक स्तर पर 'हम' (अर्थात् सामुदायिक विकास विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता) और 'वे' (अर्थात् दूसरे विभागों के अधिकारी) की भावना एक दम प्रत्यक्ष हो गई थी। बाद में एलबर्ट मायर ने इस वास्तविकता को मानते हुए स्वीकार किया कि कुछ शासकीय मामलों में विकास कार्यकर्त्ताओं के महत्व की समस्या वास्तव में प्रभावपूर्ण और गम्भीर है। इस प्रकार सामुदायिक विकासार्थ क्षेत्र के सभी सम्बन्धित विभागों के समन्वयित सहयोग के महत्व को समझा गया और उसे मान्यता मिली। बाद में कुछ राज्यों के कृषि विभागों में यह प्रवृत्ति विद्यमान हुई कि यदि ऊपर से नीचे तक के स्तर के कृषि अधिकारियों में ही एकत्व का सम्बन्ध रहे तो सामुदायिक विकास के अन्य विभागों का सहयोग मिले बिना भी कृषि उत्पादन बढ़ सकता है। जोहन एफ० लूइस ने इस प्रवृत्ति को खंडित कर्त्तव्य भावना कहा है। परन्तु वर्तमान काल के यथार्थ व्यवहार में केन्द्रीय कृषि मंत्रालय की घनी खेती की योजना ने जिलों में, जिसे आमतौर पर पैकेज योजना कहते हैं, सामुदायिक विकास व्यवस्था में संतोषजनक प्रगति की है तथापि मूल्यांकन विवरणों के आधार पर आमतौर पर यही जान पड़ता है कि कृषि विकास विस्तार सेवा विभाग की सेवाओं में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है।

देखना समझना यह है कि प्रशिक्षण तथा विस्तार सेवा कार्य की व्यवस्था में जिले के कलेक्टर का क्या उत्तरदायित्व तथा योगदान है।

सबसे पहले तो कलेक्टर भूमि सुधार के प्रयत्नों तथा कृषि उत्पादन की विकास योजनाओं के बीच एक बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी है। यह दोनों प्रबन्ध साथ साथ चलाने होंगे अर्थात् भूमि सुधार के मुख्य-मुख्य कार्यक्रम जैसे चकबन्दी योजना को कृषि

उत्पादन विकास की योजना अर्थात् उसी क्षेत्र में सिंचाई साधनों का प्रबन्ध या चरागाह सुधार की योजना के साथ साथ पशपालन सुधार योजना का गठबन्धन करना और सिंचाई क्षेत्र में सिंचाई की योजना के साथ-साथ सिंचाई पत्र (फर्द आबपाशी) का समझना सिखाना।

कृषि उत्पादन की विधियों का भूमि सुधार की योजनाओं के साथ साथ प्रशिक्षण, जैसे जब कभी किसी क्षेत्र में फालतू भूमि के वितरण की योजना चलानी हो तो उसके साथ-साथ ही भूमि को समतल बनाने की, सड़कों की तथा सिंचाई, बीज, खाद और धन आदि अन्य साधनों की उपलब्धि की योजनाएं भी उसके साथ-साथ ही चलाई जाएं। चकबन्दी व्यवस्था भी एक और उपयोगी तजवीज़ होगी।

दूसरे, मैं इस बात पर बल दूंगा कि चुने हुए क्षेत्र में कृषि उन्नति एवं उससे जुड़े हुए अन्य विकास के कामों में पूरा समन्वय होना ज़रूरी है। जिले का कलेक्टर इस कार्य से सम्बन्धित भिन्न भिन्न विभागों के कार्य में सहयोग तथा समन्वय का प्रबन्ध एक सीमित क्षेत्र में कर सकता है और यह सीमा व्यक्तिगत रूप में एक एक किसान के हितों के आधार पर भी निर्धारित की जा सकती है। सघन सिंचाई साधनों की विकास योजनाओं, पशु तथा मुर्गी एवं सुअर पालन की विकास योजनाओं, असिंचित भूमि पर खेती उत्पादन, तथा छोटे किसानों को उत्पादन की सुविधा, विकास की सघन योजनाओं के आधार पर कृषि कार्य में सहायतार्थ अर्थ आयोग का निर्माण हो रहा है। इस कारण ऐसा समन्वय बहुत ही महत्वपूर्ण होगा क्योंकि अनेकों विकास योजनाओं में से व्यक्तिगत रुचियों और साधनों के आधार पर उपयोगी योजना का चुनाव करने अथवा कोई नई योजना ही अपनाने के लिए बड़ी समझदारी की आवश्यकता है। जरूरी बात यह है कि यह सब कार्य जिले के विकास के आधार पर न करके विकास

परियोजना के आधार पर किया जाना चाहिये। प्रत्येक जिला तथा जिले के भिन्न-भिन्न भाग विकास के सम्बन्ध में अपनी-अपनी विशेषतायें रखते हैं। इसलिए जिले तथा जिले के प्रत्येक भाग के लिए कृषि विकास योजना की मूलनीति बनाई जानी चाहिए। यह मूल नीति जैसे भूमि सुधार, सिंचाई साधन, नलकूप निर्माण या दूग्ध उत्पादन आदि परियोजना का आधार होगी। ऐसी योजनाओं को चलाने के लिए और कौन कौन से उत्पादन साधन चाहिए, इन सब की उपलब्धि का उचित प्रबन्ध करने के लिए मुख्यतया कलेक्टर ही सहायक हो सकता है।

तीसरे, कृषि सम्बन्धी कर्ज प्राप्ति की अनेक योजनाओं की सफलता में भी कलक्टर विशेष रूप से सहायता कर सकता है। कृषि अर्थ आयोग तथा व्यापारी बैंकों के बढ़ते हुए सहयोग के कारण अब स्थिति बहुत बदल रही है और कर्ज़ा अथवा तकाबी या दान सहायता देना अब कलैक्टर का काम नहीं है। अब अर्थ आयोग और व्यापारी बैंकों आदि जैसी संस्थाओं को ही यह कार्य करना चाहिए, परन्तु कलैक्टर का सहयोग इन सभी योजनाओं की सफलता के लिए बहुत उपयोगी और आवश्यक है जैसे योजना का प्रतिपादन, जमानत की समस्या अथवा कर्ज की वसूली की समस्या, इन सभी में कलैक्टर का सहयोग बड़ा उपयोगी होगा।

चौथे, सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था और उसके उचित उपयोग के सम्बन्ध में कलैक्टर को विशेष रूचि लेनी चाहिए। उचित उपयोग का शब्द जान बूझ कर रखा गया है क्योंकि ज़रूरत केवल अधिक पानी की नहीं है, बल्कि इतनी ही जरूरत और सावधानी सिंचाई के लिए नालियों के प्रबन्ध की, भूमि को समतल करने की, खेत के अन्दर नालियों की और बिना जरूरत पानी की बर्बादी को रोकने की है और साथ ही लाभ उठाने वालों से रकम की वसूली की भी। सिंचाई के लिए उचित नालियों

के बनाने पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है परन्तु उचित नाली व्यवस्था के न होने से पूरी सिंचाई न मिलने पर नई फसलों में पूरी उपज नहीं होती। उचित सिंचाई व्यवस्था का विषय बहुत ही गहन है। भारत के कई भागों में इस सम्बन्ध में कई प्रशिक्षण योजनाएं और नमूने की योजनाएं बनाई गई हैं। पानी की उपलब्धि में फालतू पानी की उपलब्धि भी शामिल है। इसलिए कभी कभी नहरी इलाके में भी कभी कभी नलकूपों की व्यवस्था बहुत उपयोगी सिद्ध होती है और इसे प्राथमिकता देनी पड़ती है।

पांचवें, बिक्री के लिए सड़कों के निर्माण सहित मण्डी तथा बाजारों की सुव्यवस्था कलेक्टर की विशेष देख-रेख में रहनी चाहिए क्योंकि इस सम्बन्ध में व्यापारी तथा बैंकों के अतिरिक्त पी० डब्लू० डी०, नगर निगम, मण्डी कमेटी आदि जैसी अनेक संस्थाएं और उनके अन्तर्गत अनेक नियम पूरा प्रभाव रखते हैं।

वास्तव में कभी कभी मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि हमारे सामुदायिक विकास योजना के कार्यक्रम में सड़कों को, मण्डियों को, छोटे-छोटे बिक्री केन्द्रों को तथा देहाती और शहरी मिले जुले व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना और विकास के कार्यक्रमों को महत्वपूर्ण स्थान क्यों नहीं दिया गया। यह एक ऐसा विषय है जो अब क्षेत्रीय तथा जिला स्तर के विकास कार्यक्रमों की योजना का मूल बिन्दु होना चाहिए। विशेषकर ऐसे जिलों में तो, जहां अब उपज अधिक होने लगी है और सन्तोषजनक बिक्री व्यवस्था न होने के कारण उत्पादन कर्त्ताओं को उचित प्रेरणा नहीं मिल रही है, वहां तो इस कार्यक्रम को प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए ताकि उत्पादन के साधनों की उपलब्धि और उपज की बिक्री दोनों ही बातों में उन्हें पूरी सुविधा मिले और वह उपज की वृद्धि करने की प्रेरणा पाते रहें।

अन्त में, मेरी राय में किसानों के प्रशिक्षण का उचित समन्वय

करना और उसमें भाग लेने के लिए सभी किसानों को सहयोग की प्रेरणा देना जिले के कलक्टर का विशेष उत्तरदायित्व होना चाहिये। जन सहयोग का अर्थ बड़ा व्यापक हैं और उसमें निम्नलिखित सभी बातें सम्मिलित हैं जैसे :

(१) आधारभूत उत्पादक जैसे किसान, मछेरा और पशु-पालक आदि सभी का प्रशिक्षण में सहज सहयोग।

(२) गांव, ब्लाक तथा जिला स्तर पर सभी गैर सरकारी अथवा जन नायकों में प्रशिक्षण के प्रति उत्साह होना।

किसान प्रशिक्षण का मुख्यतया पहली श्रेणी के लोगों से सम्बन्ध है। इसलिए प्रशिक्षण प्रशिक्षार्थी के व्यवसाय पर आधारित होना चाहिए। इसका यह मतलब हुआ कि गाँव, ब्लाक और जिला स्तर पर जितनी भी कृषि उत्पादन योजनाएं हों, उससे सम्बन्धित उत्पादकों का प्रशिक्षण प्रत्येक योजना का आन्तरिक अंश होना चाहिए।

किसान प्रशिक्षण में किसानों के खेतों पर वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगात्मक प्रदर्शन कार्य, ऐसे स्थानों पर किसान मेलों का आयोजन, इन प्रयोगों में किये जा रहे कार्यक्रम का संचार साधनों द्वारा प्रचार करना, प्रयोग क्षेत्रों में किसान गोष्ठियां बनाना और निरक्षर किसानों के लिए व्यावसायिक साक्षरता प्रसार कार्य आदि सभी कार्यक्रम शामिल हैं। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था सारे जिले के किसानों के लिए एक साथ करने की अपेक्षा विशेष व्यावसायिक समूहों के लिए करनी उचित है। जैसे अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रशिक्षण, निश्चित क्षेत्र के विकास का कार्यक्रम या पशु विकास का विस्तृत कार्यक्रम। ऐसे प्रशिक्षण के लिए राज्य सरकारों के अनेक विभागों, केन्द्रीय सरकार, धन उधार देने वाली संस्थाओं, पंचायत राज्य संस्थाओं तथा शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थाओं का समन्वयित सहयोग आवश्यक है। समन्वय अधिकारी के नाते कलक्टर के लिए यह बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है, क्योंकि उस

किसान की स्थिति को, जिसके लिए ये सभी कार्यक्रम किये जा रहे हैं, कलक्टर से बेहतर कोई नहीं समझता।

अभी तक किसान की प्रौढ़ शिक्षा के बारे में जो कुछ भी विचार किया गया है, उससे स्पष्ट है कि किसान प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षक को दो में से कोई एक उत्तरदायित्व तो निभाना ही होगा अर्थात् या तो वह कृषि विकास के कार्यक्रम के समन्वय अधिकारी का सहयोगी बन कर कार्य करेगा जिसमें किसान प्रशिक्षण कार्य भी शामिल है या वह किसी विशेष क्षेत्र के बहु अंगी विकास कार्यक्रम का, जो विशेषकर उपज और प्रशिक्षण का सम्मिलित कार्यक्रम होगा, उसका संयोजक होगा जैसे कि ईरान और यूथोपिया में यूनेस्को की सहायता से चलाये गए अनेक व्यावहारिक साक्षरता कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों में विकास तथा अधिक उत्पादन दोनों का उत्तरदायित्व शिक्षा अधिकारी पर ही होता है। साधारणतया जिला या ब्लाक के विकास कार्यक्रमों में अधिक उपज का उत्तरदायित्व तो कृषि विभाग का होता है और शिक्षा प्रसार का शिक्षा अधिकारी पर और इन दोनों में समन्वय और तालमेल पैदा करने का उत्तर-दायित्व जिला अधिकारी पर, जिसे कहीं कलक्टर, कहीं जिला मेजिस्ट्रेट, कहीं डिप्टी कमिशनर और कहीं जिला अथवा प्रदेश प्रतिनिधि कहा जाता है।

उत्पादन तथा प्रशिक्षण के सम्मिलित कार्यक्रम, जिनमें आरम्भ में ही प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था हो, आदर्श होंगे। परन्तु कृषि विकास के विस्तृत कार्यक्रम, जैसे कि अधिक उपज देने वाली बीजों की फसलों के कार्यक्रम, या घनी खेती योजना के कार्यक्रमों में प्रशिक्षण बाद में रखा गया, प्रशिक्षक के लिए चुनौती बन गये। परन्तु अब तो सूखी खेती, नये सिंचित क्षेत्रों में खेती या चार पाँच गांव को मिलाकर सामूहिक दुग्ध केन्द्रों की स्थापना जैसी विकास योजना में प्रशिक्षण योजना का आन्तरिक

अंश बनाया गया है।

अब यह देखना चाहिए कि ब्लाक और जिला क्षेत्रों में विकास विस्तार अधिकारियों को किसानों की प्रौढ़ शिक्षा पसार के लिए किस प्रकार का प्रशिक्षण चाहिए। इसके लिए यह समझना होगा कि साधारणतया भारतीय जिला स्तर पर विस्तार अधिकारी किस प्रकार के होते हैं। इस सम्बन्ध में ग्राम सेवक को ही मुख्य अधिकारी समझा जाता है। वही गाँव गांव में घूमता है, उन्हें सूचना देता है, कृषि तथा अन्य विषय विशेषज्ञों के भाषण सुनकर लाभ उठाने के लिए कृषकों को इक्ट्ठे करता है, ग्राम स्तर की विकास योजना के कार्यक्रम बनाने में सहायता करता है और सरकार की नई विकास योजनाओं में भाग लेने वाले किसानों की सूची बनाता है।

ग्राम वासियों को नये से नये ज्ञान की जानकारी देने के बारे में अनेक अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम सेवक, जो १० से २० गांवों में कार्य करने का उत्तरदायित्व निभाता है, वो ही सबसे अधिक उपयोगी साबित हो सकता है। विशेषकर बिना बिजली के केवल बैट्री सैल से चलने वाले रेडियो से पहले तक तो ग्राम सेवक ही गांव वालों को सूचना देने वाला केवल अकेला ही था। परन्तु इस रेडियो के अतिरिक्त तीन और बातें हैं जिन्होंने ग्राम सेवक के काम को कुछ कम कर दिया है। एक तो अधिक उपज देने वाले बीजों के उपयोग की गम्भीर तकनीक के सामने ग्राम सेवक मात खा गया। उसको इस योजना के सफल संचालन के लिए उचित कृषि प्रशिक्षण नहीं था। दूसरे, ग्राम सेवक उन सभी अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी है जो गांव में नहीं रहते। भारतीय ग्रामीण समाज में ऐसे आदमियों को माननीय नेता समझा जाता है जो सामाजिक रूप में तो ग्रामीण समाज का ही अंग हो परन्तु सामाजिक गुणों तथा अधिकार में उनसे ऊंचा हो।

"नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ कम्युनिटी डवेलपमेंट, हैदराबाद" के श्री ललित के० सेन के १९६९ में किये गये अध्ययन "भारत में जनमत की नेतागिरी", के अनुसार लोग उनसे परामर्श लेते हैं जो उन्हीं की आपसदारी के हों परन्तु अधिकार और रिवाज के अनुसार परामर्श करने वालों से भिन्न हों। ग्राम सेवक सरकारी अधिकारी होने के नाते इस गिनती में नहीं आता। उसे तो अपने उच्च अधिकारियों को परिणाम बताने होते है, उनको सामयिक ब्यौरे भेजने होते हैं और निश्चित लक्ष्यों पर पहुंचना होता है। जहां कहीं ग्राम सेवक समुदाय का अंग बन जाते हैं, वहां वे बहुत सफल होते हैं। परन्तु सामुदायिक विकास योजना के अनुसार तो ग्रामसेवक को स्थानीय समाज के प्रतिनिधि के बजाय सरकारी अधिकारियों की कड़ी में अधिक रहना पड़ता है। तीसरे, ग्राम सेवक को वार्तालाप और विचारों के आदान प्रदान का केवल एक ही साधन अर्थात् 'निजी सम्पर्क' ही उपलब्ध है। यदि उसे श्रव्य दृश्य साधनों के उपयोग का प्रशिक्षण और सुविधा प्राप्त हो जाये, तो वह बहुत ही उपयोगी हो सकता है। परन्तु अनेकों उत्तरदायित्व होने के नाते वह केवल एक साधारण कर्मचारी ही बन कर रह जाता है और केवल कृषि की ओर अपना विशेष ध्यान नहीं दे सकता।

तो क्या ग्राम सेवकों की संख्या बढ़ा देनी चाहिए ? यह प्रश्न स्वाभाविक है। वास्तव में होना यह चाहिए कि एक ग्राम सेवक तो केवल खेती की योजनाओं के लिए होना चाहिए और ग्राम विकास सम्बन्धी अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए दूसरा। चाहे जो भी प्रबन्ध हो, अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि ग्राम सेवकों के सम्पूर्ण प्रशिक्षण का पूरा प्रबन्ध हो ताकि वे ग्राम वासियों की श्रद्धा के पात्र बन सकें। श्री दौलत सिंह और श्री वी० के० श्रीवास्तव के हाल के अध्ययन "उत्तर प्रदेश में विस्तार सेवा अधिकारियों तथा किसानों का प्रशिक्षण" से यह सिद्ध होता

है कि उत्तम श्रेणी के कार्यकर्त्ताओं में से ६४.८४ प्रतिशत ने सुव्यवस्थित प्रशिक्षण प्राप्त किया था और असतोष जनक कर्मचारियों में ७१.४३ प्रतिशत ने कृषि विषय में कोई सुव्यवस्थित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था। इसी अध्ययन से यह भी मालूम होता है कि ग्राम सेवक तथा अन्य विस्तार सेवा अधिकारीगण के मतानुसार यह प्रशिक्षण निम्नलिखित विषयों पर होना चाहिए :—

(१) कृषि विज्ञान की विषय वस्तु।
(२) कार्यक्रम नियोजन तथा विकास।
(३) मूल्यांकन, शोध, प्रगति लेखबद्ध करना, ब्यौरा लेखन, पुनः अवलोकन तथा विचार विनिमय करना।
(४) विचारों का आदान प्रदान।
(५) विस्तार सेवा योजना व्यवस्था और प्रशासन।
(६) सामाजिक प्रणाली और व्यवस्था और
(७) मानवीय विकास तथा शैक्षणिक पद्धति।

प्रस्तुत सूची में मैं दो और विषय जोड़ना चाहूंगा, एक तो प्रौढ़ शिक्षण मनोविज्ञान और सिद्धान्त और दूसरा श्रव्य दृश्य शिक्षा साधनों के उपयोग का कार्यात्मक प्रशिक्षण। आजकल विस्तार सेवा कर्मचारियों का प्रशिक्षण चार तरीकों से किया जाता है :—

(१) कालिजों और विश्वविद्यालयों के विस्तार विभागों में ग्राम सेवकों के लिये प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था द्वारा। हाल में बने विश्वविद्यालयों के अलावा कृषि विद्यालयों में दिये जाने वाले ऐसे प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अधिकांशतः शिक्षा सिद्धान्त से भरे हैं और फिर बहुत सारे ग्राम सेवक तो बिना उचित योग्यता के ही नियुक्त हो गये थे। इसलिए वे इस सिद्धान्त पूर्ण प्रशिक्षण से लाभान्वित नहीं हो सकते।

(२) दूसरी प्रकार का प्रशिक्षण वह है जो नियुक्ति पूर्व ही सब ग्राम सेवकों को दिया जाता है। यह मूलतया कार्य विधि का प्रशिक्षण है। परन्तु यह प्रशिक्षण अकेले में वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान की गतिविधि को देखते हुए बिल्कुल अधूरा है। विज्ञान और तकनीक की प्रगति इतनी तेज़ है कि उसने इन विषयों के पुराने ज्ञान को बिल्कुल नाकाफी और असामयिक बना दिया है। इसलिए अब तीसरी प्रकार का प्रशिक्षण जो काम करते करते आवश्यकता अनुसार चलता रहे, जरूरी है। यह प्रशिक्षण विशेष विषयों को लेकर उनका सम्पूर्ण ज्ञान देने के लिए दिया जाता है।

इससे भी अधिक उपयोगी कार्यक्रम अनौपचारिक प्रशिक्षण है जो उन गोष्ठियों और कार्यात्मक प्रयोगों द्वारा दिया जाता है जिनकी व्यवस्था देशव्यापी विकास कार्यक्रमों की व्यवस्था के लिए की जाती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'अधिक उपज देने वाले बीजों के उपयोग के प्रचार और प्रयोगार्थ हर वर्ष कृषि निदेशकों से लेकर जिला और ब्लाक स्तर के कृषि अधिकारियों तक के लिए अनेक प्रयोगात्मक गोष्ठियों के शिविर लगाए जाते हैं। यह अनौपचारिक प्रशिक्षण सार्थक होता है क्योंकि यह उत्पादन कार्यक्रम का ही एक अंश है। इन गोष्ठियों में अनेक व्यावहारिक समस्याओं पर वाद विवाद होता है और उनका हल समझने समझाने का प्रयत्न किया जाता है।

ग्राम स्तर पर कार्य करने वाले विस्तार सेवा अधिकारियों के लिए काम के साथ साथ ही एक और प्रकार का प्रशिक्षण हो सकता है, जिस पर अभी प्रयोग नहीं किया गया है, वह है पत्राचार प्रशिक्षण जिसके साथ साथ ही समन्वयित हो ग्राम सेवकों के लिए रेडियो प्रसार कार्यक्रम। देहातों में कार्य करने वाले विस्तार सेवा कार्यकर्त्ता नई से नई गतिविधियों के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। यदि उनके उपयोग के लिए कोई पत्रिका

प्रकाशित की जाये जिनमें वे अपनी समस्याएं भेज सकें और उसके द्वारा अपनी समस्याओं के समाधान पा सकें, तो उन्हें निर्विघ्न परामर्श मिलता रहेगा और वे ग्रामवासी किसानों की अधिक सेवा कर सकेंगे ।

ब्लाक और जिला स्तर पर तो विस्तार सेवा अधिकारी अपने अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं, जैसे :——कृषि विशेषज्ञ, पशु-पालन विशेषज्ञ, व्यापार विशेषज्ञ, तथा उधार खाता विशेषज्ञ आदि-आदि । अधिक उपज देने वाली फसलों के प्रयोग क्षेत्रों में किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत, प्रशिक्षकों के पथिक दल स्थान-स्थान पर किसानों की सभाओं की व्यवस्था करते हैं, प्रदर्शनात्मक प्रयोग दिखाते हैं और किसानों के व्यावसायिक दलों की व्यवस्था करते हैं । इस प्रकार इस कार्यक्रम के संचालन के लिए तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं । योजना को कार्यरूप देने वाले जैसे ग्राम सेवक तथा जिला कृषि अधिकारी, दूसरे विषय विशेषज्ञ और तीसरे प्रशिक्षक । ब्लाक स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी और जिला स्तर पर कलेक्टर भिन्न भिन्न कार्यक्रमों में समन्वय स्थापन के उत्तरदायित्व का भार संभालते हैं । कुछ राज्यों में तो विकास खण्ड अधिकारी कृषि विभाग अधिकारियों में से ही बनाये गये हैं, अन्यथा साधारणतया खण्ड विकास अधिकारी तथा जिले के अधिकारी सभी प्रशासनिक अधिकारियों में से ही बनाये जाते हैं ।

प्रगतिशील समुदायों में इस प्रकार के समन्वय अधिकारियों का होना दो कारणों से जरूरी है । एक तो यह कि विकास कार्यक्रम का सभी खर्चा विकास विभाग से ही मिलता है, इसलिए स्थानीय प्रतिनिधि संस्थाएं कार्यकर्त्ताओं पर कोई विशेष प्रभाव नहीं रखती । जहां तक विषय विशेषज्ञों और कार्यान्वित करने वालों का सम्बन्ध है, उनमें तो उचित समन्वयन होना ही चाहिए । प्रशासनिक अधिकारियों को इसके अतिरिक्त और भी लाभ हैं ।

एक तो वो पूरे प्रशासन का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे ऐसा देखा गया है कि दूसरे विभागों के प्रतिनिधि भी अपनी समस्याओं के लिए उन्हीं से परामर्श करते हैं।

भूतकाल में विकास कार्य से सरकार का सम्बन्ध नहीं था। इसलिए जिला स्तर के अधिकारी साधारणतया कानून व्यवस्था, शान्ति व्यवस्था, और सरकारी कर वसूली में ही लगे रहते थे और उनका प्रशिक्षण भी इन्हीं कामों के लिए होता था। वे खेती की उपज पर ध्यान रखते थे और फसलों का नाश हो जाने पर सरकारी कर्ज की व्यवस्था करते थे। उनको कृषि उत्पादन की समस्याओं या नई तकनीकों के प्रयोग की प्रेरणा देने, या उसके लिए आवश्यक साधन और सामग्री को उपलब्ध कराने या कृषि उत्पादन को प्रगति के लिये कर्जे की व्यवस्था करने के कोई अवसर अथवा उत्तरदायित्व नहीं थे। अब तो ये सभी जिम्मेदारियाँ उन्हीं पर पड़ गई हैं। परन्तु वे इस क्षेत्र के लिये न तो प्रशिक्षित हैं और न ही उनमें इस क्षेत्र के नेतृत्व के गुण हैं।

इसलिए कृषि विकास जिले के प्रशासन का एक अंग बन गया हैं और विकास खण्ड अधिकारी तथा कलेक्टर इस कार्य के संयोजन और संचालन में मुख्य समन्वय अधिकारी और प्रशिक्षक। विशेष तकनीकी ज्ञान की जानकारी वो नहीं दे सकते परन्तु किसानों को यह समझाना कि कृषि विकास कार्य में अनेक विषय विशेषज्ञों का परामर्श जरूरी हैं, यह उनका उत्तरदायित्व जरूर है।

ऐसा वे तब तक नहीं कर सकते, जब तक वे स्वयं खेती के मूल ज्ञान से परिचित और जानकार न हों और कृषि क्षेत्र की नवीनतम तकनीकों और गतिविधियों को न समझते हों। हाल में ही ऐसे प्रशासनिक अधिकारियों के लिए दो प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की गई है। एक तो आई० ए० एस० अधिकारियों के लिए नियुक्ति पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम उनको तीन चार महीने तक कृषि विश्वविद्यालयों में दिया जाता है। यह कार्यक्रम सफल नहीं

हुआ क्योंकि आने वाले भविष्य में जो काम इन अधिकारियों को करने होंगे उससे इस प्रशिक्षण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। इस लिए यह बेहतर समझा गया कि इन प्रशिक्षार्थियों को सीधे ही उन विकास खण्डों अथवा जिलों में नियुक्त किया जाय जहां कृषि विकास की विशेष योजना चलाई जा रही हो जैसे आई० ए० डी० पी० या एच० वी० पी० या असिंचित खेती योजना या विशेष प्रशासित क्षेत्र विकास या छोटे किसानों की सहायता योजना। ऐसी दशा में वे सम्बन्धित विकास योजना से सम्बन्धित किसानों की सभी समस्याओं को समझ सकेंगे और सुलझा सकेंगे।

दूसरे प्रकार का प्रशिक्षण जो बहुत अधिक सफल हुआ है वह है प्रशासकों को राष्ट्रीय एकाडमी में कलक्टरों की व्यवस्था। इन गोष्ठियों में देश के भिन्न-भिन्न भागों से १० या १२ कलक्टरों को १० से १५ दिन तक एक साथ रखा जाता है। इन गोष्ठियों में विषय विशेषज्ञ और उच्च अधिकारी सामायिक विषयों पर नवीनतम जानकारी देते हैं, गोष्ठी में भाग लेने वाले अपने-अपने अनुभव बताते हैं और फिर सब विषयों पर विचार का आदान-प्रदान और वाद विवाद होता है। अभी तक जो इस प्रकार की गोष्ठियां हुई हैं, वे बहुत ही सजीव और उपयोगी रही हैं। कलेक्टर लोग वर्तमान कृषि उत्पादन की अनेक समस्याओं से परिचित होने लगे हैं और सरकार द्वारा चलाई गई कृषि विकास की अनेक योजनाओं के बारे में उन्होंने विचारों के आदान-प्रदान द्वारा अपनी समस्याओं को सुलझाया है। इन गोष्ठियों में भाग लेने के बाद कलेक्टर लोग अपने-अपने जिलों में विकास सम्बन्धी सभी अधिकारियों और कर्मचारियों का पथ प्रदर्शन और नेतृत्व कर सकेंगे तथा विश्वास के साथ किसानों से भी बातचीत कर सकेंगे।

रायपुर जिले में, अक्टूबर १९६७ में, चावल उत्पादन के सम्बन्ध में जो प्रशिक्षण दिया गया था, उनमें राज्य, जिला और

ब्लाक स्तर के सम्बन्धित अधिकारियों के साथ कलैक्टर लोग प्रशिक्षण देने के लिए नहीं बुलाये गये, इसीलिए प्रशिक्षकों ने उस प्रशिक्षण का अधिक लाभ न उठाया। वैसे भी आई० ए० डी० पी० योजना के एक जिले को अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण का प्रयोगात्मक क्षेत्र बनाना बहुत उपयोगी सिद्धान्त है। प्रशिक्षार्थी भिन्न भिन्न स्तरों के गुटों से आते है, इससे वे लोग एक ही प्रकार के प्रशिक्षण अनुभव से एक मत हो जाते हैं। इस प्रशिक्षण का आधा भाग बाहर क्षेत्र में दिया जाता है और आधा सामूहिक रूप से प्रशिक्षण कक्ष में। कृषि क्षेत्र में दिया गया प्रशिक्षण बहुत लाभदायक रहा क्योंकि समय विभाग के अनुसार सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रदर्शन खेती पहले से ही यथा समय लगा दी गई थी। इसलिए चावल की खेती की मुख्य-मुख्य समस्याओं पर आसानी से बातचीत हो सकी।

चावल की खेती का एक और प्रशिक्षण योजना पर प्रयोग किया गया। उनके अन्तर्गत कुछ प्रशिक्षणों और अन्य अधिकारियों को फिलीपिन्स की राष्ट्रीय संस्थान में प्रशिक्षण के लिये भेजा गया। वापस आने पर उन ८ प्रतिशत अधिकारियों ने ६९-७० में ५०० लोगों को और १९७०-७१ में ६५० लोगों को प्रशिक्षित किया। ऐसा इसीलिये सम्भव हो सका क्योंकि यह प्रशिक्षण चावल के उत्पादन विकास के सम्बन्ध में था जिसकी योजना हमारे देश में सरकार द्वारा पहले ही लागू हो चुकी थी।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि प्रशिक्षण और सामयिक उत्पादन विकास के कार्यक्रम दोनों में गहरा सम्बन्ध है। इन दोनों में गहरा तालमेल न होने के कारण लगभग ८१० ग्राम सेवकों का पूर्व नियुक्ति प्रशिक्षण तथा कार्यरत होते हुए पुनः शिक्षण सब केवल रसमिया हो गया। अब वे सब प्रशिक्षण पुराने तथा उपयोग रहित हो गये। इन प्रशिक्षणों के अनुपयोगी होने का एक और कारण यह भी है कि ग्राम सेवकों के प्रशिक्षण केन्द्रों का उन कृषि

विश्वविद्यालयों या शोध केन्द्रों से जहां नवीनतम ज्ञान और तकनीक की खोज हो रही है, कोई सम्बन्ध नहीं है।

अब यह देखना चाहिये कि व्यावसायिक साक्षरता प्रसार योजना में किस तरह का प्रशिक्षण चाहिये। हालांकि भारत में केन्द्रीय शिक्षा और कृषि मंत्रालयों में किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता प्रसार योजनाओं में काफी तालमेल है, फिर भी साक्षरता क्षेत्र के कार्य कर्ताओं को कृषि विज्ञान प्रशिक्षकों से अलग ही समझा जाता है। साक्षरता कार्यकर्त्ता अधिकतर शिक्षकों में से ही लिये जाते हैं, जिनके लिये यह जरूरी नहीं है कि उनके पास भूमि हो या वह खेती करते हों। यह जरूरी है कि जो भी किसानों के लिये व्यावसायिक साक्षरता का कार्य करते हों, उन्हें खेती के उस विषय का पूरा ज्ञान हो, जिसमें उसके शिक्षार्थी लगे हुए हों। वास्तव में, कृषि विज्ञान के स्नातकों को यदि किसान साक्षरता का काम सौंपा जाये, तो बहुत उत्तम होगा। वे लोग किसान की रूचि और जरूरत के अनुसार उपयोगी शब्दावली से भी परिचित होंगे और उसी को किसानों के भाषा-शिक्षण का आधार बना सकेंगे।

इस अध्याय में पहले उन विषयों की चर्चा की गई है जिनके आधार पर प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण होना चाहिये। प्रशिक्षार्थियों के लिए भी प्रशिक्षण की व्यवस्था, महत्व, योजना और कार्यक्रम की जानकारी उतनी ही जरूरी है। नमूने का खेत कैसे लगाना, प्रदर्शन की व्यवस्था कैसे करनी, किसानों के वर्ग कैसे बनाने, किसानों को कृषि कार्यक्रम की योजना बनानी कैसे समझाना और कैसे इस काम में उनकी सहायता करनी आदि आदि सभी काम उनके आगामी दायित्व होंगे।

प्रौढ़ किसान से जब भी कोई विचार विमर्श करता है तो वह सब कार्य शैक्षणिक ही है। स्वीकृत मण्डियों के दुकानदार, रुपया उधार देने वाला बैंकर, खाद, मशीनरी तथा कीटनाशक दवाईयों

के बेचने वाले, सरकारी विस्तार सेवा अधिकारी, नमूने के खेत बुवाने वाला वैज्ञानिक–ये सभी तो शिक्षक हैं। प्रौढ़ों के संसार में प्रत्येक प्रौढ़ शिक्षक है और प्रत्येक ही विद्यार्थी, क्योंकि किसान भी जब किसी से मिलता है, बात करता है, तो अपने अनुभवों के आधार पर उसे कुछ ज्ञान देता है। शिक्षक के लिए एक बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि वह जनता का सेवक पहले है, सरकार का कर्मचारी पीछे। उसमें किसी प्रभुत्व की भावना नहीं होनी चाहिये। उसको लोगों का उचित आदर करना चाहिये, वे चाहे जितने भी पिछड़े हुए या निरक्षर हों अथवा अशिक्षित। उसे उन्हीं की भाषा में बोलना चाहिये और ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये जिसे प्रशिक्षार्थी एवं किसान समझ न सकें।

किसान महिलाएं और युवक

अब से पहले महिलाओं के प्रशिक्षण का कार्यक्रम पुरूषों और बालकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम से भिन्न समझा जाता था। सम्भवतः विद्यालयी शिक्षा तो इतिहास के अनुभव तथा सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर पुरूषों और महिलाओं के लिये अलग-अलग होनी जरूरी थी। परन्तु प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में जहां शिक्षा प्रसार के विषय पुरूषों और महिलाओं के लिये एक जैसे हों, शिक्षण कार्य का अलग-अलग होना उपयोगी नहीं है। वास्तव में यह भेद तो सामाजिक प्रगति और विकास के सन्तुलन को, जो कि प्रौढ़ शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है, बिगाड़ देगा।

इसलिये अब यह विचार जड़ पकड़ता जाता है कि प्रौढ़ शिक्षण कार्यक्रम को सारे परिवार के लिये ऐसे विषयों पर आधारित किया जाये जो पति पत्नी दोनों से सम्बन्धित हों और दोनों के लिये उपयोगी हों। पश्चिमी जर्मनी में १९७१ में, "सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ पोलीटीकल एजुकेशन", नाम की संस्था ने "फैमिली एंड सोसायटी टूडे" विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की थी। इस गोष्ठी का उद्देश्य यह मालूम करना था कि श्रमिक परिवारों को यदि दो सप्ताह के लिये एक ऐसे आकर्षक और मनोहर वातावरण में प्रशिक्षण के लिये ले जाया जाये कि प्रशिक्षण कार्य अवकाश के जैसा मधुर और सुहावना मालूम पड़े तो उनकी मनोवृत्ति पर क्या प्रभाव पड़ेगा। दो सप्ताह का यह प्रायोगिक प्रशिक्षण शिविर "टोनस" स्थान पर "डोरेफवैल फमिली हालीडे सेन्टर," में किया गया था। जो २४ श्रमिक परिवार इस शिविर

में बुलाये गये थे, उनके मालिक उनका वेतन बराबर देते रहे और उनके रहने के स्थान का प्रबन्ध व्यवस्थापक संस्था, सेन्ट्रल ब्यूरो आफ पोलीटिकल एजुकेशन," ने किया। यह प्रशिक्षण जान बूझ कर पूरे परिवार के लिये इसलिये किया गया था, कि माता पिताओं की दो सप्ताह को गैर मौजूदगी में बालकों की देख रेख करने का उत्तरदायित्व कोई पड़ोसी नहीं ले सकते थे। इसके अतिरिक्त एक मूल उद्देश्य यह भी था कि सारे परिवार की सामूहिक प्रौढ़ शिक्षा योजना की उपयोगिता को एक प्रयोगात्मक रूप से जांचा जाये। माता पिता एक साथ प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेते थे और उसी समय उनके बालकों के समूह का एक अलग स्थान पर अन्य शिक्षक देख-रेख करते थे। बड़े बालकों को साधारण विद्यालयी शिक्षा दी जाती थी और छोटों को शिशु शिक्षा। सभी प्रशिक्षार्थियों के लिए खेल-कूद और मनोरंजन का पर्याप्त प्रबन्ध था।

माता-पिता के लिए इस प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों को शिक्षा और सूचना प्राप्ति के नये तरीकों को अपनाने के लिए प्रेरणा देना था। उनको केवल एक तरफा बातचीत के द्वारा सूचना और ज्ञान देने की कोई चेष्टा नहीं की गई। किसी विषय विशेष पर दी गई जानकारी को आपसी वार्तालाप और विचार विमर्श द्वारा समझने और उपलब्ध की गई पाठ्य सामग्री के आधार पर अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न प्रशिक्षार्थियों को स्वयं करना होता था। वास्तव में व्यवस्थापकों ने शिविर की स्थापना से पूर्व कोई सुदृढ़ पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं किया था। इसके बजाय शिविर आरम्भ होने के बाद व्यवस्थापकों और शिक्षार्थियोंदोनों ने मिलकर ही यह कार्यक्रम निश्चित किया था।

शिविर में भाग लेने वालों को दस-दस बारह-बारह की टोलियों में बांट दिया गया था। प्रत्येक टोली समस्याओं पर विचार विमर्श करती थी, और उन सर्वहित की मुख्य-मुख्य बातों

एक युवा किसान स्त्री अच्छी फसल देखकर प्रसन्न मुद्रा में ।

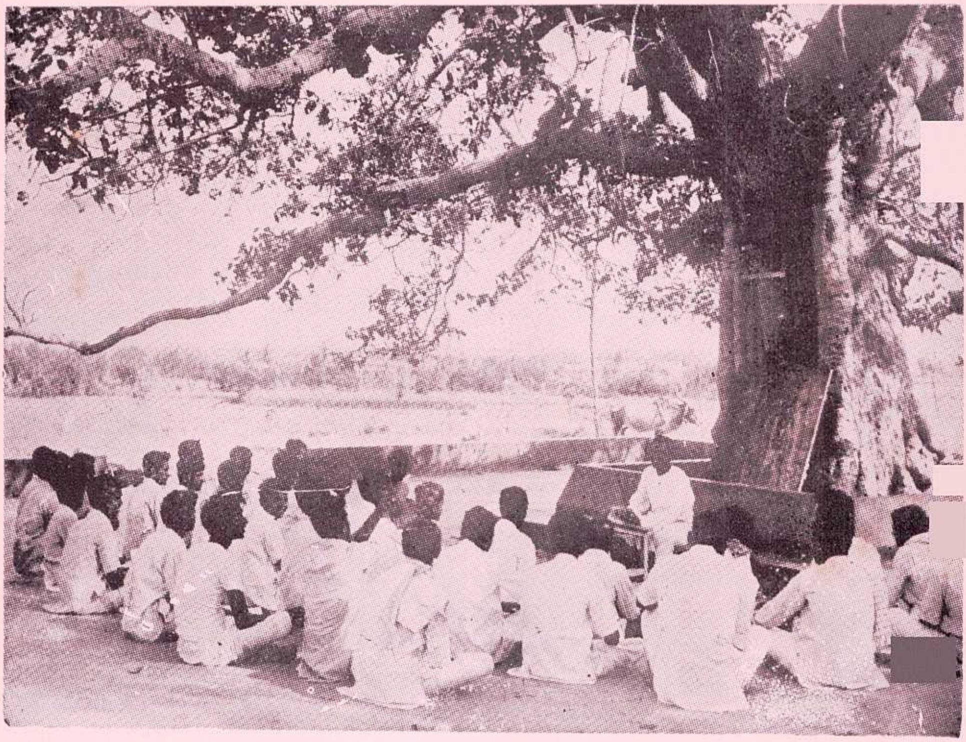

किसान कार्यात्मक साक्षरता कक्षा

का ब्यौरा बना लेती थी। इस प्रकार बनाई गई समस्याओं की सूची पर, आने वाले दो सप्ताहों में, सारे प्रशिक्षार्थी टोलियों में अदल-बदल कर विचार करते थे और इस प्रकार यह टोलियां रुचि वर्गों में बदल जाती थीं। हर रुचि की एक टोली का टोली नायक उन्हीं के बीच में से छांटा हुआ सुशिक्षित विवाहित जोड़ा होता था। उनकी योग्यता के आधार पर छांटा जाता था।

कार्यक्रम प्रशिक्षार्थियों की रुचि और आवश्यकता के अनुसार होने के कारण बड़ा रोचक रहा। मुख्य-मुख्य समस्याओं पर सारे दल में सामूहिक रूप से विचार विमर्श होता था। यह मुख्य विषय वही थे जिनमें उस समय सारी जर्मनी के लोगों में प्राथमिक उत्साह पाया जाता था। अधिक ज्ञान वृद्धि के लिए छोटे-छोटे भाषण दिये जाते थे और साथ ही विषय सम्बन्धी उपयोगी समाचार, पत्र, लेख और पुस्तकें भी उपलब्ध थीं। प्रशिक्षार्थियों में से कुछ लोगों का एक मण्डल अपने स्थानीय समाचार पत्र का सम्पादन करता था।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तथा अवधि की समाप्ति पर प्रशिक्षार्थी, व्यवस्थापक तथा पत्र प्रकाशक, साहित्यज्ञ सबने मिलकर कार्यक्रम की उपयोगिता का मूल्यांकन किया। एक मत से कार्यक्रम सफल समझा गया। प्रशिक्षण के लिए जो युक्तियां अपनाई गईं, उनके कारण भाषा बोलने और लिखने के सारे राष्ट्रीय प्रतिबन्ध निर्मूल हो गये और सब अड़चनें बहुत थोड़े समय में समाप्त हो गई। "सैन्ट्रल ब्यूरो आफ पोलीटीकल एजुकेशन" के इस प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्यूरो को ऐसे अनेक शिविरों की व्यवस्था देश के हर भाग के लिए और भिन्न-भिन्न विषयों पर करनी चाहिए।

हालाँकि यह कार्यक्रम व्यवसायी वर्गों के लिए किया गया था, परन्तु इसके लिए जो तरीका अपनाया गया, वह भारतीय कृषि वातावरण के भी बिल्कुल अनुकूल है। भारत के बहुत से भागों में केवल निर्णय करना ही नहीं, खेती के सारे कार्य करना भी अकेले

मर्द का नहीं, पूरे परिवार का दायित्व है। पति, पत्नी और बालक सभी मिल-जुल कर फसल की बुआई, सिंचाई, निराई, कटाई गाही और बरसाई पूरा कार्यक्रम सम्मिलित रूप से करते हैं। ऐसे अवसर भी आते हैं कि पति, पत्नी किसी विषय पर मिल जुल कर विचार करते हैं और निर्णय लेने में पत्नी की बात मानी जाती है। पैसे की संभाल रखना तो पत्नी का काम है ही। और बाहरी सम्पर्क पति का दायित्व। परन्तु यहां भी कुछ जातियों में भेद पाया जाता है। किसी-किसी जाति में बाहरी सम्पर्क भी महिला का ही दायित्व है। जहाँ तक कृषि क्रियाओं का सम्बन्ध है, भूमि संवारना, खाद लगाना, बुआई करना, पौद पनीरी लगाना, कटाई करना, फसल तैयार करना और उसकी बिक्री का प्रबन्ध करना, ये सब कार्य ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और जातियों में परिवारिक सुविधाओं और परम्पराओं के अनुसार पुरुषों और महिलाओं में बंटे होते हैं या सम्मिलित रूप में भी किये जाते हैं।

दुर्भाग्यवश सरकारों द्वारा जितने भी किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम किये गये हैं, उनमें इस महत्वपूर्ण तथ्य पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सभी प्रशिक्षण मुख्यतया पुरुष किसानों के लिए किये गये हैं चाहे वह युवक हों अथवा और भी बड़े। पति और पत्नियों के लिए कोई भी सम्मिलित प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं किया गया, चाहे प्रशिक्षण के उद्देश्य दोनों के लिए बराबर महत्व के रहें हों। जर्मनी में किया गया प्रयोग ऐसे कार्यक्रम का एक उपयोगी उदाहरण है और मार्ग दर्शक भी।

प्रगतिशील कृषि अर्थ व्यवस्था में नई तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन वृद्धि के कारण किसान की आर्थिक पदोन्नति होने के परिणामस्वरूप हर किसान को अधिक जानकारी और साधन प्राप्ति की चाह स्वाभाविक ही है। बेहतर आर्थिक स्थिति के साथ बेहतर शैक्षणिक योग्यताओं का होना पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए ही समान रूप से जरूरी है। पंजाब में, लुधियाना कृषि

विश्वविद्यालय के आस-पास के क्षेत्र में प्रगतिशील किसानों के कुछ परिवारों ने महिलाओं के लिए गृह विज्ञान, पोषण ज्ञान तथा उन्नत खेती के प्रशिक्षण में बड़ी रुचि दिखाई है। ये प्रशिक्षण कृषि विश्वविद्यालय द्वारा लघुकालीन पाठ्यक्रमों के रूप में बिना किसी प्रमाण-पत्र के आधार पर चलाये गये थे। लुधियाना कृषि विश्वविद्यालय के गृह विज्ञान विभाग द्वारा चलाये गये ऐसे-ऐसे तीन पाठ्यक्रमों में तो धनी किसानों की लड़कियों ने भाग लेने में गर्व समझा। उनके विचार में यह प्रशिक्षण पाठ्यक्रम खेत के वर्तमान तकनीकी वातावरण से बहुत ही सम्बन्धित थे। इस प्रशिक्षण से विवाह क्षेत्र में भी महिला का मूल्य बढ़ जाने के कारण बहुत उपयोगी रहा और खेती कार्य में ट्रैक्टर, आधुनिक हारवेस्टर तथा अन्य यन्त्रों के उपयोगार्थ भी महिलाओं के लिए पुरुषों को बराबर सहयोग देने में सहायक रहा।

प्रश्न यह उठता है कि महिला प्रशिक्षण के ऐसे कार्यक्रमों में कारोबारी, विशेष कर श्रमिक महिलाओं को दिलचस्पी क्यों नहीं होती। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि प्रशिक्षकों ने इस कार्यक्रम में उन विशेष तथ्यों पर कोई बल नहीं दिया जिनसे खेती के काम में लगे श्रमिक महिला वर्ग का सम्बन्ध होता है। ऐसे विषयों को प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में अलग बांट देना वैसे भी शायद सम्भव नहीं है। कृषि श्रमिकों के लिए खेती की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही एक प्रकार का पारिवारिक धन्धा है। इसलिए कृषि में लगी हुई महिला श्रमिक के लिए तो सारे कृषि कार्य की जानकारी देना और नमूना दिखाकर सम्पूर्ण क्रियाओं को प्रदर्शित करके दिखाना समझाना ही उपयोगी प्रशिक्षण होगा।

आन्ध्र प्रदेश में, अनन्तपुर के सूखी खेती के क्षेत्र में बहुत जल्दी ही यह पता लग गया कि खेती में कार्य करने वाली महिलाओं को भी पुरुषों के साथ-साथ श्रम कार्य करना चाहिये ताकि वह भी पानी का जो कुछ भी अंश मिट्टी में उपलब्ध है, उसको

सुरक्षित रख कर उसका उपयोग उठाना सीख जाएं। जहां कहीं भी महिलाएं कृषि क्षेत्र में खेतों में कार्य करती हों, वहां ही उनके काम में और खेती की अन्य सम्पूर्ण प्रक्रियाओं में पूरा तालमेल होना जरूरी है। ऐसी दशा में ही नये-नये तकनीकी प्रयोग सफल हो सकते हैं।

एक और अड़चन है सुयोग्य महिला प्रशिक्षकों की उपलब्धि की जो प्रभाव पूर्ण ढंग से महिला कृषि श्रमिकों से वार्तालाप कर नये ज्ञान का प्रशिक्षण दे सकें। पढ़ी लिखी सुशिक्षित भारतीय महिलाओं को कृषि के प्रति कोई रुचि नहीं है, इसलिये ऐसे योग्य महिला प्रशिक्षकों का मिलन जिन्हें कृषि का व्यावहारिक अनुभव हो और भी कठिन है। महिला प्रशिक्षकों के रास्ते में एक और बाधा यह भी है कि वे कृषि में महिला श्रमिकों के मालिकों को प्रशिक्षण का मूल्य और उपयोगिता के बारे में विश्वास नहीं दिला पाती हैं। कृषि श्रमिकों के लिए जो प्रशिक्षण चलाये गये, उनमें यह कठिनाई स्पष्ट मालूम पड़ गई।

उदयपुर के पास के कुछ गांवों में कृषि विस्तार सेवा कार्य चलाया गया तो विश्वविद्यालय के प्रशिक्षण विभाग का यह अनुभव रहा कि अनाजों की खेती की अपेक्षा घरेलू छोटे-छोटे भूमि खण्डों में सागसब्जी उगाने की सुधरी तकनीकों का प्रशिक्षण अधिक कामयाब रहा क्योंकि इस प्रशिक्षण में परदानशीन महिलाओं ने भी रुचि ली ताकि वे स्वयं ही अपने आप में साग सब्जी उत्पादन की इस क्रिया को कार्यान्वित करके सफलता का प्रदर्शन कर सकती है। गृह वाटिका के ये कार्यक्रम परिवार की व्यस्त महिलाओं को भी आसानी से आकर्षित कर लेते हैं।

उदयपुर के आस-पास के क्षेत्र में इस प्रकार की गृह वाटिकाओं की मालकिनों ने तो गृह वाटिका समितियां बना लीं। इन समितियों को खाद और बीज की प्राप्ति के लिए विशेष सुविधाएं दी गईं। महिला प्रशिक्षकों ने इन गृह वाटिकाओं की योजना

का शिशु पोषण, पौष्टिक आहार तथा मुर्गी पालन आदि की योजनाओं को प्रोत्साहन देने में सहारा लिया और इसी से सम्बन्धित अन्य कार्यक्रमों की सफलता के लिए साधन बनाया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि कृषि में लगी कारोबारी महिलाओं के प्रशिक्षण का कार्यक्रम भविष्य में तीन प्रकार से विकसित हो सकता है :—

(१) विश्वविद्यालयों में कृषि वातावरण से घिरी देहाती लड़कियों के लिए, जो कृषि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की इच्छुक हों, लघुकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था,

(२) गृह वाटिका व्यवस्था, विज्ञान और कला प्रशिक्षण।

(३) कृषि धन्धे में लगी महिला श्रमिकों के लिए व्यावहारिक तथा क्रियात्मक कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनों की व्यवस्था।

इनमें अन्तिम कार्यक्रम अत्यन्त कठिन होगा, क्योंकि इस वर्ग की सभी महिलायें अपनी दैनिक मजदूरी पर कार्य में लगी रहती हैं और जब तक उनके मालिक को यह विश्वास न हो जाये कि यह प्रशिक्षण उनकी उपयोगिता बढ़ाने में उपयोगी होगा, तब तक वह न तो उनको छोड़ेगा, यानि समय की छूट देगा और न ही प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने पर बेहतर काम पर भी मजदूरी बढ़ायेगा। साधारणतया महिलाओं को ऐसा ही काम दिया जाता है जिसमें वेतन का आधार काम की मात्रा पर निर्भर करता है, उसकी अच्छाई पर नहीं।

जैसे यदि महिलाओं को पनीरी लगाने की आधुनिकतम तकनीक समझा दी जाये, पनीरी के बीच की दूरी और गहराई आदि का ज्ञान उनको हो तो पनीरी अच्छी लगाई जायेगी और पैदावार भी बहुत अधिक होगी, परन्तु उनका निरीक्षक तो उनके काम की जांच उनकी चाल पर करता है। फिर भी यह सम्भव है कि किसी-किसी विशेष क्षेत्र में श्रमिक दलों की कोशिशों से काम की जाँच उसकी मात्रा से नहीं उसके गुण से की जाये और पूरे

श्रमिक वर्ग द्वारा किये गये काम की सफलता प्रत्यक्ष जानी जा सके।

इस प्रकार के सम्पूर्ण कृषक परिवार के प्रशिक्षण का एक प्रत्यक्ष लाभ तो यह होगा कि जो छोटे-छोटे भूमि के खण्ड इन साधारण लोगों के पास है, वे नई तकनीकों के प्रयोग से तुरन्त अधिक उपयोगी बन जायेंगे और अधिक पैदावार देने लगेंगे। लखनऊ के आस-पास ऐसी सीमित भूमि के मालिक किसान पड़ोस के बड़े भूमिदार किसानों के खेतों पर काम करके जो कमा लेते हैं उसी में अपना निर्वाह कर लेते हैं और बस इसी से सन्तुष्ट रह कर अपने छोटे खेतों को सुधारने की चिन्ता अथवा चेष्टा नहीं करते। परन्तु इस समस्या को गहराई से देखने पर यह भी मालूम हुआ कि ये लोग अपने छोटे खेतों को सुधारने के लिए इसलिए प्रेरित नहीं होते क्योंकि इनको खाद, बीज और कीट नाशक दवाईयों की उपलब्धि की सुविधाएं नहीं हैं। एक पड़ोसी प्रगतिशील किसान, जो इन्हीं किसान श्रमिकों की नियुक्ति करके अपने खेतों को सुधारने की कोशिश करता है, उसको ये सब सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं और नई से नई तकनीकों को इन्हीं श्रमिकों के द्वारा काम में लेकर वह उपज बढ़ा लेता है और इन श्रमिकों को भी निर्वाह करने के उपयुक्त अच्छा वेतन दे देता है। हो सकता है यही प्रगतिशील किसान उपज के इन निवेशों का भण्डार बना लें और यथा आवश्यकता अपने श्रमिकों को भी दे सके। यह भी हो सकता है कि वह अपने नलकूप से उचित दामों पर सिंचाई के लिए पानी भी दे। इससे उसको अधिक लाभ यह होगा कि उसके हरे-भरे खेतों के चारों तरफ के खाली छोटे-छोटे खेत भी लहलहा उठेंगे और इस प्रकार इन लम्बे चौड़े लहलहाते हुए हरे भरे कृषि क्षेत्र पर पक्षी उतना अधिक नुकसान नहीं करेंगे जितना कि एक लम्बे चौड़े क्षेत्र में एक मात्र हरे खेत पर। प्रशिक्षित श्रमिकों के परिवार उसकी अधिक सेवा करेंगे और लाभ पहुंचायेंगे और वह स्वयं किसान

समुदाय का प्रशिक्षक बन जायेगा।

दुर्भाग्यवश प्रगतिशील किसानों ने अभी तक इस प्रकार छोटे किसानों के सहायक, प्रशिक्षक और पथ प्रदर्शक बनने का प्रयत्न नहीं किया है। इनमें से कुछ तो इस नये ज्ञान को श्रमिकों और छोटे किसानों तक पहुंचने ही नहीं देते क्योंकि वे उन्हें अपना विरोधी समझते हैं। वास्तव में छोटे किसानों में विरोध की कोई भावना नहीं है, यह तो केवल ईर्ष्या और द्वेष की भावना का प्रतीक है। दरअसल किसान शिक्षा की बेहतरीन परीक्षा तो इन छोटे किसानों और कृषि श्रमिकों में ही हो सकती है। नये से नये ज्ञान को उन तक पहुंचाने और समझाने का अत्यन्त उत्तम साधन हैं वार्तालाप तथा प्रयोगात्मक प्रदर्शन।

किसान महिलाओं को कृषि के उत्तम तरीकों और नई तकनीकों में प्रशिक्षण देने का एक प्रयोग महबूब नगर जिले के शादनगर विकास खण्ड में किया गया। इस काम के लिये "फ्रीडम फ्राम हंगर केम्पेन सोसायटी", ने भी १९७० में आंध्र महिला सभा को ८५,७०० रुपये का अनुदान दिया था। आंध्र महिला सभा ने तीन विज्ञान स्नातक महिलाओं को इस कार्य की संचालन व्यवस्था के लिए छांटा और उन्हें हैदराबाद के निकट, राजेन्द्र नगर के ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्र में, छः महीने के प्रशिक्षण कोर्स में प्रशिक्षण पाने के लिए भेज दिया। यह निश्चय किया गया कि इस विकास खण्ड के ५० ग्रामों में इन प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा महिला प्रशिक्षण का कार्य बारी-बारी से किया जायेगा। यह कार्य २५ गांवों में घर-घर का सर्वेक्षण करके आरम्भ किया गया। इसके साथ ही इस बात की भी जानकारी प्राप्त की गई कि गांवों में कौन-कौन सी कृषि प्रक्रियायें की जाती हैं जिनमें महिलाएं भी सहयोग देती हैं। साथ ही यह भी मालूम किया गया कि महिलाओं को खेती की नवीनतम तकनीकों में दिलचस्पी है या नहीं और है तो कहां तक। इसके बाद एक किसान महिला के खेत में

(१५ से ५० सेंट० तक क्षेत्र के खेत में) एक नमूने का प्रदर्शन लगाया, चार गृह वाटिकाएं लगाई गईं और ३० किसान महिलाओं की एक रेडियो गोष्ठी बनायी गई।

प्रशिक्षण के समाप्ति पर उन तीन महिला विज्ञान स्नातकों को आठ-आठ नौ-नौ गाँव को देख-रेख सौंप दी और इस प्रकार उन तीन में से प्रत्येक ने लगभग १५०० किसान परिवारों के प्रशिक्षण कार्य का उत्तरदायित्व सम्भाला। प्रत्येक महिला प्रशिक्षक की सहायता के लिए एक प्रदर्शन कर्त्ता भी था। इस प्रकार सितम्बर १९७१ तक, २१ प्रदर्शन खेत अधिक उपज देने वाले बीजों की खेती के प्रयोग के लिए बोये गये। खेती की प्रत्येक प्रक्रिया को स्तर वार प्रदर्शित किया गया। इस योजना में ६ फसलें, जिनमें धान की चार नई किस्में, एक अरण्ड की (रागी की) और एक-एक मकई ज्वार आदि की थीं, शामिल की गई। प्रयोग के दौरान मिट्टी की जांच, बीज की जाँच, पौध बनाना और पौध पनीरी लगाना, मिली जुली फसल पैदा करना, खाद के गड्ढे बनाना और फसल की सुरक्षा जैसी सभी बातों पर विशेष बल दिया गया। जो लोग गृह वाटिका लगाने के विषय में रुचि रखते थे, वे सिंचाई के छोटे-छोटे झारों के प्रयोग से बहुत प्रभावित हुए। तीनों महिला प्रशिक्षार्थी खेती के समस्याओं को, जैसे-जैसे वह सामने आती थीं, वहीं के वहीं प्रयोगात्मक रूप से वार्तालाप करके समझाती थीं।

प्रत्यक्ष वार्तालाप वर्गों में महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा अधिक रुचि लेती हैं। और इस प्रकार को चर्चा सूचना प्रसारण तथा समस्या निवारण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती हैं। इन चर्चा मण्डलों में बातचीत केवल खेती के विषय तक ही सीमित नहीं रहती थी, बल्कि पारिवारिक जीवन के अन्य पहलुओं पर भी जैसे पोषण विज्ञान, माता की देख-रेख, शिशु पालन तथा स्वास्थ्य और सफाई की बातें भी होती थीं। प्रत्येक मण्डल के उपयोग

के लिए चार्ट, फिलिप बुक, माडल और कार्य विवरण पत्रिका आदि दृश्य सामग्री दी गई थी। महिला प्रशिक्षक इन चर्चाओं में अधिकतर शामिल रहती थीं और उचित मार्गदर्शन देती थीं। स्थानीय फलों के अचार मुरब्बे बनाकर, सुरक्षित रखने का कार्यक्रम बहुत ही आकर्षक रहा। प्रशिक्षार्थियों को यह भी बताया जाता था कि वे अपने मतलब के यंत्र और अन्य सामग्री कहां से और कैसे प्राप्त कर सकते हैं।

लगभग दो वर्ष के अन्दर इस योजना के अन्तर्गत ३०,००० महिलाओं को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य था। अभी तक इस योजना का स्वागत बड़ा उत्साहवर्धक रहा है। जिन किसान महिलाओं की भूमि पर नमूने के खेत लगाये गये थे, उन्हें यह लाभ था कि कम से कम नमूने की एक फसल में काम लिये गये सारे निवेश तो निशुल्क मिले थे। दो फसलों का कार्यक्रम समाप्त होने पर प्रशिक्षार्थियों को पश्चिम गोदावरी जिले की शैक्षणिक यात्रा पर ले जाया जाता था।

फिर भी महिला प्रशिक्षकों से बातचीत करने पर इस योजना में कुछ कमियां बताई गईं। एक तो यह जान पड़ा कि अधिकतर ध्यान उन्हीं महिलाओं की ओर गया जिनके खुद के पास जमीन थी। ये महिलाएं प्रशिक्षकों के भाषणों और प्रदर्शनों में शामिल होती थीं और अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने खेतों पर नये ज्ञान का प्रयोग करती थीं। इसलिए वे कृषि—श्रमिक महिलाएं, जिनके पास अपनी निजी भूमि नहीं थीं, इस योजना का लाभ उठाने से वंचित रह जाती थी। यह ठीक है कि इनमें से कुछ तो प्रशिक्षक के भाषण आदि के समय पास आ खड़ी होती थी परन्तु उन्हें प्रशिक्षार्थी नहीं समझा जाता था। वास्तव में, खेतों पर काम करने के लिए और फसल की हर स्तर की देख-रेख के लिए तो यह किसान श्रमिक महिलाएं ही उत्तरदायी हैं, और इसलिए प्रदर्शन अथवा ज्ञान चर्चा की आवश्यकता तो उन्हें ही

अधिक हैं। फिर बहुत सारे भूमिदार तो इन्हीं महिला श्रमिकों को काम के लिए नियुक्त करते हैं। इसलिए ऐसी श्रमिक महिलाओं की सूची आसानी से बनाई जा सकती है। प्रशिक्षकों को ऐसी सूची बहुत सारे गाँव के लिए बना लेनी चाहिए। और इन कारोबारी महिलाओं को इक्ट्ठा करने का काम यदि उनके मालिक भूमिदारों को सौंपा जाये, तो बहुत ही अच्छा होगा। काम करने वाली महिलाओं का प्रशिक्षण उनके स्वयं के ही नहीं, उनसे काम करवाने वाले भूमिदारों के लिए ही हितकर होगा क्योंकि प्रशिक्षित महिला श्रमिक खेती की नई से नई तकनीक का उपयोग आसानी से कर सकेंगी। इस प्रकार नये ज्ञान को सीखना समझना दोनों के लिए सहयोग का साधन हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में एक और तजवीज बड़ी लाभकर हो सकती है। यदि भूमिदार शिक्षार्थी इस बात पर राजी हो जायें कि वे उपज बढ़ जाने पर अपने प्रशिक्षित श्रमिकों का वेतन बढ़ा देंगे, तो बहुत उत्तम होगा। ऐसा रिवाज़ श्रमिकों को प्रशिक्षण प्राप्त करने की और नमूनों के प्रयोगों को देखने, समझने की प्रेरणा देगा। अधिक उपज से होने वाले लाभ को श्रमिकों के साथ बांट कर खाने में भूमिदारों के प्रति उनमें श्रमिकों की श्रद्धा भी उत्पन्न करेगा।

प्रशिक्षित भूमिदारों की खेती के लेखे की किताबें या हिसाब-किताब अब भी प्रशिक्षक लोग ही लिखते हैं। इस काम के लिये उन्हें समय समय पर प्रशिक्षकों के पास जाना पड़ता है। इस काम को प्रशिक्षकों के वर्ग में जो भी शिक्षित व्यक्ति हो उसे सौंप देना चाहिये। इस तरकीब से प्रशिक्षार्थियों को व्यावसायिक साक्षरता का ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा मिलेगी और फार्म की यह लेखा पुस्तक ही उनके लिये प्रवेशिका का काम देगी।

ऐसा देखा गया है कि प्रशिक्षण के आरम्भ के अनुभव के बाद ही प्रशिक्षकों तथा क्षेत्रीय अधिकारियों के आपसी वार्तालाप

और विचारों के आदान-प्रदान की आवश्यकता पड़ी। हालांकि महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत लगभग १२ प्रतिशत ही है फिर भी कुछ शिक्षित अथवा साक्षर महिलाओं को साधारण वेतन लगभग २० रूपये मासिक देकर स्थानीय कार्यकर्त्ता नियुक्त करना संभव हो जाता है। इसके द्वारा शहरी महिला प्रशिक्षिकाओं और क्षेत्रीय अधिकारियों के बीच वार्तालाप सम्पर्क स्थापित हो सकता है। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को उन्नत खेती, परिवार कल्याण तथा शिशुपालन और पौष्टिक आहार आदि का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस योजना के इस पक्ष को अभी और अधिक व्यवस्था देने की आवश्यकता है। ये स्थानीय कार्यकर्त्ता शहरी कला अथवा विज्ञान के स्नातकों की अपेक्षा खेती के नये तरीकों और तकनीकों को जल्दी और बेहतर सीख सकेंगे।

वास्तव में, इस क्षेत्र के सर्वेक्षण से यह मालूम हुआ है कि खेती की दस प्रक्रियाओं में, ७ में महिलाएं सक्रीय भाग लेती हैं। सर्वेक्षण में यह भी मालूम हुआ कि भूमिदारों की महिलाओं में अधिक उपज देने वाली किस्मों की जानकारी प्राप्त करने की बड़ी इच्छा है और भूमिहीन हरिजन और पिछड़े वर्ग की कारोबारी महिलाएं पनीरी लगाने की कला के बारे में जानने और रेडियो द्वारा प्रसारण में बहुत रुचि रखती थीं। तीसरी बात यह भी मालूम हुई कि १४ और १९ वर्षीय वर्ग की महिलाएं नये ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक इच्छुक थीं। उस क्षेत्र में छोटी उम्र की शादी का रिवाज होने के कारण शादी के बाद लड़कियां ४ या ५ साल तक पीहर (बाप का घर) में रहती हैं। उसके बाद वे ससुराल में आती हैं। इस समय को नये ज्ञान, नये विचार और नई कलाओं के सीखने में लगाने के लिये वे बहुत ही इच्छुक होती हैं क्योंकि इस प्रकार वे समझदार और चतुर गृहणी बनकर ससुराल जायेंगी और आदर पायेंगी।

१४ से १९ वर्ष की आयु का यह समय पुरुषों और महिलाओं,

दोनों के लिए ही बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि आयु के इस मोड़ पर दोनों ही नई जानकारी और नई योग्यताओं को प्राप्त करने के लिये बड़े इच्छुक होते हैं। इसीलिए यह जरुरी है कि नौजवान किसानों की शिक्षा का प्रबन्ध अलग होना चाहिए हालांकि वैसे काम और वातावरण के विचार से युवा और बड़ी आयु वाले किसानों के उत्तरदायित्व में कोई विशेष भेद नहीं होता। दोनों ही खेती के काम में लगे रहते हैं और दोनों के लिए ही विशेष व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने के लिये कड़े और गम्भीर प्रशिक्षण की आवश्यकता हैं। फिर भी नवीन विचारधारा के अनुसार और उसके प्रभाव से १९ वर्ष की आयु तक के किसानों के साक्षर अथवा निरक्षर लड़कों और लड़कियों को आधुनिक युग के साथ मिलकर चलने की चाह अधिक होने के कारण, प्रशिक्षण का सुव्यवस्थित कार्यक्रम बहुत ही उपयोगी होगा। यदि इस आयु में इन्हें उत्तम खेती के नये तरीकों की और नई तकनीकों की जानकारी करा दी जाये तो वे खेती में परिवर्तन लाकर उसकी प्रगति करने में बड़े सफल होंगे।

भारतवर्ष में देहाती युवा किसानों के लिए विदेशों में फोर एच क्लबों के जैसे अनेक कार्यक्रम चलाये गये। पाश्चात्य देशों में कृषि कार्यक्रम बहुत ही आधुनिक उद्योग बन चुका है और इसीलिए वहां की देहाती युवा किसान संस्थाएं युवकों के प्रत्येक कार्यक्रम में उनके व्यक्तित्व के विकास का बहुत ध्यान रखती हैं और व्यक्तितव के विकास का यह लक्ष्य युवकों के लिए बहुत ही उपयोगी है। भारतवर्ष में, सामुदायिक विकास योजना के प्रथम चरण में, योजना के बहुमुखी ग्राम विकास के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए युवक व महिला मण्डल भी बनाये गये। परन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में बहु सूत्री विकास कार्यक्रम के परिणाम स्वरुप आधार भूत विकास कार्यंक्रम भी शैक्षिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अधिक प्रभाव होने के कारण तिरस्कृत हो जाते हैं। खेती की

अधिक उपज के आधार पर जब देश की आर्थिक स्थिति सुधर जाती है, तब ही मानव विकास के दूसरे पहलुओं पर दृष्टि जा सकती है।

किसानों के पुत्रों और पुत्रियों के लिए जो भी कार्यक्रम अथवा योजनाएं बनाई जायें उनका पहला मुख्य उद्देश्य उन युवक और युवतियों को खेती की नई से नई कला का ज्ञान देना होना चाहिए ताकि वे खेती के आधुनिकीकरण में सफल हो सकें। महात्मा गांधी द्वारा स्वाधीन भारत में चलाई गई बेसिक शिक्षा प्रणाली की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह था कि उसमें कृषि ज्ञान को बालकों के लिये मूल दस्तकारी नहीं बनाया गया और खेती के जो भी तरीके अपनाये गये, वे सब परम्परागत थे, आधुनिक नहीं। इसलिये वर्तमान के नौजवान को वह पाठ्यक्रम प्रभावित नहीं कर सका।

बहुत से विकासशील देशों में यह समस्या है कि नौजवान लोग गांवों से शहरों की ओर भागने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि अनेक और कारणों के साथ वे खेती का आधुनिक रूप नहीं पाते। यह स्वभाव या आदत स्कूल छोड़ने वाले नौजवानों में अधिक पाई जाती है, जिनके स्कूली पाठ्यक्रम का कृषि प्रधान समाज के वातावरण में से कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

भारत जैसे देश की शिक्षा प्रणाली में दो मूल सिद्धान्तों का समावेश अवश्य होना चाहिये। प्रथम तो यह बात है कि साधारण स्कूलों के पाठ्यक्रम में स्कूल के आस पास के चारों ओर के वातावरण के अनुसार कृषि विज्ञान के वैज्ञानिक और आर्थिक पहलू का अध्ययन अवश्य होना चाहिए। दूसरे, किसानों के बेटों के लिए, चाहे साधारण अध्ययनार्थ चाहे विशेष अध्ययनार्थ, खेती की सभी आधुनिकतम प्रक्रियाओं का अध्ययन अवश्य कराया जाये और माटी की जांच, बीज को परख, दवाई छिड़कने की मशीनों का प्रयोग, छोटे-छोटे यन्त्रों का उपयोग, मशीनी हल, हारवेस्टर और होज आदि यन्त्रों के प्रयोग का क्रियात्मक ज्ञान अवश्य दिया

जाये। बिक्री की व्यवस्था, क्रय विक्रय और भंडारण विज्ञान का अध्ययन भी अवश्य कराना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद उन्हें यह अनुभव होगा कि कृषि कोई परम्परागत पेट पालू धन्धा नहीं है जो पीढ़ी दर पीढ़ी उसी पुराने ढंग से चलता रहेगा। यह एक आधुनिक उद्योग है जिसमें गांव में रहते हुए भी आदमी नगरों के रहने वालों की तरह ही जोवन व्यतीत कर सकता है।

स्वतन्त्रता के बाद देश के देहातों में लगभग चारों ओर अनेक स्कूल बनाये गये हैं। किसानों के बच्चे हर रोज सुबह स्कूल आते हैं और शाम को घर वापिस चले जाते हैं। इन नौजवान बालकों के द्वारा उनके सँरक्षक किसानों में आधुनिक कृषि उद्योग के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने का अच्छा अवसर है। प्रत्येक स्कूल में एक योग्य प्रशिक्षित कृषि शिक्षक अवश्य होना चाहिए जो समाज और स्थानीय समुदाय की ओर अपना उत्तर-दायित्व निभा सके। केवल स्कूल की चारदीवारी में एक गृह वाटिका उगाने की अपेक्षा यह शिक्षक किसान संरक्षकों से तालमेल बिठाकर उनके खेतों पर नमूने के फार्म बना सकता हैं। इन नमूने के फार्मों द्वारा वह अपने विद्यार्थियों को भी वनस्पति विद्या के सिद्धान्तों का, माटी विज्ञान का, तथा स्थानीय भूगोल और अर्थ शास्त्र का ज्ञान दे सकता है और इस प्रकार घर और स्कूल के बीच की दूरी को मिटाने के लिये यह कार्यक्रम एक सफल कड़ी का काम देगा। यदि संरक्षक निरक्षर हों, जैसा कि अधिकतर होते हैं, तो ये विद्यार्थी हिसाब किताब का लेखा रख सकते हैं, सरकारी ब्यौरे भर सकते हैं और कृषि चक्र का नक्शा बना सकते हैं। ये सब कार्य विद्यालय में उसकी योग्यता का मापदंड बन सकते हैं, ऐसा होने पर पढ़ाई में लगाए हुए साल खोया गया समय नहीं होगा क्योंकि अब तो स्कूल उनकी दृष्टि में सारे समुदाय के लिए नये ज्ञान के प्रसार की ज्योति बन गया।

भारत में हम कुछ दिनों से सामुदायिक स्कूल की बात सुन रहे हैं। ऐसे देश में जहां कृषि ही मुख्य उद्योग हो, सामुदायिक स्कूल तो खेती के सम्बन्ध पर ही आधारित हो सकता है। अन्यथा ऐसे स्कूल केवल ग्रामीण जीवन सुधार के साधन के नाम पर लक्ष्य हीन ही रहेंगे। इस प्रकार का सम्पूर्ण और सर्वांगीण विकास तो खेती के पैदावार की प्रगति और उसके परिणाम स्वरूप सुधरी हुई अर्थ व्यवस्था पर ही आधारित रह सकता है। आज तो साधारणतया किसानों का यह विश्वास हैं कि खेती करना शिक्षित व्यक्ति का काम नहीं हैं, उसे तो नौकरी के लिए शहर जाना चाहिए। यह भ्रम तब ही मिट सकता है जब स्कूल के विद्यार्थियों को आरम्भ से ही खेती विज्ञान मुख्य विषय के रूप में पढ़ाया जाये और उनको इसी की पर्याप्त जानकरी करा दी जाये। इस प्रकार विद्यार्थी अपने संरक्षकों और कृषि विस्तार सेवा अधिकारियों के बीच सम्पर्क स्थापित करा सकेंगे।

इसके अतिरिक्त किसानों के वो बच्चे, जो स्कूल छोड़ चुके हैं अथवा स्कूल गये ही नहीं हैं, उनके लिये भी स्कूल के माध्यम से स्कूल में ही अथवा अनौपचारिक तरीकों से स्कूल के बाहर आधुनिक कृषि विज्ञान शिक्षण का प्रबन्ध होना जरूरी है। जापान में ऐसी दोनों प्रकार की संस्थाओं के बड़े उदाहरण हैं। जापान में शिक्षा मंत्रालय ने कृषि विज्ञान शिक्षण, वन विज्ञान शिक्षण, तथा मछली उद्योग शिक्षण की व्यवस्था ४६ महाविद्यालयों और १० छोटे विद्यालयों में की है। ५४० उच्च विद्यालयों और २२४ छोटे विद्यालयों में कृषि के १२७७ पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं।

स्कूल के बाहर के नौजवानों के लिये जापानी शिक्षा मंत्रालय द्वारा ५ भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते हैं :—

१. **कृषि व्यवस्था प्रशिक्षण खेत** : ये प्रशिक्षण कार्यक्रम उन लड़के लड़कियों के लिये हैं जो माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर चुके हों और किसान बनना चाहते हों। प्रशिक्षण दो वर्ष का होता

है और किसानी का काम क्रियात्मक रूप से करवाना इसका मुख्य उद्देश्य होता है। प्रशिक्षण के समय में सभी छात्रों को एक साथ एक ही कैम्प में रहना पड़ता है।

(२) **क्षेत्रीय खेती प्रबन्ध प्रशिक्षण केन्द्र :** ये प्रशिक्षण केन्द्र उन नवयुवकों (लड़के और लड़कियों) के लिए हैं जो उच्च माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर चुके हों या उसी स्तर की दूसरी शिक्षा पा चुके हों और पशुपालन अथवा बागवानी विज्ञान सीखना चाहते हों। यह प्रशिक्षण लगभग एक साल तक चलता है।

(३) **ग्रामीण युवक प्रशिक्षण केन्द्र :** इन केन्द्रों में लघु-कालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं और खाने पीने और रहने के साधन उपस्थित होते हैं।

(४) **ग्रामीण युवा संगठन प्रेरक केन्द्र :** कृषि प्रदान मुख्य जिलों में इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए १९६६ से अनेक ऐसे केन्द्र बनाये गये हैं जिनमें युवकों को प्रशिक्षण के लिए अथवा यों ही मेल मिलाप सम्पर्क साधना के लिए इक्ट्ठे होने की व्यवस्था है। वे वहीं ठहर भी सकते हैं और रोज आ जा भी सकते हैं।

(५) **कृषि और वन मंत्रालय का ग्रामीण युवकों के लिए केन्द्रीय प्रशिक्षण केन्द्र :** इस केन्द्र की व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य खेती प्रबन्धकों का प्रशिक्षण था। प्रशिक्षण का समय ३ वर्ष है। पाठ्यक्रम के विषय कृषि विज्ञान शिक्षण, खेतों पर क्रियात्मक कृषि कार्य और घरों पर भी कृषि विस्तार सेवा कार्य जो किसानों को, केवल अपने खेतों को सुधार लेने का नहीं बल्कि आस-पास के सभी जन समुदाय में, पथ प्रदर्शक का स्थान प्राप्त कर लेने की प्रेरणा है।

युवक प्रशिक्षण की ये सुविधाएं प्रत्येक क्षेत्र में कृषि विस्तार सेवा कार्य की व्यवस्था के अतिरिक्त हैं। इस व्यवस्था में जापानियों का लक्ष्य है कि प्रत्येक विद्यालय शिक्षण सत्र के बाद कृषि विज्ञान के प्रशिक्षण की सुविधा विद्यार्थियों को उपलब्ध होनी चाहिए।

कांगड़ा में कृषि प्रदर्शनी में आलू बोने की नई मशीन दिखाई जा रही है।
यह प्रदर्शनी भारत-जर्मनी कृषि योजना द्वारा लगाई गई।

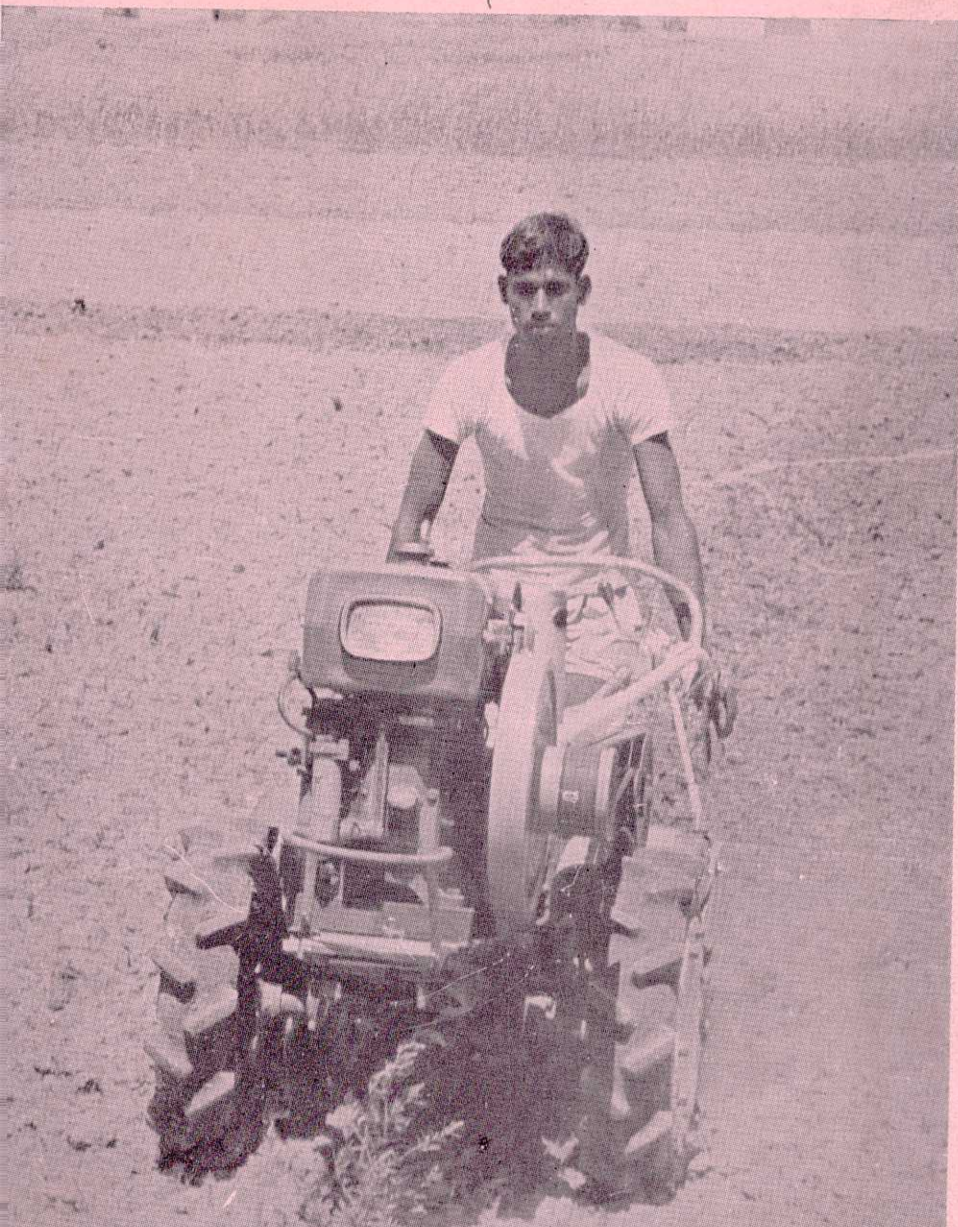

शक्ति द्वारा चालित कटाई की मशीन का इस्तेमाल सीखते हुए ।

इसका एक यह भी कारण है कि ये नौजवान किसान अपने खेतों पर काफी अवधि के लिए उपस्थित रह सकते हैं ।

भारतवर्ष में नवयुवकों को कृषि प्रशिक्षण देने के लिए केवल दो स्थानों पर व्यवस्था की गई है । एक तो विशाखापटनम में है जहाँ नौजवान किसानों की एक संस्था ने "फ्रीडम फ्रौम हंगर केम्पेन", नामक संस्था के सहयोग से युवा किसानों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र चलाया है और दूसरा लखनऊ साक्षरता निकेतन में है जहां अभी हाल में ही एक युवा किसान शिक्षण प्रतिष्ठान खोला गया है । इन दोनों ही स्थानों पर पहले संस्था की स्थापना के लिये भूमि प्राप्त की गई और फिर युवा किसानों को तीन से नौ महीने तक के लिए आमंत्रित किया गया परन्तु इन प्रतिष्ठानों का पड़ोस के किसानों से कोई सम्पर्क नहीं है ।

लखनऊ साक्षरता निकेतन का युवा किसान प्रशिक्षण प्रतिष्ठान अपना तरीका बदल रहा है । अब वह आस-पास के गांवों में किसानों के स्वयं के खेतों पर नमूने की खेती का प्रदर्शन करेंगे । दूसरे आस-पास के किसानों के उपयोग के लिए वे सस्ते किराये पर ट्रैक्टर आदि यंत्र देने की भी व्यवस्था कर रहे हैं । इस प्रकार यह प्रतिष्ठान आस-पास के किसानों से सम्पर्क साध रहा है, उनकी समस्याओं को समझना और उन्हें हल करने में किसानों की सहायता करना भी अब इनका लक्ष्य है ।

उदयपुर कृषि विश्वविद्यालय का यह प्रयास है कि दूर-दूर के पिछड़े गाँवों में जो किसान युवक हैं, उन्हें प्रेरणा देकर प्रशिक्षण के लिये बुलाया जाये ताकि वे प्रशिक्षण के बाद गांव वापिस जाकर प्रगतिशील किसान बन सकें और व्यवस्थित कार्यक्रम के लिए किसानों के संगठन बना सकें । ऐसे प्रशिक्षित विद्यार्थी कृषि आधुनिकीकरण का आन्दोलन चला सकेंगे ।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में परिस्थिति भिन्न-भिन्न है । भारत जैसे विशाल देश में युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम और उनके

व्यावहारिक प्रभाव में यह कमी रही है कि स्थानीय परिस्थितियों और वातावरण की उपेक्षा करके सरकारी तौर पर एक ही जैसा कार्यक्रम सारे देश के लिए अपनाया गया। सामुदायिक विकास योजना के साथ-साथ ५० के दशक में जो युवक संगठन का कार्यक्रम चलाया गया वह भी सरकारी आदेश तथा प्रबन्ध पर ही चला।

स्थानीय परिस्थितियाँ और वातावरण दोनों ही ऐसे आन्दोलन पर बहुत प्रभाव डालते हैं, इसका एक सुन्दर उदाहरण यह है कि कृषि क्षेत्र में अब ट्रैक्टर, हारवेस्टर आदि अनेक यंत्रों का प्रयोग बढ़ते जाने से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक नौजवान खेती के यंत्रों के प्रयोग और देख-रेख में प्रशिक्षण लेना चाहते हैं ताकि वे अपने खेतों की उपज बढ़ाने के लिए यंत्रों को काम में ले सकें और उनकी देख-रेख और सुधार स्वयं कर सकें और इस प्रकार वे स्वयं खेती के आधुनिक ढंग अपना सकें। इसके विपरीत गुजरात के आनन्द क्षेत्र में जहां एक प्रभावशाली दुग्ध योजना चल रही है, वहाँ के युवक पशुपालन और चारे की खेती के प्रशिक्षण में रुचि रखते हैं।

सारांश में दो बातें स्पष्ट हैं। यदि प्रशिक्षित युवक को अपने संरक्षकों की श्रद्धा और विश्वास प्राप्त करना है तो उसका प्रशिक्षण क्रियात्मक होना चाहिए ताकि वह स्वयं प्रत्यक्ष क्रिया करके यह दिखा सकें कि उसको सिखाई गयी पद्धति से खेती की उपज बढ़ सकती है और उसका प्रशिक्षण लाभदायक है। वह अपने परिवार की अर्थव्यवस्था को सुधार सकेगा, उस पर बोझ नहीं बनेगा। इसके लिए हमारे जैसे छोटे खेतों और अधिक जनसंख्या वाले देश में यह भी जरूरी है कि खेती के प्रशिक्षण के अतिरिक्त कुछ और सहायक धन्धों जैसे मुर्गी पालन तथा साग भाजी उद्योग का प्रशिक्षण भी साथ-साथ दिया जाये। इससे प्रशिक्षार्थी अपने काम का आरम्भ सुविधापूर्ण

तरीके से कर सकेंगे।

अभी जो दशा है वह तो कुछ ऐसी है कि जो युवक केन्द्रों पर प्रशिक्षण पाकर गांवों में वापिस जाते हैं, वे अकेले-अकेले बेसहारा दीपक की तरह से रहते हैं जो पुराने दिग्गज किसानों की एक फुंकार से बुझ सकते हैं। इसलिए प्रशिक्षण केन्द्रों को यह दायित्व संभालना चाहिए कि वे प्रशिक्षण की समाप्ति पर भी अपने प्रशिक्षार्थियों से उनके गांवों में ही सम्पर्क स्थापित रखें, उन्हें पत्रिकाएं भेजते रहें, उनकी समस्याओं को समझें और उनको हल करने में उनकी सहायता करें। समय-समय पर उनकी गोष्ठियों की व्यवस्था करें ताकि उन प्रशिक्षार्थियों को विचारों के आदान-प्रदान के अवसर मिल सकें। इससे उनमें एक संगठित समाज के सदस्य होने के नाते आत्म-विश्वास पैदा होगा।

यदि प्रशिक्षण केन्द्र में कृषि के सहायक किसी और धन्धे का भी प्रशिक्षण दिया गया है तो उस धन्धे से उपज की वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था भी उस प्रशिक्षण का अंश होनी चाहिए। यदि प्रशिक्षार्थी एक ही क्षेत्र के हों तो कभी-कभी उद्योग धन्धे के आधार पर उनके संगठनों की व्यवस्था करना भी लाभदायक होगा और सुविधा जनक भी। उपज की गई वस्तुओं की बिक्री का प्रबन्ध संगठन की एक समिति को सौंपा जा सकता है। इस प्रकार प्रशिक्षण केन्द्र का दायित्व केवल प्रशिक्षण देने का नहीं, इससे और बहुत अधिक है।

ऐसे प्रशिक्षार्थियों को उपयुक्त समय पर दूसरे प्रान्तों की शैक्षणिक यात्राओं पर ले जाना भी प्रशिक्षण केन्द्र का कर्त्तव्य होना चाहिएं। ये यात्राएं विशेष कर कृषि विद्यापीठों में तो होनी ही चाहिए। जो प्रशिक्षार्थी अपने फार्मों पर विशेष प्रगति दिखाएं और नये साधनों और तकनीकों को प्रयोग में लाकर उपज बढ़ाने में सफल हों, उनको तो पारितोषिक रूप में इन यात्राओं में सम्मिलित किया जाना चाहिए। अमरीकी और भारतीय किसानों

की अदल-बदल इतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी अपने ही देश के भिन्न-भिन्न भागों की ये यात्राएं । ऐसी सुविधाओं और अवसरों की उपलब्धि युवा किसानों को कृषि के आधुनिकीकरण की तीव्र प्रेरणा देगा और वे सफल समुदाय नेता बन सकेंगे ।

अध्याय-९

अनुसंधान और विश्वविद्यालयों की भूमिका

समाजशास्त्रियों की और अर्थ विशेषज्ञों तक की भी, खासतौर से यह आदत सी रही है कि वे खेतों में विकास सम्बन्धी प्रक्रिया में लगे लोगों पर, अर्थात् किसानों पर ऐतिहासिक विकासों के प्रभाव की अनदेखी कर दें। सम्भवत: एक तरह से यह अपरिहार्य है। अधिकांश आर्थिक और सामाजिक अध्ययनों के लिये लम्बे समय तक के आंकड़ों और अनुभवों के कष्टसाध्य संकलन की आवश्यकता होती है। जब तक इन्हें किसी पुस्तक या सिद्धान्त में सूत्र का रुप दिया जा सकता है, तब तक वह पुराना पड़ जाता है। हाल के वर्षों में, खासतौर से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, विज्ञान ने विकास की गति को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री अक्सर समय से पीछे पड़ जाते है।

यही कारण है कि भारतीय किसानों के सम्बन्ध में और संचार तथा प्रशिक्षण की समस्याओं के सम्बन्ध में, नये व्यवहारों को अपनाने की उसकी क्षमता के सम्बन्ध में, बहुत से सिद्धान्त अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम के समय से पहले के अनुभवों के प्रकाश में बताये गये थे। जब तक अधिक उपज देने वाले बीजों की किस्में, जिनमें मैं संकर बीज भी शामिल करना चाहूंगा, सामने नहीं आयीं, तब तक अध्ययनों के परिणाम उत्साहवर्धक नहीं थे। यद्यपि कुछ बरतानवी अर्थशास्त्री और प्रशासक, जिनका पूर्वी अफ्रीका का अपना अनुभव था, उन्नत कृषि प्राविधिकी के प्रचलन से पहिले ही प्रारम्भिक प्रशिक्षण अवस्था की अत्यधिक उपयोगिता पर बार बार बल देते थे। उन्होंने इस बात

की भी कोई परवाह नहीं की थी कि वे प्रशिक्षण का उत्पादन और वैज्ञानिक विकास से सम्बन्ध जोड़ें। उन्होंने नई प्राविधिकी को आरम्भ करने के परिणामस्वरूप होने वाली तीव्र गति से भी प्रशिक्षण का सम्बन्ध जोड़ने की कोई परवाह नहीं की।

परिणामस्वरूप, छटे दशक के दौरान भारत में, हमारे अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रमों ने अनुसंधान की अनदेखी कर दी। उन्होंने किसानों की पुरानी प्रविधि की सीमा के भीतर ही जो कुछ अधिक कुशलतापूर्वक किया जा सकता था उसी पर अक्सर बल दिया। इसलिये यह आश्चर्यजनक नहीं कि उस अवस्था में, प्रशिक्षण में और विस्तार में, जैसा कि उसे पुकारा जाता था, जितना प्रयास किया गया उसके अनुसार उसका परिणाम नहीं निकला। क्योंकि तब तक जनसंख्या वृद्धि इतनी विस्फोटक रूप में नहीं हुई थी, इसलिये विभिन्न देशों की विकास योजनाओं में खाद्य उत्पादन की समस्या को और सामान्य रुप से कृषि को, दूसरा स्थान ही दिया गया था। लेकिन किसानों के अधिकांश प्रशिक्षण और विस्तार कार्यक्रमों की उत्तेजनापूर्ण असफलता का केवल यही कारण नहीं था।

भारत के विभिन्न भागों में, पृथक पृथक योग्यताओं के वैज्ञानिकों के बीच बहुत सा कृषि सम्बन्धी अनुसंधान कार्य बाँटा गया था। उनका न तो कोई संयोजन ही था और न कोई केन्द्रीय उपक्रम ही। ये भारतीय प्रायोजनायें केन्द्र द्वारा प्रायोजित प्रायोजनायें तो कही जाती थीं, पर इनमें केन्द्र का सरोकार राज्यों को केवल धन देना भर ही था, राज्य के प्राविधिक कार्यकर्त्ताओं को, जो इन्हें क्रियान्वित करते थे, इनके विस्तृत क्रियान्वयन में मार्गदर्शन प्रदान करना नहीं। राज्यों के धन प्रदान करने के इस अनोखे तर्क ने वस्तुस्थिति को और भी बिगाड़ दिया था। भारतीय विकास प्रक्रिया के कुछ प्रेक्षकों के अनुसार समय समय पर (अर्थात् पाँचवे दशक के दौरान) बहुत सी प्रायोजनाओं को इसके

कारण न केवल गम्भीर धक्का ही लगा था वरन् केन्द्रीय सरकार को निरर्थक ही भारी व्यय भी करना पड़ा था।

परिणाम यह हुआ कि सातवें दशक के प्रारम्भ में राज्यों के नेता एकमत होकर केन्द्र द्वारा आयोजित प्रायोजनाओं की वृद्धि के विरुद्ध हो गये। तब यह निर्णय किया गया कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित प्रायोजनाओं की संख्या को कठोरता के साथ कम कर दिया जाय। इस निर्णय के सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि यह निर्णय करने से पहले इसके प्रभाव के सभी पहलुओं पर और अधिक सावधानी से विचार कर लेना चाहिये था। निर्णय करते समय कार्यक्रमों और उनके क्रियान्वयन के बीच कोई भेद नहीं रखा गया था। यह एक अन्धाधुन्ध निर्णय था। परिणाम स्वरुप कृषि अनुसंधान और विकास के बीच, जो पहिले ही से एक दुर्बल कड़ी थी, उसमें गम्भीर तनाव आ गया। दसियों वर्षों के लिये एक विचित्र देहातीपन ने भारतीय कृषि अनुसंधान को पाला मार दिया। बहुत से अनुसंघान केन्द्र, जो अक्सर राज्य सरकार के नियंत्रण में होते है पर जिन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् सहायता देती है, कूपमण्डूक की तरह व्यवहार करने लगे। उनमें अपने ही अनुसंधान परिणामों को सर्वोपरि महत्व देने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई। वे अपने द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों और अपने साथियों द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों में कोई समानता नहीं देख पाते थे। स्थिति यह हो गई कि वे विभेद प्रकाशन समितियों की बैठकों में कड़ा रुख अख्तियार करके किसी अन्य अनुसंधान केन्द्र द्वारा विकसित बीजों की उत्कृष्टता स्वीकार करने से इनकार कर देते थे। किसान पर इस सबका परिणाम यह हुआ कि कृषि अनुसंधान कर्त्ता उसके लिए दूर का व्यक्ति बन गया, ऐसा व्यक्ति जिसे अपने खुद के लड़ाई झगड़ों ही से सरोकार था और जो उनके लिये बहुत कम व्यावहारिक लाभ का था।

नये बीजों और अन्य नई प्रविधियों के शुरु होने के आंशिक कारण से पांचवें दशक के अन्त और छटे के आरम्भ में परिवर्तन आरम्भ हुआ। इस अवस्था में, कुछ नई प्रविधियों और बीजों की आकस्मिक सफलता ने कुछ अनुसंधान कर्त्ताओं के अत्यधिक आत्म सन्तोष और जड़ता की भावना को झकझोर दिया। यद्यपि आरम्भ में, सफलता को एक संयोग ही मानने की प्रवृत्ति रही तथापि शीघ्र ही यह माना जाने लगा कि वैज्ञानिक परिणाम केवल संयोग और चमत्कार से ही प्राप्त नहीं होते और उनके पीछे न केवल कठिन कार्य ही होता है वरन् जो बात इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है कि उनके पीछे समन्वित कार्य होता है।

इस अवस्था पर, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रम शुरु किये, जो एक प्रभावी उपाय सिद्ध हुआ। इन अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रमों में अनुसंधान कर्त्ता देश के अलग अलग भागों में काम करते है, लेकिन एक सी समस्याओं पर दलों के रूप में काम करते हैं। हर एक दल का सम्बन्ध एक विशिष्ट समस्यामूलक जिन्स से होता है। परिणामत: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और इसीलिये भारत सरकार को परोक्ष रुप से केन्द्र द्वारा प्रेरित प्रायोजनाओं में अपना योगदान देना पड़ता था। प्रायोजनाओं को एक दूसरे नाम से, अर्थात 'केन्द्रीय प्रायोजनाओं' के नाम से, पुकारा जाता था। पुराने अवरोधों पर परोक्ष रुप से काबू पा लिया गया था। धन की व्यवस्था अभी भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के माध्यम से केन्द्र द्वारा की जाती थी किन्तु अब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा दिशा निर्देश भी किया जाता था और काम व्यवस्थित ढंग से देश के विभिन्न भागों में उन लोगों द्वारा किया जाता था जो प्रशासनिक रुप से राज्य सरकारों या संस्थाओं या विश्वविद्यालयों के अधीन होते थे। निःसन्देह इसने गत कुछ वर्षों में इस देश में कृषि सम्बन्धी

अनुसंधान, खासतौर से क्षेत्र अनुसंधान की वृद्धि में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की।

कृषि अनुसंधान और किसानों के लिये प्रौढ़ शिक्षा के बीच सम्बन्ध सूत्र प्रदर्शित और स्थापित करने के लिये इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का देना आवश्यक है। आधुनिक प्रविधि और अनुसंधान के परिणामस्वरुप कृषि निःसन्देह एक अत्यन्त जटिल कारोबार हो गया है। अत्यन्त पिछड़ा हुआ किसान तक भी 'जादुईस्पर्श' को जानने लगा है। इसकी एक अनोखी मिसाल हाल ही में उस समय देखी गई जब यह पाया गया कि गुजरात के कुछ भागों में आदिवासी किसानों ने संकर-४ कपास को तुरन्त ही अपना लिया। संकर बीजों का तैयार करना एक जटिल प्रक्रिया है। यह श्रम साध्य तो है ही, इसके लिए कड़ी और सतत सावधानी की भी जरुरत होती है। बड़ौदा के निकट के आदिवासी किसानों को इसमें रुचि एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा हुई थी, जो वास्तव में बहुत ही अनौपचारिक था और प्रदर्शनों पर आधारित था। इस जटिल और श्रमसाध्य उपक्रम के प्रति जिस चीज ने उन्हें आकर्षित किया वह यह थी कि इसमें ६००० रुपये प्रति हैक्टेयर का निश्चित लाभ था। इसी कारण वे इसमें न केवल श्रम ही, वरन् बड़ी मात्रा से रासायनिक खाद प्राप्त करने के लिये रुपया भी लगाने को तैयार थे। संकर-४ लम्बे और कष्ट साध्य अनुसंधान का परिणाम था। इस अनुसंधान के पुरस्कार नये ज्ञान और उसके खेतों पर प्रयोग से कृषि की बाधाओं पर विजय प्राप्त करने की अनुभूति में निहित हैं।

यह सुझाव नहीं दिया जाता है कि प्रौढ़ किसान स्वयं अनुसंधान की व्यवस्था कर सकता है, चाहे वह अपने रास्ते में आने वाली उन समस्याओं के इर्द-गिर्द ही क्यों न हो, किन्तु इस बात का आश्वासन कि उसके पास ही एक केन्द्र है, एक प्रयोगशाला है, एक योग्य अनुसंधान कर्त्ताओं का दल है, जिसके पास वह अपनी

समस्याओं को ले जा सकता है और जो उसके खेत और उसके निष्कर्षों का प्रयोग उन समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए आधार रूप में कर सकते हैं, निश्चय ही उसे नये तथ्य खोजने की और उन्हें सीखने की प्रक्रिया में शामिल कर लेगा। इस प्रकार का व्यावहारिक और प्रयोजनीय अनुसंधान, राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय अनुसंधान संस्थान पर किये गये अधिक उच्चस्तरीय अनुसंधान की अपेक्षा, किसान को उसमें भाग लेने की भावना अधिक प्रदान करता है। वहां किसान मुख्य रूप से प्रक्रिया के अन्तिम छोर पर होता है। किन्तु अनुसंधान का अनुकूलन करने में वह न केवल एक प्रेक्षक होता है वरन् अनुसंधान प्रक्रिया के प्रारम्भिक बिन्दु पर भी हो सकता है और समय-समय पर अनुसंधान कर्त्ताओं को सहायता या सहयोग दे सकता है।

हाल के वर्षों में, भारत में अनुकूली अनुसंधान की विभिन्न युक्तियों के प्रयत्न किये गये हैं। इनमें से एक युक्ति यह थी कि विशेषज्ञों के दलों को जिला मुख्यालयों और कार्य के स्थानों पर भेजा गया जहाँ उन्होंने विस्तार कार्यकर्त्ताओं और किसानों के साथ चर्चा के दौरान इन समस्याओं के बारे में जाना। संयुक्त राष्ट्र की सहायता से हाल के वर्षों में ऐसे दल जो बनाये गये थे उन्हें 'क्षेत्र समस्या इकाइयां' कह के पुकारा गया है। एक दूसरी और अधिक विस्तृत युक्ति यह रही है कि कृषि विश्व-विद्यालयों के विभिन्न प्राविधिक विभागों से अनुसंधान वैज्ञानिकों को नामजद किया गया है और उन्हें अधिक उपज देने वाले बीजों के कार्यक्रम चलाने वाले जिलों में चल रहे किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का काम सौंप दिया गया है। यहां उन्हें कुछ उन्नत तरीकों के बारे में किसानों के खेतों में राष्ट्रीय प्रदर्शनों का आयोजन करना पड़ता है। फिर भी, यह प्रदर्शन अनुसंधान केन्द्रों और कृषि विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में सिद्ध निष्कर्षो पर आधारित होते हैं। किसानों के खेतों पर ऐसे प्रदर्शन आयोजित

करते समय इन विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक कुछ तथ्य एकत्रित करते हैं जिन्हें विश्वविद्यालयों में किये गये उच्च स्तरीय अनुसंधान के निष्कर्षों के अनुकूलन की आवश्यकता होती है। यह अनुकूलन किसानों के साथ प्रश्नोत्तर का जो सत्र होता है, उसका सीधा परिणाम है। ऐसे प्रश्नोत्तर के सत्रों का आयोजन उस फार्म पर आस-पास के किसानों की सभा बुलाकर किया जाता है जहां प्रदर्शन वास्तव में किया जाता है।

१९६९ में, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में, धान की फसल को महामारियों से बहुत क्षति हुई थी। इससे यह बात समझ में आई कि एक महामारी या सँक्रामक रोग की घटना घटने और उसकी सूचना अनुसंधान केन्द्रों तक पहुंचने के बीच इतना लम्बा समय लग जाता है कि महामारी का प्रसार रोकने के लिए समय रहते समस्या का विश्लेषण करना और प्रभावी प्राथमिक सहायता के उपायों की व्यवस्था करना सम्भव नहीं हो पाता। प्रभावी उपायों की व्यवस्था तभी हो सकी जब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् अपने छानबीन करने वालों के दल को भेज सकी। तब तक बहुत देर हो चुकी थी और बहुत कुछ क्षति पहले ही हो चुकी थी। इस अनुभव के प्रकाश में यह महसूस किया गया कि केन्द्रीय सरकार स्वयं अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्य-क्रम वाले जिलों में निगरानी दलों की तैनाती का खर्चा उठाये। ये निगरानी दल समस्याओं के उठते ही शीघ्रता से उनकी सूचना अनुसंधान केन्द्रों को दे सकेंगे और अनुसंधान कर्त्ताओं द्वारा सुझाये गये समाधानों को खण्डों की विस्तार सेवाओं के माध्यम से किसानों तक पहुंचा सकेंगे। पौधा संरक्षण की केन्द्रीय योजना में निगरानी दल की स्थापना अब एक नयी प्रायोजना है।

इन तीनों प्रयोगों की भी अपनी कुछ सीमायें रही हैं और इनमें भी कुछ कमियां पाई गई हैं जो उन्नत प्रबन्धों की आवश्यकता की ओर संकेत करती हैं। ये तीन युक्तियां इस अक्षमता

से पीड़ित हैं कि वे वैज्ञानिक, जो कि खेतों पर हैं और जिनके पास किसान अपनी समस्यायें ले जा सकते हैं, इस स्थिति में नहीं हैं कि वे तुरन्त ही जांच करना शुरू कर दें; क्योंकि उनके पास मौके के नजदीक किसी प्रकार के उपस्कर नहीं होते। जो कुछ भी वे कर सकते हैं वह यह है कि या तो वे खुद दौड़कर विश्वविद्यालय और अनुसंधान केन्द्र जा सकते हैं, या केन्द्र को समस्याओं के विवरण की सूचना शीघ्र ही भेज सकते हैं। फिर, यदि वे इस स्थिति में होते कि वे स्वयं कुछ प्रारम्भिक जांच कर सकते तो वे सम्भवतः अपेक्षाकृत सरल कारणों का पता लगा सकते जिसके लिये स्थानीय रूप से प्रयोग करने योग्य कोई औषधि मिल सकती और वह औषधि उनके द्वारा पीड़ितों को सुझाई जा सकती। यह बात उन आवश्यक उपायों के बारे में और भी अधिक सच है जिनसे खेत में डाली जाने वाली चीजों का इस्तेमाल करना या बचाव की कार्यवाही करना जरूरी हो। उदाहरण के लिये उस मिट्टी में, जिसमें जस्ते की कमी है, सही समय पर जस्ते का प्रयोग करवाया जा सकता है। या मिट्टी के विश्लेषण पर आधारित सूखी खेती वाले क्षेत्र में नमी बनाये रखने का सुनिश्चयन करने के लिए आवश्यक कदमों को उठाया जा सकता है। उस काम को, जिसमें रासायनिक खाद लगाने की जरूरत होती है, अक्सर प्रयोग शाला में विश्लेषण की शीघ्र ही आवश्यकता होती है। छानबीन परीक्षण और प्रदर्शन की पूरी-पूरी कार्यवाही का प्रभावी ढंग से प्रबन्ध, लगभग किसान की आंख के आगे स्थानीय प्रयोगशाला में किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसे परीक्षण, प्रदर्शन विश्लेषण और जांच पड़ताल के काम भारत-जर्मन और भारत-जापान प्रदर्शन केन्द्रों जैसे कुछ एकीकृत क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के मुख्यालयों पर करने के प्रयत्न किये गये हैं। आरम्भतः, भारत में जापानी प्रदर्शन केन्द्र एक छोटा सा नमूने का फार्म था। यहां आस-पास के किसान मध्यस्तर के जापानी विशेषज्ञों को अपनी

विधियों का प्रयोग करते हुये देखने के लिए आते थे ताकि वे भी उनका अनुसरण कर सकें। शुरू-शुरू में भारत जर्मन केन्द्रों में एक कर्मशाला थी, जिसमें कुछ क्षेत्रीय समस्याओं के हल करने और परिणामों का प्रदर्शन करने के लिए सुविधा प्रदान की गई थी। बाद को भारत-जापान और भारत-जर्मन दोनों ही केन्द्रों ने अपने विशेषज्ञों को आस-पास के गांवों में समस्याओं को पहचानने और अपनी खुद की प्रयोगशालाओं या कर्मशालाओं के उनके समाधान का उपाय खोजने के लिए भेजा। फिर भी जिलों में सरकार द्वारा स्थापित किसानों के प्रशिक्षण केन्द्रों की कोई ऐसी प्रयोगशाला या कर्मशाला नहीं जिसका कि नाम लिया जा सके और यदि कृषि विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक वहाँ जायें भी तो वे वहाँ कोई प्रयोग पूरा नहीं कर सकते।

इसलिए जिला स्तरीय प्रयोगशालाओं की स्थापना करना किसानों के मेले लगाने और अजायबघरों के रखरखाव करने से अधिक आवश्यक है। यह प्रयोगशाला यदि किसानों के प्रशिक्षण केन्द्रों पर हो तो काफिला अच्छा होगा। कुछ वर्ष पहले भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने चुनीदा गांवों में विज्ञान मन्दिरों की स्थापना के लिए खर्च दिया था। प्रत्येक विज्ञान मन्दिर से अपेक्षित था कि उसमें एक छोटा-सा अजायब घर, पोस्टरों का संकलन और कुछ परीक्षण के उपस्कर आदि हों। क्योंकि ये संस्थायें किसी उत्पादन या प्रशिक्षण कार्यक्रम से बिल्कुल सम्बद्ध नहीं थीं, इसलिए ये केवल जिज्ञासा का द्वीप बनी रहीं। परिवर्तित परिस्थितियों में एक विज्ञान मन्दिर क्षेत्रस्तरीय प्रयोगशाला का केन्द्र और प्रदर्शन तथा प्रयोग करने का स्थान हो सकते हैं। इस प्रकार के अनुकूलनीय अनुसंधान के केन्द्रों के उदाहरण जापान में पाये जा सकते हैं। जापान कई प्रीफेक्चरों में विभाजित है। प्रत्येक प्रीफेक्चर जनसंख्या और क्षेत्र के मामले में भारत के लगभग एक जिले के बराबर हैं। प्रीफेक्चर के मुख्यालय पर एक फार्म केन्द्र है, जिसमें दूसरी चीज के

साथ-साथ (१) किसानों के लिए खाद बीज और मशीनों की बिक्री तथा प्रदाय के लिए एक विभाग (२) किसानों को ऋण देने के लिए एक बैंक (३) किसी विशिष्ट विद्या में प्रशिक्षण के लिए नौजवान किसानों के हेतु कक्षाओं के कमरे और (४) (क) किसानों को बेचे गये या दिये गये खाद बीज आदि के पहले जांच करने (ख) किसानों द्वारा केन्द्रों को लाई गई समस्याओं का परीक्षण और लाभदायक ढंग से उनका उपयोग करने के उद्देश्य से समुचित रूप से योग्य वैज्ञानिकों और अनुसंधान कर्त्ताओं सहित एक प्रयोगशाला है। ये सभी यूनिटें एक साथ ही अहाते में हैं और किसानों को एक जगह से दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता। प्रीफेक्चर मुख्यालय पर किसानों का प्रशिक्षण केन्द्र अक्सर या तो सहकारी संगठन द्वारा चलाया जाता है या स्थानीय सरकार द्वारा। स्थानीय सरकार की यह प्रबल इच्छा रही है कि वह शेष को सहकारी संगठन के लिए छोड़ कर प्रयोगशाला और अनुसंधान वाले भाग को स्वयं सम्हाल लें। किन्तु यह देखा गया था कि वह केन्द्र अधिक लाभदायक था जिस पर प्रयोगशाला सहित सभी सुविधाएं सरकारी संगठन द्वारा प्रदान की गई थी।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रीफेक्चर स्तरीय प्रयोगशाला राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्रों के सम्पर्क में रहती है। इन राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्रों को दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा अधिक जटिल समस्यायें ध्यान देने और मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए भेजी जाती हैं। कभी-कभी आपस में विचार विनिमय भी होता है। किसान को यह विश्वास होता है कि वह अपनी समस्या सीधे प्रीफेक्चर प्रयोगशाला को ले जा सकेगा, जहां उसकी समस्याओं पर ध्यान दिया जायगा और शायद उसे तुरन्त ही कार्रवाही के लिए कोई उत्तर और सुझाव भी मिल जाय। इस प्रक्रिया में निःसन्देह वह स्वयं समस्याओं को पहचानना सीख सकता है और उन बातों को पकड़ सकता है जो असफलता या सफलता के लिए उत्तरदायी

होती है। निःसन्देह इन प्रीफेक्चर प्रयोगशालाओं से वैज्ञानिक साहित्य मिलता रहता है और इस प्रकार अनुसंधान कर्त्ता स्वयं अभिनवन पाठ्यक्रम प्राप्त करते रहते हैं। नौजवान किसानों का प्रशिक्षण इन अनुसंधान प्रयोगशालाओं से जुड़ा हुआ है।

किसानों को ऐसी एक प्रयोगशाला के होने से, जहाँ कि वे जा सके, जो फर्क पड़ता है वह एक छोटी तरह से गुजरात के आनन्द में प्रदर्शित होता है। केरा सरकारी दुग्ध उत्पादकों के संघ का वीर्य को एकत्रित करने के लिए केन्द्र है। इस केन्द्र में एक प्रयोगशाला है जहाँ वीर्य शीशियों में भरा जाता है और जहां उपलब्ध सूक्ष्म दर्शियों का प्रयोग वीर्य के विखण्डन का प्रेक्षण करने तथा अन्य संक्रियाओं के लिए किया जाता है। दीवारों पर कई पोस्टर लगे हैं जो यह बताते हैं कि कृत्रिम गर्भाधान कैसे किया जाता है। प्रयोगशाला के ठीक बाहर एक जगह सांड से वीर्य खींचा जाता है। इस प्रयोगशाला को देखने के लिए नियमित रुप से पुरुष और स्त्री किसानों के दल के दल आते है जो वीर्य के खींचने, उसका विश्लेषण करने और उसे बोतलों में भरने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को देख सकते हैं और इस बात से अपने आप को सन्तुष्ट कर सकते हैं कि वे भी अपने पशुओं के लिए कृत्रिम गर्भाधान के प्रयोग से कैसे लाभ उठा सकते हैं। ये शीशियां बाद को दूध इकट्ठा करने वाली गाड़ियों के साथ गांवों को भेज दी जाती हैं। प्रत्येक गांव में एक या दो व्यक्तियों को कृत्रिम गर्भाधान में प्रशिक्षण दे दिया गया है।

उनके घरों के पास ही प्रयोगशाला की उपस्थिति किसानों की जिज्ञासा को जागृत कर सकती है और उनकी व्यावहारिक कुशलताओं को विस्तृत कर सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ समस्याओं के पीछे प्रक्रियाओं के और प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं के ज्ञान को भी बढ़ा सकती हैं। इसलिए केरा सहकारी सोसाइटी को एक समुचित रुप से सुसज्जित प्रयोगशाला की आवश्यकता है,

जो न केवल कृत्रिम गर्भाधान के लिए ही हो वरन् आगे चल कर संकर प्रजनन और पशु आहार के विश्लेषण के लिए भी हो। जहां तक दूध की गुणावस्था और उसमें वसा की मात्रा के परीक्षण का सम्बन्ध है दूध इकट्ठा करने वाले केन्द्रों पर मौजूदा प्रबन्ध इस बात की झांकी प्रस्तुत कर देते हैं कि प्रयोगशाला के भीतर क्या होता है। खासतौर से प्रत्येक पुरुष या स्त्री किसान यह देख सकता है कि नमूना कैसे भरा जाता है, उसमें रासायनिक पदार्थ कैसे डाले जा सकते हैं, परिणामों को कैसे आंका जाता है और फिर उनकी सारणी कैसे बनाई जाती है। दुग्ध परीक्षण केन्द्रों में दस मिनटों का समय व्यतीत करना प्रारम्भिक प्रयोगशाला कार्य में एक शिक्षा प्रदान कर देता है, किन्तु यदि कैरा सहकारी संघ के केन्द्रों पर और अधिक नाजुक सुविधायें उपलब्ध कर दी जायं तो समस्याओं से पीड़ित किसानों को और भी अधिक जानकारी मिल सकेगी। कैरा सहकारी संघ में पहिले ही से एक पशु चिकित्सा और सेवा केन्द्र है। उनके पशु-चिकित्सकों को प्रयोगशाला में बहुत कुछ प्रयोग करने पड़ते हैं। यह प्रस्तावित क्षेत्र-स्तरीय प्रयोगशाला का दूसरा स्कन्ध हो सकता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि इन प्रयोग शालाओं को इस प्रकार से काम करना चाहिए जिस प्रकार से वे जापान के प्रीफेक्चरों और कुछ हद तक भारत के कुछ जिलों में करती है। उन्हें उत्पादन और विकास प्रक्रिया के एक भाग के रूप में काम करना चाहिए न कि केवल वैज्ञानिकों द्वारा, खेतों पर सामने आई समस्याओं के अध्ययन और प्रयोग के लिए, एक स्थान के रूप में। यह प्रयोजनीय अनुसंधान होना चाहिए। यह ऐसा अनुसंधान होना चाहिए जो उन समस्याओं से सम्बन्धित हो जो आस-पास के खेतों में पाई जाती है। इस अनुसंधान का व्यवहार किया जाना चाहिए और व्यवहार योग्य अनुसंधान ही किये जाने चाहिएं। केवल इसी प्रकार प्रयोगशालायें या विज्ञान मन्दिर मात्र तीर्थस्थल या मन्दिर नहीं रह

जायंगे और ऐसी परोपकारी संस्थाओं के रूप में परिवर्तित हो जायंगे जो किसानों के लिए व्यावहारिक मूल्य की होगी।

यही कारण है कि मत्स्य फार्म (अन्तरस्थलीय मत्स्यकी के लिए उन्नत बीज फार्म) जैसे केन्द्र उच्च स्तरीय अन्तरस्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान में कहीं अधिक अच्छी व्यावहारिक प्रयोग की अनुसंधान इकाइयाँ बन सकते हैं। क्योंकि उनके सीधे सामने किसानों और मछुओं द्वारा महसूस की गई समस्यायें आयेंगी इसलिए वे केवल शास्त्रीय मूल्य के प्रश्नों में नहीं उलझेंगे। कुछ कृषि उद्योग निगम अपनी कर्मशालाओं और प्रयोगशालाओं को मैकेनिकों और चालकों द्वारा प्रयोग किये जाने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तविकता में, मशीनों का इस्तेमाल करने वाले जब अपनी मशीनें मरम्मत के लिए लाते हैं, तब कर्मशालाएं जानकारी देने का सर्वोत्तम अवसर प्रदान करती हैं। हर मशीन की मरम्मत कराई जाती है। तब मालिक अपनी मशीन के बारे में कुछ न कुछ नई बात सीखता है। इस अवसर पर कर्मशाला का मालिक या कर्मशाला का फोरमैन चित्रों सहित कुछ साहित्य इस्तेमाल करने वाले के हाथ में थमा सकता है और इस्तेमाल करने वाला उसे अपने साथ अपने भविष्य के मार्गदर्शन के लिए ले जा सकता है। एक मरम्मत और रखरखाव केन्द्र किस प्रकार एक प्रभावशाली शिक्षण केन्द्र बन सकता है, इस बात का एक सर्वोत्तम उदाहरण कन्याकुमारी के पास भारत के पूर्वी तट पर स्थित मुहोम गांव की एक कर्मशाला है, जहां प्रतिदिन मछुये अपने अपने बाहरी इँजन (जो पुराने जमाने की कटमरन नौकाओं पर लगे होते हैं) के रख रखाव के लिए, सफाई करवाने और तेल वगैरह डलवाने के लिए लाते हैं। उस समय बाहरी इंजन सफाई के लिए मछुये के सामने ही लगभग पूरा खोल दिया जाता है। वह पुर्जों के बारे में कैसे काम करते हैं, इसके बारे में और उनकी टूट-फूट आदि के बारे में सीखता है। उसे इस वात का भी प्रशिक्षण दिया

जा सकता है कि इंजन कैसे चलते हैं, उनको कैसे इस्तेमाल करना चाहिए और उनकी सफाई मरम्मत आदि कैसे की जानी चाहिए। मुहोम के इन मछुओं में से अधिकांश निरक्षर और अज्ञानी होते हैं। उनके सामने वाली मशीन उन्हें जानकार बना देती है। वह उन्हें साक्षर बनने का अवसर भी प्रदान करती है क्योंकि चित्रों से, शब्दों, आकृतियों और फिर अक्षरों को सीख कर साक्षर बनना उनके लिए अधिक स्वाभाविक प्रक्रिया है, बनिस्पत इसके कि वे वर्ण माला से प्रारम्भ करें और शब्दों और वाक्यों के द्वारा साक्षर बने, जिनकी उनके काम में कोई व्यावहारिक कीमत नहीं है।

इस बात पर जोर देने के लिए काफी कहा जा चुका है कि भारत में जिलास्तरोय प्रयोगशालाओं का होना कितना महत्वपूर्ण है। प्रत्येक प्रयोगशाला का गठन उनके जिलों के किसानों, मछुओं, ग्वालों आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होना चाहिए और प्रत्येक प्रयोगशाला को उस खास जिले में आयोजित विशिष्ट विकास कार्यक्रमों से अपना संकेत लेना चाहिए। यह स्पष्ट है कि हर साल कुछ उपस्करों को बदलना पड़ेगा और नये उपस्कर प्राप्त करने होंगे। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि इस प्रकार उपस्करों को इकट्ठा करके प्रयोगशाला को एक मृत अजायब घर न बना दिया जाय। इन प्रयोगशालाओं को किसानों द्वारा देखा और इनका प्रयोग उन अनुसंधान कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया जाय जो किसानों के कार्य के सम्पर्क में हैं, और इसलिए विस्तार के लोंगों और अनुदेशकों के सम्पर्क में भी है, जो कि स्वयं किसानों की जितनी ही समस्यायें उनके पास लायेंगे। प्रयोगशाला में काम चलाने का समन्वय विकास कार्यक्रम के काम चलाने तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम, खेती में डालीं जाने वाली चीजें जैसे खाद बीज आदि देने के कार्यक्रम और किसानों को सेवायें प्रदान करने के कार्यक्रम के काम चलाने से किया जाना चाहिए। इन चारों प्रकार के काम

करने वालों को साथ मिल कर काम करना होगा और एक महीने के कार्यक्रम की योजना पहिले ही से बनानी होगी। ये एक दूसरे से कट कर अपना काम अलग-अलग अकेले नहीं कर सकते।

राज्य स्तरीय या क्षेत्र स्तरीय प्रयोगशाला को विश्वविद्यालय से सम्बन्धित विभाग से अपना सम्बन्ध बनाये रखना होगा। इसमें यह भी होगा कि स्थानीय प्रयोगशालाओं के कार्यकारी व्यक्तियों को और वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं को अपना ज्ञान पक्का करने और उसे फिर से नया बनाने के लिए अक्सर विश्वविद्यालय की अनुसंधान प्रयोगशालाओं को देखने जाना पड़े। क्योंकि ये कार्यकर्त्ता और व्यावहारिक अनुसंधान प्रयोगशालायें केवल लिखा-पढ़ी का काम करने वाले कार्यकर्त्ता ही नही हैं। वरन् ऐसे कार्यकर्त्ता हैं जिनका समस्याओं का सीधा और ताजा अनुमान है। इसलिए ये विश्वविद्यालय केन्द्र की प्रयोगशाला के कार्यकर्त्ताओं के अनुभव को बढ़ा सकते हैं। विश्वविद्यालय के अनुसंधान कार्यकर्त्ता आदर्श परिस्थितियों में ही काम करने के अभ्यस्त होते हैं। जिला स्तरीय अनुसंधान कार्यकर्ताओं के साथ उनका विचार विनिमय उन्हें सही रास्ते पर ले आयेगा।

केवल क्षेत्र समस्या अनुसंधान केन्द्रों के अनुसंधान कार्यकर्त्ताओं ही को विश्वविद्यालय देखने जाने की सुविधा नहीं मिलनी चाहिए। किसानों को खुद को यह सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। ये किसान वर्गों या दलों में अपनी खुद की आँखों से खेतों पर नवीनतम विकासों और प्रदर्शन को देखने जा सकते हैं। कुछ अधिक उपज देने वाले गेहूं के बीज जब शुरू-शुरू में सामने आये थे तब विश्वविद्यालयों के अनुसार फार्मो पर और भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पर, दर्शकों की भीड़ का ऐसा ताँता लग गया था कि उन्हें नियन्त्रण में रख पाना कठिन हो गया था। वास्तव में वे अक्सर प्रदर्शन फार्मों में दौड़ पड़ते थे कि बीज को उठा कर अपने घर ले जायें और वहाँ

वे उससे अपना खुद का प्रयोग करके अजमायें। विश्वविद्यालयों में किसानों और दर्शकों को आने देने में यह खतरा तो निश्चय रूप से है। परन्तु अनुसंधान केन्द्रों और वैज्ञानिकों के काम करने की जगहों पर इस प्रकार का देखने आना किसानों का धन्धा करने वालों के लिए, जो कि अपनी समस्याओं का कभी-कभी प्रामाणिक हल पाना चाहते हैं, नितान्त आवश्यक है। इन किसानों के वर्गों को उन बीजों के बारे में, जो अभी पूरी तरह परीक्षित नहीं हो पाये, समय से पूर्व ही इस्तेमाल करने के खतरे के सम्बन्ध में विश्वास में लिया जा सकता है। अक्सर भारतीय कृषि अनुसंधान पूसा और पन्तनगर विश्वविद्यालय आदि पर वे न केवल नवीनतम तरीकों के चित्रों और प्रदर्शनों को ही देख सकते हैं वरन् प्रश्न भी पूछ सकते हैं और अपनी निराशा और शिकायत की भावना भी व्यक्त कर सकते हैं। फिर भी, इन प्रश्नोत्तर सत्रों का अधिकांश किसानों को लाभदायक नहीं रहा। इसका कारण यह है कि किसान मेले और सेमीनार में, दोनों ही रूपों में--अर्थात् ज्ञान को तलाश करने वाले के रूप में और उनके लिए आवश्यक आदान प्रदान के बारे में अधिक प्रश्न पूछता है क्योंकि वह प्रदर्शनी के स्टालों में प्रदर्शित उन्नत तौर तरीकों को अजमाने और अपनाने के लिए प्रेरित हो जाता है। दुर्भाग्य से आदान के संगठनों और अभिकरणों का प्रतिनिधित्व निम्न स्तर के कर्मचारियों द्वारा होता है जो इन प्रश्नों का उत्तर किसानों को सन्तोषजनक रूप से देने की स्थिति में नहीं होते। प्रश्न करने वाला किसान शिक्षा के सत्र और प्रदर्शनों का आयोजन करने वालों और उन लोगों के बीच कोई अन्तर नहीं कर पाता जो उसके प्रतिदिन के अनुभव में उसे ऋण, खाद, बीज आदि खेती के आदान तथा अन्य सुविधायें देने के लिए उत्तरदायी होते हैं, जिनके आधार पर वह उत्पादन का अपना खुद का कार्यक्रम बना सकता है। यह इन सत्रों पर किसानों की शिक्षा के लिए किये

गये प्रबन्धों की अपूर्णता ही प्रदर्शित करता है।

किसान एक मिश्रित वस्तु होता है। उसके लिए यह सम्भव नहीं कि वह आदानों के प्रयोगकर्त्ता के रूप में अपने व्यक्तित्व को अपने उस व्यक्तित्व से पृथक् कर सके जो नई जानकारी की तलाश करने वाला और कई कुशलताओं को सीखने वाला है। उसे उन कुशलताओं का इस्तेमाल करने के बारे में सोचना पड़ता है। यह सच है कि किसी दर्शक को जो शिकायत हो वह उस दर्शक के अनुसार अनोखी ही हो और सबके सम्बन्ध में लागू न हो सकती हो। यह भी सच है कि क्योंकि सेमीनारों में ये प्रश्न बहुत अधिक मात्रा में छाये रहते हैं इसलिए किसानों का ध्यान उन्नत किसानी के तौर तरीकों और सरकार तथा विभिन्न अन्य अभिकरणों द्वारा तैयार किये गये प्रबन्ध के पाठों से हट जाता है।

इसलिए एक सन्तुलन कायम किया जाना चाहिए। पहले तो इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि केवल उन्हीं व्यवहारों और कुशलताओं का प्रदर्शन किया जाय जिनका समर्थन स्थानीय प्रशासन या स्थानीय सहकारिता अभिकरण कर सकने की स्थिति में हों। यह बात उन छोटे और सुगठित क्षेत्रों के लिए, जिनकी समस्यायें और कार्यवाही के कार्यक्रम एक ही हों, ऐसे मेले आयोजित करने के विचार की ओर ले जाती है। पूसा कृषि संस्थान, दिल्ली, में लगा ऐसा ही एक मेला मुख्य व्यावहारिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने में मुश्किल से ही सफल होगा क्योंकि व्यावहारिक समस्यायें स्थानीय, विशिष्ट और छोटे समरूप क्षेत्रों पर लागू होने वाली होती है। इसलिए इस प्रकार के मेले और सेमीनार ऐसे लघुतर क्षेत्रों के केन्द्रों पर आयोजित किये जाने चाहिए जहां पर स्थानीय किसान आ सकें। उन किसानों के लिए जिनकी समझ और कार्य क्षमता अपेक्षित अधिक है उच्च-स्तर के सेमीनार कृषि विश्वविद्यालयों पर आयोजित किये जा सकते हैं, परन्तु उनमें सर्वसाधारण के लिए प्रश्नोत्तर के सत्रों को

हतोत्साहित किया जाना चाहिए बल्कि इसकी जगह कुछ पृष्ठ-भूमि सामग्री का आयोजन करके और पहले से वितरण करके दर्शकों को उपलब्ध करा देना चाहिए जिससे कि विचार विमर्श में वे अपना योगदान उसी प्रकार से दे सकें जिस प्रकार अर्थ-शास्त्री, सस्य विज्ञानी आदि दे सकते हैं।

प्रदर्शनियाँ, क्षेत्र दिवस और अजायबघर आदि किसानों के प्रशिक्षण के लिए अनुसंधान करने वाले लोगों के योगदान को उजागर करने में सक्षम होने चाहिए। छटे दशक के प्रारम्भ में भी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा, जिसके कि डाक्टर बी० पी० पाल उस समय निदेशक थे, विस्तार के माध्यम से किसानों के प्रशिक्षण के प्रयास किये गये थे। उन्होंने इन प्रयोगों का विवरण दिया है, जिसे उन्होंने आस-पास के कुछ गाँवों में "धरती की काया पलट" के नाम से पुकारा है। इसके बाद सामुदायिक विकास ने कृषि अनुसंधान को, व्यवहारतः एक तरफ छोड़ दिया, क्योंकि इसके दर्शन ने गांव के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास प्राप्त करने की झलक देखी थी। बाद के छटे और सातवें दशक के प्रारम्भ में, जैसा कि इस अध्याय के शुरू में बताया गया है, अनुसंधान फिर आगे आ गया।

यह वह समय था जब भारत सरकार ने, कम से कम प्रत्येक राज्य में, उच्चस्तरीय कृषि विश्वविद्यालय स्थापित करने की नीति अपनाई थी। एक तरह से यह नीति समेकन और समन्वय के प्रयासों के विपरीत थी जिसकी कि कल्पना अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान प्रायोजनाओं ने की थी। विश्वविद्यालयों का सरोकार निःसन्देह मुख्यतः शिक्षा में था, लेकिन उनका सम्पर्क संयुक्त राज्य अमरीका के भूमि अनुदान कालेजों और विश्व-विद्यालयों से होने के कारण उनका मोह विस्तार कार्य के लिए भी था। अमरीकी विशेषज्ञ, जो भारत के कृषि विश्वविद्यालयों में आये, कभी भी दोनों देशों के इतिहास और समाज शास्त्र के बीच

विषमताओं को नहीं देख सके। इसलिए वे भारत के कृषि विश्वविद्यालयों से, विस्तार और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उनकी रुचि के अभाव के कारण, निराश ही रहे। फोर्ड फाउण्डेशन ने, जिसका मुख्यालय संयुक्त राज्य अमरीका में है, एक दूसरी तरह का प्रयोग किया अर्थात् विशेषज्ञों द्वारा और जनता की सहायता से देहाती क्षेत्रों में विस्तार का प्रयोग किया। समाकलित क्षेत्र विकास प्रायोजना ने उच्च योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा चुनींदा क्षेत्रों में प्रशिक्षण और विस्तार की असीम सम्भावनायें प्रदर्शित कीं।

इसलिए, क्या इसका अर्थ यह है कि किसानों के प्रशिक्षण और विस्तार में कृषि विश्वविद्यालयों की कोई भूमिका नहीं थी ? निःसन्देह यह बात शीघ्र ही इस तथ्य द्वारा झुठला दी गई कि भारत में गेहूं के नये मेक्सीकन आधारित बीजों का अभूतपूर्व विस्तार उन प्रदर्शनों के कारण हुआ था जो भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान और लुधियाना कृषि विश्वविद्यालय के आसपास निजी फार्मों की जमीनों में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किये गये थे। यही बात कुछ सीमा तक थोड़े समय बाद, पंत नगर के विश्वविद्यालय के बारे में भी सच साबित हुई। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया था कि अपने आसपास के क्षेत्र में कृषि विश्वविद्यालय और अनुसंधान केन्द्र, दोनों ही विस्तार और प्रशिक्षण कार्यँक्रम का कार्य भार उठा सकते थे और इससे उन्हें खुद भी लाभ पहुंच सकता था। अन्तिम शब्द महत्वपूर्ण हैं। विचार अपने खुद के लाभ का था। दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत किसानों के खेतों में प्रदर्शन का वास्तव में अर्थ था कृषि अनुसंधान केन्द्रों और कृषि विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं का विस्तार। यह न तो प्रशिक्षण कार्यक्रम ही था और न विस्तार कार्यक्रम ही। वैसे भारतीय अनुसंधान संस्थान में एक विस्तार विभाग है। कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में भी विस्तार विभाग हैं। लेकिन यदि सच कहा जाय तो ये विस्तार के रीति विधान को पढ़ाने के लिए विभाग हैं। ये,

जिसे मैंने प्रयोगशालाओं के कार्य का विस्तार कहा है उसे छोड़ कर, किसानों के बीच वास्तविक विस्तार और प्रशिक्षण कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

मैं सोचता हूं कि सबसे पहले लुधियाना के पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में अभिवृत्ति में परिवर्तन आया, जहाँ १९६४ में, पंजाब के जिलों में विस्तार कार्य के लिए उत्तरदायित्व में हिस्सा बंटाने का निश्चय किया गया। सरकार और उपकुलपति के बीच सम्पर्कों के कारण विश्वविद्यालय पँजाब सरकार के सहकार पर भरोसा कर सका था। अपनाई गई क्रियाविधि यह थी कि विश्वविद्यालय से चुनींदा वैज्ञानिकों को जिले में नियुक्त किया जाता था और नई प्रविधि तथा बीजों को अपनाने में, किसानों का मार्ग दर्शन करने के लिए उत्तरदायी बना दिया जाता था। ऐसे समय जब नये बीजों ने पंजाब के किसानों को अप्रत्याशित ऊंची उपज और आमदनी लाना शुरू कर दिया था, कृषि वैज्ञानिकों का अपनी प्रयोगशाला की संकीर्ण चारदीवारियों को छोड़ने और व्यक्तिगत किसानों के खेतों पर जाने के लिए तैयार होना बहुत ही समयोचित और उपयुक्त था।

पंजाब का प्रयोग कठिनाइयों से रहित नहीं था और पंजाब सरकार के जिला कृषि कर्मचारियों तथा जिलों में नियुक्त कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के बीच मतभेदों की कई मिसालें प्रकाश में आईं। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो विभाग में काम करने वाले सस्यवैज्ञानिकों द्वारा, जो अपने आपको विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों से कुछ कम वैज्ञानिक न समझने के अभ्यस्त हो गये थे, वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये परामर्श की वैज्ञानिक वैधता तक को चुनौती दे दी गई। यह समझ में आने योग्य बात थी। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे ही वैसे परिस्थिति काम करने के लिए सामान्य स्तर पर ले आई गई। मेरे ख्याल से यह आंशिक रुप से इस कारण था कि पंजाब में, नई प्रविधि के उपक्रम के

बिल्कुल शुरू ही से, किसानों को अनौपचारिक प्रशिक्षण जब प्रदान किया गया था तब उस समय मिथ्या भय उत्पन्न करमे वाले आदानों को जैसे रासायनिक खादों और कीटनाशकों को तथा कुछ नये बीजों को सावधानी के साथ वितरित किया जाता था। इनकी व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व अधिकतर विभागों और अभिकरणों पर पड़ा था। लेकिन बीजों के लिए उन्हें स्वाभाविक रुप से विश्वविद्यालय पर निर्भर रहना पड़ता था जो कि आनुवांशिक भण्डार तथा प्रजनक बीज तैयार करता था। बीजों के बिल्कुल नया होने के कारण भी, उस समय उनके विस्तृत ग्रहण के लिए अधिक ब्यौरे वार मार्ग दर्शन की आवश्यकता थी और सम्भावित प्रयोगकर्त्ताओं द्वारा पूछे गये कई प्रश्नों का उत्तर आदि देना जरूरी था। इस प्रकार मिले-जुले प्रदर्शन की शुरूआत की गई जिसमें चार्टों को दिखाने, खाद बीज आदि जैसे आदानों का प्रदान करने और वैज्ञानिकों द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने की व्यवस्था संयुक्त रूप से लुधियाना विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों और पंजाब सरकार के अधिकारियों द्वारा की जाती थी। यह दावा नहीं किया जा सकता कि यह निश्चित रुप से आदर्श प्रबन्ध तब से बराबर जारी है। वास्तव में, पंजाब में जो कुछ सचमुच हो रहा है, उसकी सिलसिलेवार रिपोर्ट संकलित करना कठिन है। लेकिन क्योंकि पंजाब का किसान हमेशा से ही पहल करने वाला आदमी रहा है और यह जानता है कि कहां से सामान और सूचना प्राप्त की जा सकती है, इसलिए वह कभी घाटे में नही रहा।

इस प्रकार की निडरता, भारत के अन्य भागों में नहीं दिखाई गई और इसलिए अनुसंधान और किसानों के बीच की कड़ी अर्थात् प्रशिक्षण एक लम्बे समय के लिए, अर्थात् तब तक के लिए जब तक कि भारत सरकार ने मैदान में आने का निश्चय नहीं किया, दुर्बल ही रही। इस दिशा में प्रयास, समाकलित क्षेत्र विकास प्रायोजना के जिले पुकारे जाने वाले कुछ जिलों में, पहले किये गये

थे। यहां फोर्ड फाउण्डेशन के विशेषज्ञ निकटतम कृषि विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञों के साथ अपने व्यक्तिगत सम्पर्कों के परिणाम स्वरुप कुछ सीमा तक उन विश्वविद्यालयों के अनुसंधान वैज्ञानिकों को विकास कार्य और प्रशिक्षण तथा प्रसार में लगा सके थे। ऐसे एक प्रयोग का विवरण फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में दिया गया है। यह रिपोर्ट तीन जिलों के अनुभवों पर आधारित है। इनमें से एक में, अर्थात् आन्ध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले में, आन्ध्र प्रदेश की सरकार द्वारा मार्च १९६८ में, आयोजित एक सेमिनार द्वारा विकास की बाधाओं को ओर इशारा किया गया था। इन बाधाओं में पश्चिम गोदावरी जिले की समाकलित कृषि विकास प्रायोजना के कर्मचारियों और आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिकों के कार्यो में समन्वय का बहुत अधिक अभाव था। वास्तव में, इस समस्या की पहचान हो जाने के बाद भी वर्षों तक इस पर वाद विवाद होता रहा और कहीं १९७१ में जाकर भारत सरकार की ओर से, समन्वित कार्यकरण पर जोर देने के लिए, आन्ध्र प्रदेश कृषि विभाग के सम्बन्धित अधिकारियों और आन्ध्र प्रदेश विश्वविद्यालय के मुख्य अनुसंधान अधिकारी (चावल) की संयुक्त बैठक बुलानी पड़ी थी। समन्वित कार्यकरण न केवल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में ही आवश्यक है वरन् समूची विकास प्रक्रिया में भी जरुरी है, जिसमें किसान का प्रशिक्षण केवल एक भाग है। उदाहरण के लिए, यह कहा गया था कि विश्वविद्यालय ज्यादा उपज देने वाले धान की एक खास किस्म के बीज, जिसे किसान खरीफ की मौसम में विश्वास के साथ उगा सकते थे, नहीं दे सका था। लेकिन ब्यौरेवार चर्चा में यह बात खुली कि कृषि विभाग के अफसरों, खासतौर से राज्यों की पौधा संरक्षण यूनिट के अफसरों, की तरफ से विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र द्वारा प्रस्तुत किस्मों के समावेश का खतरा उठाने के विरुद्ध एक अनुदार प्रतिरोध

था। खतरे के विरुद्ध सावधानी समझ में आती है। इसके साथ ही नई किस्मों के प्रवेश के प्रारम्भिक अनुभव ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि राज्य सरकारों के कुछ विशेषज्ञों की ओर से की गई अत्यधिक रुढ़िवादिता ने उन राज्य विशेषज्ञों को विकास की दौड़ में वहुत पीछे डाल दिया है। १९६४-६५ की एक कहानी है जिस पर आप विश्वास कीजिये या न कीजिये। एक राज्य सरकार को मैक्सीकन बीजों का एक वैगन आजमाने और बढ़ाने के लिए भेजा गया था। उस राज्य सरकार ने वह पूरा का पूरा वैगन ज्यों का त्यों भारत सरकार को वापिस कर दिया। यद्यपि वह राज्य अब गेहूं की खेती में प्रगति कर गया है तथापि उसने दो बहुमूल्य वर्ष खो दिये।

गोदावरी जिले की समाकलित कृषि विकास प्रायोजना के अध्ययन ने एक दूसरी रुकावट का भी उद्घाटन किया था। फार्म स्तर पर नई प्रविधि प्रदान करने के लिए कोई पद्धति नहीं थी। कर्मचारियों को और उनके माध्यम से किसानों को नियमित सूचना भेजने का कोई प्रबन्ध नहीं था। नदी के मुहाने की विरल भूमि के क्षेत्र में, जल नियन्त्रण जैसे मामलों को, जिन्हें अत्यन्त ऊंचो चतुराई के निर्देशों की आवश्यकता थीं, असंनुधान कर्त्ताओं द्वारा ही पहुंचाये जा सकते थे। किन्तु आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय में इस काम के लिए कोई पर्याप्त अनुसंधान प्रबन्ध नहीं थे। १९६९ और ७१ में हुई बातचीतों के परिणाम स्वरुप, आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय नई प्रविधि पर अनुकूली अनुसंधान में राज्य सरकार के विस्तार कर्मचारियों की सहायता करने के लिए, अपने कर्मचारियों के पाँच सदस्य पश्चिम गोदावरी राज्य में नियुक्त करने के लिए सहमत हो गया। वे प्रायोजना अधिकारी के प्रति उत्तरदायी बना दिये गये। बाद की एक बातचीत में इस बात पर भी सहमति हो गई कि विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्त्ता राज्य-स्तर के कृषि अधिकारियों के साथ ग्रुप बैठकों की एक श्रृंखला में भाग लेंगे।

ग्रुप बैठकें, विशिष्ट कृषि-जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं वाले विभिन्न जिलों के लिए, कार्य प्रणाली की विविधताओं और गहनता को पहचानने के लिए आयोजित की जायेंगी। यह देखना बाकी है कि क्या इस प्रकार का दोनों तरफ के विशेषज्ञों के स्तर का अनौपचारिक विचार विमर्श आगे भी नियमित रूप से जारी रखा जा सकता है ?

वास्तव में, एक समस्या यह है कि यद्यपि मध्यस्तर के विशेषज्ञ और अनुसंधान कर्त्ता तो इस बात के इच्छुक है कि वे आपस में एक दूसरे से अनौपचारिक रूप से मिलें और किसी समझौते पर आयें तथापि उन्हें एक अस्पष्ट भय है कि उनके ऊपर के अधिकारी मिल बैठकर किये गए समन्वित कार्यों के किसी भी प्रयास को कृपा की दृष्टि से नहीं देखेंगे। यह राज्य और केन्द्र दोनों ही सरकारों में एक पुरानी बीमारी है। यह एक ऐसी बीमारी है, जो उन शैक्षणिक संस्थानों में भी प्रचलित रही है जो आरम्भ में सरकार के अधीन थे। नये कृषि विश्वविद्यालय भी इससे मुक्त नहीं हैं। वास्तव में कृषि विश्वविद्यालय के विभागों के कुछ प्रमुख तो दूसरों के साथ समन्वय के प्रति बहुत ही शंकालु हैं। कुछ भय यह है कि जब कभी समन्वय होता है, तब जिम्मेदारी बंट जाती है और उत्तरदायित्व भी बंट जाता है। अफसर शाही पद्धति में उत्तरदायित्व एक हठी हौवा है। उत्तरदायित्व से यहाँ मेरा मतलब वास्तविक परिणामों से नहीं है; परन्तु प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में उत्तरदायित्व से है। कृषि विस्तार और प्रशिक्षण में यह बात एक कार्यक्रम को चौपट कर सकती है। इसका निराकरण तभी हो सकता है जब प्रशिक्षण और विस्तार के लिए जिम्मेदार व्यक्ति, चाहे वे सरकार में हों चाहे विश्वविद्यालयों में, अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाएं।

पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय में, दो कारणों ने विस्तार कार्य और किसानों के प्रशिक्षण में उसकी गतिशील भूमिका को

सहायता दी है। पहले तो यह ऐसे क्षेत्र में स्थित है जहाँ खाते-पीते और समृद्ध परिवार बसाये गये थे। ये परिवार अधिकतर सेना के सेवानिवृत लोगों के थे। इनके लिए तराई के जंगल साफ किये गये थे और इन्हें बड़े-बड़े भूखण्ड उस समय दिये गये थे जब बहुत कम लोग उस क्षेत्र में जाने का साहस करते थे। उस किसान को, जिसने वहां खेती करना शुरू किया था, उन प्रारम्भिक कठिन दिनों तक में, शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए, किसी प्रेरणा की जरूरत नहीं थी। उसको सरकार द्वारा पहिले ही कुछ खाद बीज आदि प्रदान कर दिये गये थे, चाहे वे समझ से पिछड़े हुये ही थे। वह मेहनती था और साधन सम्पन्न था। इसलिए उसने शुरूआत की। प्रारम्भ में परिणाम बहुत आशाजनक तो नहीं थे लेकिन घोर विपत्ति जैसी कोई घटना भी उसके साथ कभी नहीं घटी। जब नई प्रविधि आई तब वे पहले ही रास्ते पर लग चुके थे। उस समय तक पन्तनगर का कृषि विश्वविद्यालय तराई क्षेत्र के बिल्कुल बीच में स्थापित हो गया था। यहाँ तब एक ऐसा शिक्षा और अनुसंधान केन्द्र था जो साधन सम्पन्न और लम्बी चौड़ी जमीन वाले अनुक्रियाशील किसानों के साथ व्यवहार करता था। विश्वविद्यालय की जमीन और पन्तनगर के इर्द-गिर्द व्वक्तिगत किसानों की जमीन में कोई बहुत अन्तर नहीं था—न तो आकार ही में और न प्रकार ही में–क्योंकि अधिकांश परिवारों ने लम्बी चौड़ी जमीने खेती के लिए उपयोगी बना ली थीं। आरम्भ में, विश्वविद्यालय के साधन, वास्तव में, किसानों के प्रभावी दिशानिर्देश के लिए पर्याप्त नहीं थे। कुछ वर्षों के बाद एक सुनहला अवसर अपने आप आ उपस्थित हुआ। विश्व बेंक ने अनुभव किया कि भारत में अधिक उपज देने वाले बीजों की किस्मों की सफलता के लिये, विशेषज्ञ के दिशानिर्देशन के अधीन ऐसे बीजों के उत्पादन का एक विस्तार कार्यक्रम जरूरी है। इसलिए दीर्घकालिक बातचीत के बाद, तराई क्षेत्र में बीजों के

उत्पादन के लिए, विश्व बैंक द्वारा भारत के लिए २६ करोड़ रुपये के धन को ऋण के रुप में लगाने का एक कार्यक्रम स्वीकृत किया गया। विश्वविद्यालय के नेतृत्व में एक तराई बीज विकास निगम की स्थापना की गई। ऋण की व्यवस्था बैंकों द्वारा की जाती थी और उद्यम निःसंदेह किसानों द्वारा किया जाता था।

इस प्रकार, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय आधारी बीजों और विभिन्न नस्लों के वर्धन तथा प्रमाणित बीजों के उत्पादन की आधुनिक प्रविधियों में किसानों को प्रशिक्षित करने में प्रभावी भूमिका अदा करने लगा। १०,००० एकड़ भूमि पर यह काम होने लगा और इस क्षेत्र के अधिकांश किसान तराई विकास निगम के सदस्य हो गये तथा उन्होंने निगम के मामलों में आवाज प्राप्त कर ली। इन किसानों में अधिकांश ऐसे लोग है जो प्रभावशाली, धनवान और उद्यमशील हैं। क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है और पन्त नगर विश्वविद्यालय के अहाते में सालाना किसान मेले पर प्रशिक्षण के सर्वोत्तम परिणाम देखे जा सकते हैं। वे सब मशीनी फार्म है, जल अबाध रूप से उपलब्ध है इसलिए प्रशिक्षण को कहीं अधिक कृत्रिम और नाजुक होना पड़ता है।

लेकिन एक बुराई यहां भी विद्यमान है। टाइम्स आफ इण्डिया में प्रकाशित एक लेख में, श्री अशोक थापर ने, मार्च १९७२ में, तराई की बदलती हुई तस्वीर पर लिखते हुए कृषि विश्वविद्यालय के समीप के तराई क्षेत्र में, 'छोटे किसानों की बड़ी समस्या' नाम से पुकार कर इस बुराई की ओर ध्यान आकर्षित किया था। वे लिखते हैं "अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रयोग ने गेहूं की उपज १० से १२ मन प्रति एकड़ से बढ़ा कर औसतन २५ मन प्रति एकड़ कर दी। इसके परिणाम स्वरुप २० से ३० एकड़ वाले महत्वाकांक्षी किसानों ने आवश्यक नये खाद बीज आदि प्राप्त करने में शीघ्रता की। गंगवार ने अपने नये ट्रेक्टर का प्रयोग करके अपनी सारी की सारी तीस एकड़ की जोत में गेहूं बो दिये, जबकि पहले वह केवल

१० से १२ एकड़ ही गेहूं बोया करता था। गुरू नानकपुर में, बीरसिंह ने अपनी बैलों की जोड़ी कायम रखी, लेकिन ज्यादा उपज देने वाले गेहूं उगाने के लिए काफी कर्जा ले लिया। उसके पहिले खलियान से उसे ४० मन प्रति एकड़ की उपज मिली। यह उसकी पहले की औसत उपज से तिगुने से भी ज्यादा थी। लेकिन वह अब भी बुरी तरह शिकायत करता है। इसके कारणों को ढूंढ़ने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा। बड़े फार्मों पर सम्पूर्ण यन्त्रीकरण के बावजूद भी मजदूरों का भारी अभाव अब भी शेष है, जिससे दैनिक मजदूरी १.५० रुपये से बढ़कर ४ रुपये से भी ऊपर हो गई है। अधिक उपज देने वाले धान की बढ़ती हुई लोक प्रियता उन्हें और भी बढ़ा रही है और काश्तकारी की लागत में तो बढ़ोतरी हो ही रही है किन्तु उसका मुनाफा कम होता जा रहा है। उसके शुद्ध लाभ आदर्श नगर गांव की खेती की फसलों की अपेक्षा कम हैं लेकिन फिर भी वह हरित क्रान्ति से पहले की हालत से बहुत अच्छी हालत में है। छामगंज में एक बिल्कुल दूसरा ही चित्र उभर कर सामने आया। जबकि बलदेव राज और वीरसिंह अपनी पहली अधिक उपज देने वाली फसल को बिजाई कर रहे थे दयामल और उसके साथी उसे खड़े खड़े देख रहे थे। अपर्याप्त साधनों वाले, छोटे किसान होने के कारण, वे आवश्यक खाद बीज आदि आदान खरीदने में असमर्थ थे। जहां तक उनका सम्बन्ध था उनके लिए खेती एक जीवन पद्धित थी कोई कारोबार नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि १९६८ में, गेहूं की नई किस्मों की अभूत पूर्व उपज ने दयामल को आकर्षित किया। उसने कर्ज लिया और अपने छोटे पांच एकड़ के खेत में लरमा रोजो बीज की बिजाई कर दी। लेकिन उसे किसी ने कोई प्रशिक्षण और दिशा निर्देशन नहीं दिया। उसने रासायनिक पोषक तत्वों का प्रयोग कुछ तो धन की कमी के कारण और कुछ दिशानिर्देश के अभाव के कारण नहीं किया और साधारण गोबर की खाद का प्रयोग किया। इस प्रकार

उसने नये बीज को बिना नई प्रविधि के इस्तेमाल किया।" घरेलू खपत के लिये अलग निकाल लेने के बाद उसने पाया कि इसे शुद्ध नकद हानि हुई है।

कुछ मेहनती आदमी होने के कारण उसने इस दुर्भाग्य के सामने घुटने नहीं टेके और बाद में अपने छोटे फार्म से उपज सुधारने के साधन तथा रास्ते खोजने में सफल हो गया। लेकिन उत्तर प्रदेश (पंतनगर) कृषि विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के विभाग ने हाल ही में एक अध्ययन किया था और यह पाया था कि उस क्षेत्र में अधिक उपज वाली किस्मों को अपनाने वाले छोटे किसानों का केवल ३० प्रतिशत ही उस प्रकार की सफलता पाने की आशा कर सकता था जिस प्रकार की दयामल ने बाद में प्राप्त कर ली थी। उनका निष्कर्ष यह है कि कुछ छोटे किसानों के पास खेती को जीविका का साधन बना सकने के लिए उनकी जमीन बहुत छोटी और उनके साधन बहुत कम हैं। लेकिन छोटे किसानों का एक और वर्ग भी है जो इस अध्ययन के अनुसार शक्यता के साथ जीवन क्षम है। इन किसानों ने रासायनिक खादों का प्रयोग किया था। अपने सम्पूर्ण बिजाई किये हुये क्षेत्र के २० प्रतिशत में अधिक उपज वाली किस्मों की बिजाई की थी। इन्होंने काफी मुनासिब माल पैदा किया था और फसल का लगभग ३५ प्रतिशत माल बेच भी सके थे। इन किसानों की खेती से लगभग १,००० रुपये में से १,५०० रुपये तक की सालाना शुद्ध आमदनी प्राप्त कर सकने में मदद की जा सकती है, बशर्ते कि उन्हें आजकल की तरह एक की बजाय हर साल ज्यादा उपज वाली दो फसलें उगाने में मदद की जाय। इससे जो शिक्षा मिलती है वह यह है कि आरम्भ से ही अनुसंधान और छोटे किसानों के प्रशिक्षण और विकास के बीच एक मजबूत कड़ी जबदस्ती से कायम की जानी चाहिए। इस क्षेत्र के बड़े किसान प्रशिक्षण का लाभ उठा सके थे और लाभ उठाना जारी भी रख रहे हैं, किन्तु छोटे और सीमान्त किसानों को छोड़

दिया गया था। इसलिए विश्वविद्यालय के चारों ओर के क्षेत्र में छोटे किन्तु भावी सम्भावनाओं से युक्त किसानों को पहचानने का प्रयास किया जाना चाहिए। उनके छोटे छोटे दल बनाये जाने चाहिए। इन किसानों के प्रत्येक दल के लिए विश्वविद्यालय को राज्य सरकारों के कर्मचारियों के साथ सहकार करके, विशेष दिशानिर्देश प्रदान करने का और आवश्यक खाद बीज वगैरह खेती में डाली जाने वाली वस्तुओं को प्राप्त करने में उनकी मदद करने का दायित्व ग्रहण करना चाहिए। इन फार्म अनुसंधान कर्त्ताओं को प्रयोग-शालाओं की अपेक्षा खेतों में निःसन्देह अधिक सावधानी बरतनी होगी क्योंकि छोटे आदमी के लिए असफलता का अर्थ विनाश हो सकता है।

दुर्भाग्य से, उत्तर प्रदेश में, विश्वविद्यालय और कृषि विभाग जिम्मेदारियों के निर्दिष्ट क्षेत्र में काम नहीं कर रहे और उच्चतर अनुसंधान करने के लिए कृषि विभाग से विश्वविद्यालय को उत्तर-दायित्व स्थानान्तरित करने का काम अभी पूरा नहीं हो सका। उत्तर प्रदेश एक बड़ा राज्य है और यह सम्भव है कि एक विश्वविद्यालय अनुसंधान की सभी समस्यायें हल करने का काम न कर सके। इसलिए इस समस्या का ठीक ठीक मुकाबिला जितना जल्दी हो सके उतना ही अच्छा है।

भारत सरकार ने हाल ही में, अनुसंधान कर्त्ताओं की प्रयोग-शालाओं को किसानों के खेतों तक फैलाने के विचार को एक रूप देने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय प्रदर्शनों की व्यवस्था करने की एक योजना अर्थात् भारत सरकार ने व्यय वहन करके राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शनों की एक योजना को उन १०० जिलों में शुरू कर दिया है जहाँ केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के विस्तार निदेशालय द्वारा शुरू किया गया किसानों का प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहा है। प्रबन्ध यह है कि जिले के सब से नजदीक का विश्वविद्यालय वैज्ञानिकों के एक छोटे से दल को नामजद करता है। इन वैज्ञानिकों

का वेतन और भत्ता केन्द्र सरकार द्वारा व्यवस्थित धन से दिया जाता है। प्रदर्शन के प्रायोजनों के लिए कई व्यक्तिगत फार्म चुने गए हैं। इनमें उन्नत तौर तरीकों और प्रविधयों के रूप में अनुसंधान परिणामों को आजमाया जाता है। विभिन्न ज्ञान विज्ञान की शाखाओं से लिये गए इस दल की जिम्मेदारी यह है कि वह उन व्यक्तिगत किसानों को, जिनके खेत राष्ट्रीय प्रदर्शनों के लिए चुने गए हैं, दिशा निर्देश दें। साथ ही साथ यह प्रबन्ध भी किया गया है कि विस्तार निदेशालय के किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम के अधीन स्थापित केन्द्र, राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित किसानों के प्रशिक्षण के यूनिट, राष्ट्रीय प्रदर्शन फार्मों में, फील्ड दिवसों पर पड़ौस के किसानों के इकट्ठे होने की व्यवस्था करें। इन फील्ड दिवसों पर, इन पास पड़ोस के किसानों की आंखों के आगे, नई प्रबिधि और तौर तरीकों की विभिन्न अवस्थाओं और पहलुओं के प्रदर्शन किये जाते हैं और उन्हें वैज्ञानिकों तथा कृषि विभाग के अधिकारियों से प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। राष्ट्रीय प्रदर्शन, इस प्रकार कृषि विश्व विद्यालयों में लगने वाले मेलों पर किसानों के सत्रों का एक सुधरा हुआ रूप है। दल छोटे-छोटे होते हैं और विभागीय अधिकारी (जिन्हें पेरेपे टेटिक टीमे कहा जाता है) और विश्वविद्यालयों से आये अनुसंधान वैज्ञानिक दोनों ही आपस में मिल बाँट कर सब प्रकार की शंकाओं का समाधान कर सकते हैं। छोटे किसानों का दल बनाना इन सम्मेलनों के बाद की कार्यवाही है। भाग लेने वाले लोगों को दल का विचार इस आशा के कारण आकर्षित करता है कि दल के द्वारा वे बाद में अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे। दलों को रेडियो सेट और श्रव्य दृश्य इकाइयाँ भी प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार दल अनुसंधान कर्त्ताओं के साथ सीधे सम्पर्क का माध्यम हो जाता है। एक द्विमार्गी परिपथ स्थापित हो जाता है। रेडियो पर बोलते हुए वैज्ञानिक उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं जो

साप्ताहिक या अर्धसाप्ताहिक रेडियो कार्यक्रमों को सुनने के बाद किसानों के दलों द्वारा किये गए विचार विमर्शों में अद्भुत होते हैं। जहां विश्वविद्यालयों से दूरी बहुत अधिक होने के कारण वैज्ञानिकों के लिए प्रदर्शनों का आयोजन सम्भव नहीं होता, वहां राष्ट्रीय प्रदर्शनों के जैसे हो स्थानीय विस्तार अधिकारी गौण प्रदर्शनों को शुरू कर देते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के व्यापक निदेशक के अधीन कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा चलाई जा रही राष्ट्रीय प्रदर्शन योजना पर कुछ सूचनात्मक सामग्री अनुबन्ध में दी गई है। "राष्ट्रीय प्रदर्शन" शब्द एक सीमान्तिक घटना है। यह केवल इत्तफाक ही है कि यह शब्द राज्य कोष से व्यय करके, राज्य सरकार के विस्तार कर्मचारियों द्वारा किए गए प्रदर्शनों से, केन्द्र द्वारा प्रदान किए गए वित्त से, विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा लगाये गए प्रद्रर्शनों को पहचानने के लिए प्रयुक्त किया गया है। राज्य सरकार वाले प्रदर्शन भूतकाल में साधारणतया असफल हो चुके थे। उनकी प्रविधि निम्न और पिछड़ी हुई थी तथा सक्षम कर्मचारियों की कमी के कारण उनका पर्यवेक्षण, अपरिहार्य रूप से कृत्रिम था। उस समय राष्ट्रीय प्रदर्शन शब्द उस प्रदर्शन के लिये इस्तेमाल होने लगा जो अनुसंधान की साख से योग्यता प्राप्त वैज्ञानिकों के दल द्वारा निर्दशित किया जाता था। इन वैज्ञानिकों की आधार रेखा निकटतम कृषि विश्वविद्यालय में होती थी। इन्हें जिले के विस्तार कर्मचारियों द्वारा प्रदान किये जा सकने वाले निर्देशन से कहीं अधिक ऊंचे स्तर का निर्देशन देने के लिये सुविधायें दी गई थी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विश्वविद्यालय दल के अधीन राष्ट्रीय प्रदर्शन फार्मों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत छोटी है। इसलिए यह किसानों को बहुत ऊंचे दर्जे का ध्यान तथा निर्देश प्रदान कर सकते हैं। फिर भी यह आशा की जाती है कि राष्ट्रीय प्रदर्शनों और उन प्रदर्शनों के बीच जो अब गौण प्रदर्शन

कहे जाते हैं भेद क्रमशः कम होता जाएगा, अर्थात् वे प्रदर्शन भी, जो कृषि विश्व विद्यालयों में आधारित दलों को छोड़कर अन्य दलों द्वारा किए जायेंगे, नवीनतम अनुकूली अनुसंधान प्रतिबिम्बित करेंगे। तौर तरीकों की पोटलियां एक जैसी होनी चाहिए और उपादान या तो समाप्त कर दिया जाना चाहिए या उसे समान स्तर कर देना चाहिए।

अनुसंधान पर आधारित राष्ट्रीय प्रदर्शन या जिले में क्षेत्र प्रदर्शन कहना अधिक अच्छा समझता हूं। यह केवल उन्हीं सौ जिलों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, जहाँ ऊंची उपज देने वाली किस्मों के बीज शुरू किये गये थे। क्योंकि देश में जिलों की पूरी संख्या के एक तिहाई से कम ही के लिये पर्याप्त साधन उपलब्ध थे। इसलिए जब किसानों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम बनाया गया था तब कुछ आधार खोजना पड़ा था। बाद में, जब राष्ट्रीय प्रदर्शन योजना बनाई गई तब इसे केवल उन्हीं जिलों में चालू करना व्यावहारिक हुआ जहां किसानों की प्रशिक्षण प्रायोजनायें चल रही थी। अब वृहत्तर राष्ट्रीय विचार से यह आवश्यक है कि अनुसंधान पर आधारित प्रशिक्षण देश के दूसरे भागों को भी उपलब्ध कराया जाना चाहिये। उपेक्षित क्षेत्रों में कुछ प्राथमिक कार्यक्रम भारत सरकार के हाथ में लेने के परिणाम स्वरूप एक नया अवसर हाल ही में उपस्थित हुआ है। खासतौर से सूखी भूमि की खेती के लिये, छोटे किसानों के लिये और जल प्रबन्ध के लिए बनाये गए कार्यक्रमों को प्रशिक्षण और अनुसंधान के साथ जोड़ना संगत होगा। ये सभी प्रायोजनायें १९६९ और १९७१ के बीच दो वर्षों में स्वीकृत हुई हैं और भारत सरकार ने इस पर सारभूत व्यय की व्यवस्था की है। हाल ही में जनजाति क्षेत्र विकास के लिये एक कार्यक्रम बनाया गया है। इसमें समाधान के लिये जो समस्यायें हैं उनमें स्थान बदलकर खेती करना, भू अभिलेखों का न होना, दीर्घकालीन

ऋणग्रस्तता, संचार साधनों की आवश्यकता, वन के साधनों की उपेक्षा आदि है। जब ये विशेष कार्यक्रम (अर्थात् सूखी भूमि में खेती, जनजातीय क्षेत्र विकास, छोटे किसानों का विकास अभिकरण, सीमान्त किसान, जल प्रबन्ध) आरम्भतः बनाये गए थे तब फायदा पाने वालों के प्रशिक्षण के लिये कोई विशेष प्रावधान नहीं रखा गया था। सूखी भूमि में खेती की योजना ही शायद अनु-संधान के साथ बनी बनाई कड़ी युक्त योजना है। आन्ध्रप्रदेश के शुष्कतम क्षेत्रों में एक क्षेत्र अनन्तपुर पर एक सूक्ष्म प्रायोजना में पहले की एक मिसाल उपलब्ध थी। एक फ्रांसीसी कृषि वैज्ञानिक की सहायता से एक छोटी मिली जुली अनुसंधान सहित विकास की प्रायोजना शुरू की गई थी। इस फ्रांसीसी कृषि वैज्ञानिक को पश्चिमी अफ्रीका की शुष्क कृषि का अनुभव था। सरकारी फार्म और व्यक्तिगत किसानों दोनों ही के खेत प्रदर्शन और प्रशिक्षण के लिये काम में लाये गये थे। इस मिसाल ने जिलों में अपेक्षाकृत बड़ी शुष्क भूमि कृषि प्रायोजना की काश्तकारी को प्रभावित किया था। यहां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने कनाडियन सहायता से विभिन्न जिलों में शुष्क भूमि कृषि प्रविधियों के लिए अनुसंधान उपकेन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया था। ये उपकेन्द्र इस प्रकार अनुकूली अनुसंधान और किसानों के प्रशिक्षण केन्द्र बन जायेंगे।

अनुसंधान और प्रशिक्षण के बीच इसी प्रकार की कड़ी का प्रयास, जल प्रबन्ध प्रायोजनाओं के लिये मैसूर के तुंगभंद्रा "आयाकट" (कमांड एरिया) क्षेत्र में, उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ में और हिसार (हरियाणा) के पास केन्द्रों पर किया गया है। शुष्क कृषि और जल प्रबन्ध दोनों ही की प्रविधियों के लिये आवश्यक है कि प्रयोगशाला का विस्तार लाभ उठाने वाले के खेत तक हो। अनुसंधान ओर प्रशिक्षण युक्त विकास के बीच गठबन्घन अपरिहार्य था। यह बात छोटे किसानों के लिये और सीमान्त

किसानों तथा कृषि मजदूरों के लिये बनाई गई दूसरी हाल की योजनाओं के बारे में नहीं कही जा सकती। ये अपेक्षाकृत बहुत बड़े कार्यक्रम हैं, जिनके अन्तर्गत ८८ जिले आते हैं और जिन पर ११५ करोड़ रुपए के व्यय का प्रावधान है। जब ये योजनायें आरम्भतः बनाई गई थी, तब इनमें न तो अनुकूल अनुसंधान ही थे और न किसानों के प्रशिक्षण के बने बनाये तत्व विद्यमान थे। मुख्य तत्व चुनीदा किसानों को ऋण और बीज, खाद आदि की उपलब्धता का था। लेकिन यह कल्पना करना घातक होगा कि अनुसंधान की पहुंच और प्रशिक्षण के लिये संस्थागत कायाजाल (प्रदर्शन, फील्ड दिवस, चर्चादल और व्यावसायिक साक्षरता) के बिना अकेले ऋण खाद और बीज आदि के आदान ही छोटे किसान को अधिक समय तक बनाये रख सकेंगे। खाते पीते, पढ़े लिखे, और ऐसे किसानों के साथ, जो कभी कभी असफलता बर्दाश्त करने की स्थिति में हों, बात भिन्न थी। वास्तव में, भारत में छोटे फार्मों की आवश्यकताओं के लिये अनुकूल अनुसंधान केन्द्रों का जापानी नमूना ठीक मालूल पड़ता है। छोटे किसानों की या सीमान्त किसानों की योजनाओं वाले प्रत्येक जिले में उसी जगह अनुकूल अनुसँधान यूनिट भी होना चाहिये जहां ऋण बांटा जाता है और खाद, बीज आदि खेती में डाली जाने वाली चीजों की व्यवस्था की जाती है। अनुकूल अनुसंधान यूनिट निकटतम विश्वविद्यालय या अनुसंधान केन्द्र से सम्बद्ध होना चाहिए।

जीवन निर्वाह वाली खेती को निवेशोन्मुख खेती में परिवर्तित करने में नकदी फसलें मुख्य कारक है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में काली मिर्च और कपास की नकदी फसलों ने पश्चिम से व्यापारियों को लुभाया था। बाद को यह काम पटसन और नील ने किया। निवेशोन्मुख फसलों का स्वरूप, परिणाम, और महत्व बाजारों के अनुसार घटता बढ़ता रहा है। भारत जैसे देश के ये बाजार पश्चिम में थे। पश्चिम के औद्योगीकरण ने आरम्भतः

भारत में नगदी फसलों को खूब बढ़ाया। भारत की कपास की फसल के लिए अमरीका का गृहयुद्ध एक वरदान था। लेकिन हाल के वर्षों में दूसरे विकासशील देश प्रतियोगी बन गये हैं। विकसित देशों में भी स्वयं अपने अपने परिपूर्ण होने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति थी। संयुक्त राज्य अमेरिका की यह बात बिल्कुल समझ में आती है कि वह भारत में कपास के विकास पर जरा भी उत्सुक नहीं है। रासायनिक उत्पादनों और प्लास्टिकों द्वारा प्राकृतिक उत्पादों के प्रतिस्थापनों ने भी भारत में नगदी फसलों, खासतौर से पटसन, कपास और तिलहन पर गहरा प्रहार किया है। इस भूलभुलैयां से रास्ता पा सकना वैसा सरल नहीं जैसा कि यदि हम अपने अन्न उत्पादन के वर्तमान बढ़ते हुये रुख को कायम रख सकें तो हमारा देश अन्न के प्रमुख निर्यातक के रूप में उभर सकता है। यह अनुसंधान ही है जिसे उबारने और नेतृत्व ग्रहण करने के लिये आगे आना होगा। सोयाबीन के लिये समन्वित अनुसंधानकार्यक्रम में बहुत अच्छा काम हुआ है। सोयाबीन प्रोटीन का एक स्रोत है और इसमें तेल की मात्रा भी ज्यादा होती है। शुष्क भूमि कृषि कार्यक्रम के भाग के रूप में उन्नत किस्मों की मूंगफली का भी प्रवेश हो रहा है। सूर्यमुखी के फूल अब हिमालय में, और देशों के कुछ अन्य क्षेत्रों में वाणिज्यिक फसल के रूप में उभर रहे हैं। गन्ने का, जिसने मुख्य नगदी फसल के रूप में नील का स्थान लिया था और इस शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में देश के बहुत से भागों में समृद्धि लाया था, विविधतापूर्ण भाग्य रहा है। वास्तव में, कुछ वैज्ञानिक यह महसूस करने लगे हैं कि उत्तरी भारत में गन्ने के विस्तार ने, कुछ भागों में, कड़ी सर्दी को हिसाब में नहीं लगाया था। इन कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार मध्य भारत और दक्षिण भारत में ही गन्ना सफल हो सकता है। इसका कारण यह है कि ठीक उसी समय जब गन्ने के डंठल में रस पैदा होता है तब उत्तरी भारत में तापमान गिर जाता है, जिससे रस का पैदा

होना रुक जाता है। निःसन्देह गत कई दशकों में कुछ नई किस्मों की शुरुआत हुई है और उनका बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है। फिर भी गन्ने की पैदावार उत्तरी भारत में महाराष्ट्र और दक्षिण भारत की अपेक्षा आमतौर से कम ही है।

गन्ना तथा सभी अन्य फसलें, जिनका जिक्र पिछले पेराग्राफ में किया गया है, न केवल गहन और द्रुत अनुसंधान की ही मांग करते हैं वरन् किसानों के लिए उन परिणामों के विस्तार की भी मांग करते हैं जो इन अनुसंधानों से प्राप्त होते हैं। यह गहन और द्रुत अनुसंधान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रमों के द्वारा किया जा रहा है। सभी जिलों में ये फसलें नहीं उगाई जा रहीं। पंचवर्षीय योजना के अधीन अब इन फसलों की कई विकास योजनायें शुरू कर दी गई है जिन्हें भारत सरकार से सारभूत वित्तीय सहायता मिलती है। अनुदानों, ऋणों, कर्मचारियों, पर्यवेक्षणों आदि के लिए बड़े कोषों की व्यवस्था कर दी गई है। किन्तु यह सन्देहपूर्ण है कि किसानों के प्रशिक्षण और व्यावहारिक अनुसंधान के लिये कोषों का स्पष्ट नियतन किया गया हो। यह अत्यन्त करुणाजनक बात होगी यदि किसानों का प्रशिक्षण और राष्ट्रीय प्रदर्शन योजना उन जिलों को विस्तारित न की गई जहां अनुसँधान पर आधारित नये नये तौर तरीकों के साथ इन नगदी जिन्सों का परीक्षण किया जा रहा है। इनमें से कुछ छोटे अर्से की है, कुछ अधिक पैदावार देने वाली है, कुछ को कम नमी की जरूरत है और कुछ को तैयार करने के लिये कुछ प्रविधियां अपनानी पड़ती है। इन सब मामलों के लिये प्रशिक्षण जरूरी है।

क्योंकि प्रत्येक राज्य में केवल एक ही कृषि विश्वविद्यालय है, और क्योंकि क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र दूर दूर स्थित हैं, इसलिये राज्य में सभी क्षेत्रों द्वारा राष्ट्रीय प्रदर्शन की पूरी कीमत बाँट कर उपयोग में नहीं लगाई जा सकती। इसलिए यह जरूरी है कि

राष्ट्रीय प्रदर्शनों और राज्यों के गौण प्रदर्शनों के बीच जो भेद है उसे धीरे धीरे समाप्त कर दिया जाय। राज्य स्तर पर विस्तार अधिकारियों का चरित्र एवं ज्ञान बल गौण प्रदर्शनों को गठित करने में सुविधा प्रदान करता है। लेकिन केवल इससे ही काम नहीं चलेगा। यह महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों और अनुसंधान कर्त्ताओं को, जो राष्ट्रीय प्रदर्शनों का निर्देशन करने के जिम्मेदार है, उसी दिन लौट पड़ने की जल्दी करने के बजाय गांव में एक रात रुकने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। एक राज्य में गांवों का दौरा करने वाले वैज्ञानिकों को तम्बुओं की व्यवस्था कर दी गई है। वैज्ञानिक मौके पर जाते हैं, तम्बू लगाते हैं दो या तीन दिन के लिये ठहरते हैं, किसानों के बीच मिलते हैं, उन्हें न केवल विस्तृत निर्देशन ही प्रदान करते हैं अपितु प्रश्नों के ब्यौरेवार जवाब देते हैं और स्थानीय अनुसंधान के लिये जानकारी इकट्ठी करते हैं। दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिकों को दौरे करने वाले अफसरों की तरह काम करने के लिये तैयार होना पड़ेगा और इस भूमिका में जो असुविधायें होती है उनको झेलना पड़ेगा। ६० मील प्रति घंटे की तेज चाल से मोटर चलाकर जाना, जल्दी जल्दी कुछ निर्देश देना और मुख्यालय की सुख सुविधा या प्रयोग शाला की सुरक्षा के लिए जल्दी जल्दी में वापिस आ जाना किसानों के विश्वास को जीतने का रास्ता नहीं है। भौतिक विज्ञानों में अनुसंधान (भूविज्ञान और वनस्पति विज्ञान की तरह कृषि में अनुसंधान) वैज्ञानिकों के खुले में घूमने फिरने की मांग करता है। उनकी परिस्थितियों की वास्तविकता के सामने आने की मांग करता है। राष्ट्रीय प्रदर्शन के वैज्ञानिकों को तम्बू की व्यवस्था करने में आरंभ में कुछ खर्च होगा, लेकिन यह वैज्ञानिकों को गरीब किसानों की मेहमानदारी पर कम निर्भर बना देगा। सरकार के एक दूसरे विभाग–पुरातत्व विभाग की एक अच्छी मिसाल है। पुरातत्ववेता, कभी कभी एक साथ महीनों के लिये ऐसी परिस्थितियों में काम

करते हुये, जो आदिम प्रतीत होती है, दौरा करते हैं। फिर भी वे सभी मूल सुविधायें प्रदान की हुई होती हैं जो उन्हें स्वतंत्र बनाती हैं।

वैज्ञानिकों को इन सुविधाओं के दे देने के बाद भी उनका किसानों के साथ संचार तब तक पूरा नहीं होगा जब तक कि व्यावहारिक अनुसंधान के लिये प्रत्येक जिले का अपना खुद का केन्द्र नहीं होगा। इस अध्याय में पहले जापान में प्रीफ़ेक्चर स्तर के अनुसंधान सहित प्रशिक्षण केन्द्रों का जिक्र किया गया है। मुझे स्विट्रलैंड में इस प्रकार के संस्थान को देखने का अवसर मिला था। स्विट्जरलैंड में स्थानीय प्रादेशिक स्तर के अनुसंधान केन्द्र सहकारिता संगठन को सौंप दिये गए हैं। सहकारी संस्थायें ऋण और सीमा शुल्क सेवायें प्रदान करती हैं और फसलों तथा पशुओं का बीमा करती हैं। ये सहकारी संगठन भारतीय जिलों के बराबर के क्षेत्रों में स्थानीय अनुसंधान संस्थानों का रखरखाव भी करते हैं। मैंने अपने हाल के भ्रमण में ऐसे एक जिले को देखा था। सहकारिताओं में चलाये जा रहे अनुसंधान सहित प्रशिक्षण केन्द्र में किसानों द्वारा खरीदी गई खाद के परीक्षण के लिये प्रबन्ध थे। उनकी मशीनों, हानिकर जीवों को मारने वाली औषधियों, पशुओं के चारों आदि के परीक्षण की भी वहां व्यवस्था थी। कम्पनियों द्वारा निर्मित पशु आहारों की विभिन्न किस्मों का परीक्षण करने में प्रयोगशाला की विधियां काम में लाई जाती थीं। कुछ निर्माता अपने उत्पादों पर प्राविधिक परामर्श की प्रार्थना करते हैं। यह सहकारी केन्द्र केम्पस प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करते हैं। राष्ट्रीय क्रय संघ द्वारा वजीफे दिये जाते हैं। यह संस्था सहकारी समितियों को दीर्घ-कालीन क्रियाकलापों के लिये अग्रिम पूंजी भी देती है। कर्मचारी उच्च योग्यता प्राप्त होते हैं। कुछ तो प्राध्यापकों के स्तर के होते हैं। सहकारी संगठन किसानों को अपनी खुद की खेती के प्रबन्ध

का योजनायें बनाने में सहायता करते हैं। प्रशिक्षण, निःसन्देह खाली दिनों में, अर्थात् सर्दी की चरम सीमा के दिनों में दिया जाता है, जब चारों ओर बर्फ पड़ती है और सामान्य कामकाज करना सम्भव नहीं होता। देहातों में स्थित ये अनुसंधान केन्द्र इस प्रकार सरकार के विस्तार विभाग को नेतृत्व प्रदान करते हैं। यद्यपि कई कृषि विश्वविद्यालय और कुछ अनुसंधान केन्द्र देहाती क्षेत्रों में स्थापित किये गये हैं तथापि उनकी स्थापना कभी कभी केवल संकेत भर रह जाती है। विश्वविद्यालयों के प्रांगण बड़े होते हैं और उनका पर्यावरण स्पष्टतः शास्त्रीय होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि छोटे किसानों के लिये वे बहुत महान संस्थायें है जिनके साथ वे अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकते। इसलिये उनका प्रभाव अक्सर प्रथकता का रहा है। अनुकूली अनुसंधान केन्द्रों के द्वारा विश्वविद्यालय और अनुसंधान संगठन प्रथकता की दीवारें गिरा सकते हैं। वह अनुसंधान और खोज का प्रस्थान बिन्दु है।

अब तक हमने कृषि विश्वविद्यालयों के अनुसंधान पक्ष की और किसानों की प्रौढ़ शिक्षा के लिये अनुसंधान केन्द्रों की क्षमता पर विचार किया है। प्रशिक्षणात्मक प्रविधियों वाली शैक्षणिक संस्थाओं के रूप में उनकी क्षमता क्या है?

पश्चिमी देशों का हाल का अनुभव यह प्रदर्शित करता है कि प्रौढ़ शिक्षा के दीर्घकालीन पक्ष में ही शिक्षा संस्थायें साधारणतया लगी हुई हैं। इस पक्ष का सरोकार मानव व्यक्तित्व को समृद्ध करने के लिये चिरस्थाई आवश्यकता से है। प्रौढ़ शिक्षा पर यूनेस्को की अन्तर्राष्ट्रीय समिति द्वारा हाल ही में इसे "आजीवन शिक्षा" का नाम दिया गया है। इस संकल्पना की क्रियान्विति में सभी प्रकार की शिक्षण संस्थाओं को विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

किसानों का प्रशिक्षण और साक्षरता, प्रौढ़ शिक्षा के आपात कालीन पक्ष से सम्बद्ध प्रतीत होती है, अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है

जो संकट के परिणाण स्वरूप केन्द्रीय और प्रभावी हो जाय। मालकोम एस० नोल्स के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा की विकास सम्बन्धी प्रक्रिया की प्रवृत्ति नित्य की अपेक्षा प्रासंगिक अधिक है। यह संकट के समयों में स्फुरित हो जाती है। विकासशील देशों को जो संकट चुनौती देता है वह आर्थिक विकास से सम्बन्धित उत्पादन के लिये कुशलताओं की अपर्याप्तता का संकट है। इन देशों की गरीबी की समस्या किसी तरह भी नई नहीं है। फिर भी जिस चीज ने संकट उत्पन्न किया है उसका सम्बन्ध पहले तो जन संख्या में तीव्र वृद्धि है और दूसरे वर्द्धित उत्पादन और विकास के वातावरण तथा साधनों के जल्दी ही दोहन करने के लिये जो दबाव पड़ता है उसमें है।

इन संकटों ने प्रौढ़ शिक्षा के उन कार्यक्रमों को नई मान्यता प्रदान कर दी है, जो आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिये तैयार किये जाने वाले, असंख्य लोगों के बड़े समूहों में, आवश्यक कुशलता को बढ़ावा दे सकेंगे। साक्षरता भी, उन अत्यन्त निर्णायक कुशलताओं में से एक है, जिनकी कि इन लोगों को आज ज़रूरत है।

क्या शिक्षण संस्थायें प्रौढ़ शिक्षा के इस 'आपातकालीन' पक्ष में अपनी भूमिका अदा कर सकती है? भारत के शिक्षा आयोग ने जिस साक्षरता को सामूहिक उपागम की संज्ञा दी थी, उसके लिये स्कूलों और कालेजों के विशेष उत्तरदायित्व की कल्पना की थी। उसने कहा था कि स्वेच्छिक सेवा के द्वारा करोड़ों को साक्षर बनाने के अभियान का मुख्य भार शिक्षकों और विद्यार्थियों, स्कूलों और कालेजों पर पड़ना चाहिये। उसने यह सिफारिश भी की थी कि प्रौढ़ों को यह शिक्षा देना अपनी अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा के एक भाग के रूप में जरूरी होना चाहिये जिसका कि कमीशन ने प्रस्ताव किया था। उसने यह भी कहा था कि प्रौढ़ शिक्षा कार्य के लिये उनको पारिश्रमिक देकर स्कूली काम

से शिक्षकों को राहत दी जानी चाहिये। कमीशन का विचार है कि स्कूलों को, 'बच्चों के स्कूल' से रूपान्तरित करके 'जनता के स्कूल' बना दिया जाना चाहिये।

इस प्रकार के साक्षरता कार्यक्रम में, सामान्य स्कूलों और कालेजों के प्रयोग का अनुभव, गत वर्षों में एक समान नहीं रहा। लेकिन जहाँ तक व्यावसायिक और विशिष्टीकृत शिक्षण संस्थाओं का सम्बन्ध है वहाँ तक ये सिफारिशें अधिक अर्थपूर्ण हैं। खासतौर से कृषि कालेज और संस्थायें इन प्रस्तावों का स्वागत कर सकती है और उन्हें करना भी चाहिये, क्योंकि उनके लिये प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ किसानों को प्रशिक्षण देना है। उत्पादन के प्रयोजनों के लिये, किसानों के प्रशिक्षण में, कृषि स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों को विशेष रूप से अंशदान करना होगा। व्यावसायिक संस्थानों को, खास तौर से उनको जो कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण से सम्बन्धित है, प्रौढ़ शिक्षा के मामले में सामान्य शिक्षा के संस्थानो के ऊपर लाभ हासिल है।

अपनी प्रकृति से ही व्यावसायिक शिक्षा एक प्रौढ़ अनुभव है। यहाँ पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले नौजवानों को व्यावसायिक वृत्तिका बनाने की अभिप्रेरणा दी जाती है। कृषि संस्थानों में, जीवन के लिये तैयारी एक अपेक्षाकृत अधिक विशिष्ट तैयारी है। यह खासतौर से उन पाठ्यक्रमों और कार्यों पर बल देती है जो सीधी आवश्यकताओं के प्रति व्यावहारिक और संगत होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि कृषि संस्थान बौद्धिक रूप से निम्नस्तर के होने चाहिये। इसका केवल यही अर्थ है कि ज्ञान की प्राप्ति और विश्लेषण की प्रक्रिबा के प्रतियें एक प्रौढ़ और प्रयोजनीय उपागम द्वारा विशिष्टता प्राप्त करते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि शिक्षा की प्रक्रिया व्यावहारिक किस्म के प्रदर्शनों से निकटतापूर्वक सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त इन संस्थानों में प्रौढ़ मनोविज्ञान को समझने के अधिक अच्छे साधन

हैं। यदि एक कृषि संस्थान को अच्छी तरह सोच समझ कर नियोजित किया जाय तो उसकी कक्षा के कमरे में या फार्म में कोई भी प्रौढ़ किसान अजनबी पन का अनुभव नहीं करेगा। उसे स्कूल और काम के पर्यावरण के बीच विरोध से कोई परेशानी नहीं होगी। सामान्य संस्थानों के सम्बन्ध में यह विरोध सामान्य प्रौढ़ को कुण्ठित कर देता है।

दूसरे शब्दों में, कृषि स्कूल और कालेज वह प्रदान कर सकते हैं जिसे "विशिष्टीकृत प्रौढ़ शिक्षा" कहा जाता है। मैं इस शब्दावली को "प्रौढ़ शिक्षा के प्रति चुनीदा उपागम" से अधिक अच्छा समझता हूं। चुनीदा उपागम शब्दों से ऐसा ध्वनित होता है कि कुछ लोगों को छोड़ देना है। किन्तु विशिष्टीकृत प्रौढ़ शिक्षा व्यावसायिक संस्थागत शिक्षा का प्रतिरूप है। यह सच है कि आधुनिक संस्थागत शिक्षा विशिष्टीकरण के अवरोधों को तोड़ देना चाहती है। लेकिन कृषि (और औद्योगिक) संस्थाओं का अति विशिष्टीकृत स्वरूप ही प्रौढ़ शिक्षा के लिए एक परिसम्पत्ति है जो सामान्य शिक्षण संस्थानों के पास नहीं होती।

इस बात के लिए, प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन में, कृषि संस्थानों को विकासशील देशों में सक्रिय भूमिका निभाने की और अधिक सम्भावना है, इसका एक और कारण है। भारत के लिये सामुदायिक विकास आन्दोलन के महान् साहसिक कार्य का जो स्पष्ट पाठ है वह यह है कि देहाती क्षेत्रों के लिये प्रशासनिक कार्य जाल की व्यवस्था करना ही पर्याप्त नहीं। यह व्यवस्था सामुदायिक विकास के स्थाई और महत्वपूर्ण परिणामों में से एक है। हमने उस समय जिस चीज की आवश्यकता महसूस की थी, वह चीज किसानों के विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सन्दर्भ का विकिरण बिन्दु था। हमने अपने खण्ड मुख्यालय को 'प्रकाश के केन्द्र' कार्यक्रम बनाने की कोशिश की थी। लेकिन वे अन्य सरकारी कार्यालयों से अधिक भिन्न साबित नहीं हो सके हैं। वे

पर्यावरण शिक्षा और बराबरी के आधार पर विचारों और अनुभवों के आदान प्रदान के लिये सहायक नहीं है। शायद सामुदायिक विकास आन्दोलन का इतिहास कई तरह से भिन्न हुआ होता, यदि विस्तार चालकों के लिए 'आधार रेखा' (ग्रामीण प्रशासकीय सेवा से बिल्कुल अलग) कृषि सम्बन्धी या देहात सम्बन्धी संस्थाओं में होती। किसानों की सूचना के लिए विकिरण बिन्दु शायद देहातों में सब जगह बिखरे हुये कृषि स्कूलों, कालेजों या विश्वविद्यालयों की शृंखला हो सकते थे।

कृषि स्कूलों और कालेजों को विशेषज्ञ कर्मचारियों के प्रयोग द्वारा किसानों के बीच विस्तार क्रियाकलापों को सशक्त बनाना संभव हो सकना चाहिये। उनका प्रयोग परामर्श और प्रशिक्षण के लिए किया जाना चाहिये। भारत में कृषि स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ने जा रही है। यद्यपि चाहे वे देशव्यापी कृषि विस्तार का पूरा काम अपने जिम्मे नहीं ले सकते, तथापि अपने आसपास के प्रत्येक गांव के लिये जिम्मेदारी स्वीकार कर सकते हैं। कुछ कृषि संस्थानों द्वारा इस प्रकार के विस्तार कार्यक्रमों की शुरूआत कर दी गई है, जो इस बात पर निर्भर करती है कि उन्होंने अपने शास्त्रीय दृष्टिकोण और तौर तरीकों को किस सीमा तक उत्पादन परक किया है। उत्पादन पर इस बल के बिना और सरकार द्वारा चलाये गये किन्हीं खास उत्पादन कार्यक्रमों से जुड़े बिना कृषि संस्थान किसानों से उनकी अनुक्रिया नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

यह मानते हुए कि उपरोक्त दोनों परिस्थितियों (अर्थात् कृषि शिक्षा की प्रौढ़ प्रकृत्ति और किसानों में विस्तार कार्य के लिये उसकी शक्यता) के परिणाम स्वरूप कृषि स्कूल कालेज इत्यादि भारतीय शिक्षा आयोग द्वारा विचारे गये स्वयं सेवी साक्षरता प्रयास में अधिक गतिशील हो सकेंगे। वह किस तरह की साक्षरता है जिसे प्रदान करने में ये संस्थायें अधिक प्रभावी हो

सकती हैं ? यूनेस्को की साक्षरता की परिभाषा उस व्यक्ति को साक्षर समझती है जो अपने प्रतिदिन के जीवन पर एक छोटा और सादा वक्तव्य समझदारी के साथ पढ़ और लिख सके। यह एक सर्वोत्तम आधार भूत परिभाषा है। किन्तु इसमें न तो किसी आपात काल की विशिष्ट आवश्यकताओं का ही कोई जिक्र है जैसे किसी समुदाय का जल्दी ही उत्पादन बढ़ाने के काम में लग जाना और न इच्छित स्तर प्राप्त करने के लिए प्रौढ़ को समर्थ बनाने की प्रक्रिया के विशेष आधार का ही जिक्र है। 'कार्यमूलक साक्षरता' की संकलपना इन दोनों तत्वों को ग्रहण करती है। कार्यमूलक साक्षरता निम्नलिखित दो बातों की मांग करती है :

(१) पढ़ने लिखने और हिसाब लगाने का वह स्तर जो एक नव साक्षर को जीवन के अपने कार्य या व्यवसाय में इन कुशलताओं का प्रयोग करने में समर्थ बना सके, और

(२) स्वयं साक्षरता प्रदान करने की प्रक्रिया का संमजन, जिससे पाठों को शुरू करते ही साक्षरता और कार्य की आवश्यकताओं के बीच कड़ी स्थापित हो जाये।

इन आवश्यकताओं में से पहली का सम्बन्ध "अन्तिम उत्पाद" से है और दूसरी में वह बात है जिसे दसियों वर्ष पूर्व बच्चे के लिये बुनियादी शिक्षा के रुप में महात्मा गाँधी ने कहा था। अनुभव ने दिखा दिया है कि बच्चों के लिये बुनियादी शिक्षा आशा के अनुकूल सफल नहीं हुई थी। इसका आँशिक कारण यह था कि इसे बाल-अभिव्यक्ति के लिये खेल की आवश्यकता के साथ काम का सह-सम्बन्ध संतुलित करना पड़ा था। प्रौढ़ के साथ समस्या भिन्न है। गंभीर काम में लगे प्रौढ़ के लिये शिक्षण को काम से जोड़ना उसे सिखाने की स्पष्ट विधि है। अभिप्रेरण तुरन्त होता है, क्योंकि शिक्षा प्राप्त करने वाले के लिए उपलब्धि के परिणाम ठोस और लाभदायक होते हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि किसानों के लिए 'कार्यमूलक साक्षरता' की प्रक्रिया को

आरोही अवस्थाओं में प्रारूपित किया जाना चाहिये। प्रत्येक अवस्था में वह अपनी आंशिक रूप से प्राप्त कुशलताओं को भी क्रमशः अधिकाधिक रूप से अपने काम में लगा सकने में समर्थ होना चाहिये। यह अध्यापकों के लिए एक चुनौती होगी। लेकिन चुनौती का मुकाबिला अध्यापन सम्बन्धी प्रयोगशाला के एकान्त पर्यावरण में नहीं किया जा सकता। किसानों के लिये कार्यमूलक साक्षरता के सह सम्बन्ध का तंत्र कृषि विश्वविद्यालयों और कालेजों में ही ढाला जा सकता है। इन कृषि विश्वविद्यालयों और कालेजों को इस प्रयोजन के लिए अध्यापन का समर्थन और सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये। (अध्यापन के रीति विधान का अध्याय देखिये)।

उपरोक्त प्रस्ताव का अभिप्राय यह है कि अब तक समझी जाने वाली प्राइमरें, पाठ्य पुस्तकें और अन्य पठन सामग्री, विशिष्ट और खासतौर से तैयार की गई सामग्री के द्वारा बदल दी जायेगी। ये कभी-कभी स्थानीय परिस्थितियों, फसलों और उत्पादन के कार्यक्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न भी होगी। साक्षरता के लिये कोई राजमार्ग नहीं है, कम से कम कार्यमूलक साक्षरता के लिये तो हरगिज़ नहीं। पठनसामग्री और पाठ्य चर्चा को अनिवार्य रूप से लचीला और कभी-कभी तदर्थ तक होना पड़ेगा। तभी साक्षरता उत्पादन कार्यक्रम का एक अवयव बन सकेगी। किसानों के लिए कार्यमूलक साक्षरता का अनेखापन और जटिलता ही कृषि संस्थाओं की विशेष भूमिका स्थापित करती है। सामान्य साक्षरता आन्दोलन व्यक्तिगत स्वयं सेवकों को लगाकर चलाये जा सकते हैं और सीधे सादे संगठनों और संस्थानों के द्वारा हो सकते है। किन्तु कार्यमूलक साक्षरता का कार्यक्रम अधिक नाजुक होता है। यह तुरन्त महत्व का भी होता है। इसलिये कृषि स्कूलों और विश्वविद्यालयों को इसमें पहल करनी चाहिये और इसे जीवन दायिनी शक्ति तथा साधन प्रदान करने चाहिये। इसके

लिये उनके पास सरकारी विभागों के कार्यालयों या सामान्य प्रकार के स्वयं सेवी संगठनों की अपेक्षा अच्छे साज सामान है (और हो सकते है)। उनके अपने फार्म, पशु और खाद, बीज आदि के भण्डार है। उनसे आशा की जाती है कि उनके पास आधुनिक सिद्धांन्तिक और व्यावहारिक दोनों ही की पृष्ठभूमि वाले कर्मचारी हैं। कुछ मामलों में उनके पास जोतने, खाद तथा जीवनाशक दवाइयां लगाने, बीजों को तैयार करने और मिट्टी की जांच करने आदि के आधुनिक साज सामान है। इन सब के ऊपर यह आशा की जाती है कि अधिकांश कृषि संस्थान फार्म के पर्यावरण में स्थित है जहां खेती करने वाले किसान का प्रवेश आसानी से हो सकता है। यहां वे आसानी से किसान के प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे और उसके साथ बराबरी के आधार पर उस प्रकार का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे जिस प्रकार का दो सहकर्मियों में होता है।

कार्यमूलक साक्षरता के संगठन में (कृषि विस्तार कार्य में बुनियादी तत्व के रूप से) देहाती क्षेत्रों में स्थित कृषि संस्थानों द्वारा पूरी की जाने वाली चार जिम्मेदारियों को देखा जा सकता है। पहले, उनको साक्षरता के उपयोग के रूप में भाग लेने वाले किसानों की मूल और तत्कालीन आवश्यकताओं का विश्लेषण करना चाहिये और उस आधार पर पाठ्यविवरण और पठन सामग्री तैयार करनी चाहिये। उदाहरण के लिये, भारत में अधिक उपज वाली फसलों के कार्यक्रम की यह मांग हैं कि हर एक किसान एक समय सारिणी बनावे, लेने देने के लिए एक सादा सा बही खाता रखे और सरकारी तथा सहकारिता अभि-करणों के साथ सरल पत्र व्यवहार करें। अपने स्थानीय क्षेत्र में विशिष्ट कार्यक्रम के लिये कृषि संस्थान को कार्यक्रम पर कुछ प्रारम्भिक अनुसंधान करना चाहिये और इन आवश्यकताओं से सम्बन्धित पाठों का संकलन करना चाहिये। विश्लेषण और संकलन

का यह कार्य सतत् होगा और केवल उन्हीं कर्मचारियों के द्वारा सम्पादित किया जा सकेगा जिन्हें उन्नत कृषि का व्यावहारिक अनुभव है और साथ ही साथ जिनका शिक्षा मनोविज्ञान तथा पद्धतियों की ओर झुकाव है।

दूसरे, कृषि संस्थान किसानों के साक्षरता कार्यक्रम के प्रशिक्षकों और पर्यवेक्षकों और कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध करेंगे। ये प्रशिक्षक देहात के भीतरी इलाकों में अकेले और बिना किसी स्कूली तामझाम के काम करेंगे। इसलिए उनका प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिये जो समय-समय पर प्रगट होने वाली किसी भी संभावित स्थिति और समस्या का मुकाबिला करने के लिए उन्हें आत्मनिर्भर बना दे। क्योंकि कार्यमूलक साक्षरता एक जटिल प्रक्रिया है। इसलिये उसके आरम्भ में प्रशिक्षण और परीक्षण अनिवार्य है। यह स्पष्ट है कि वह प्रशिक्षण साधारण अध्यापन में जैसा होता है उससे अधिक होगा और उसे कृषि सम्बन्धी व्यवहारों से उद्भूत होना होगा।

तीसरे, देहाती क्षेत्रों में स्थित कृषि शिक्षा संस्थानों को अपने चारों ओर के क्षेत्र में किसानों के साक्षरता कार्यक्रम के लिये 'आधार रेखा' के रूप में काम करना चाहिये। चाहे वह जिला हो चाहे खण्ड हो, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि किसानों के साक्षरता अभियान का मुख्यालय किसी कृषि शिक्षा संस्थान के प्रांगण में स्थित होना चाहिये। यह संभव है कि यह संथान किसानों के संस्थान का रुप ग्रहण कर ले जो नौजवानों के किसी कृषि स्कूल या कालेज के रुप से बिल्कुल भिन्न हो। उस अवस्था में उसके अपने फार्म और प्रयोगशालायें होनी चाहिये। यदि यह संभव न हो सके तो किसानों के संस्थान किसी कृषि कालेज, विश्वविद्यालय या स्कूल के प्रांगण में स्थित होने चाहिये। इन मुख्यालयों पर किसानों के लिये कई अंशकालिक या पूर्णकालिक आवासीय पाठ्यक्रम चलाये जाने चाहिये जिनमें साक्षरता का भी

तत्व होना चाहिये। किसानों के संस्थान को विशेषज्ञों के दल भी रखने चाहिये जो बाहर उन केन्द्रों को जाये जहां प्रशिक्षक अकेला प्रशिक्षण कैम्पों का संचालन कर रहा होता है। ये संस्थान उन सब नवसाक्षर किसानों और महिला किसानों के दलों के लिये मुख्यालय भी होगा जिनके साथ पत्र व्यवहार के माध्यम से सतत और सजीव सम्पर्क स्थापित किया जा सकेगा। वे पत्रों का उत्तर देने और सूचनायें प्रदान करने के लिए एक ब्यूरों भी बनाये रखेंगे। वे रेडियो कार्यक्रमों से भी सम्बन्धित होंगे। दूसरे शब्दों में, किसानों के संस्थान आस पास के नव साक्षर किसानों के लिये अलमा मातेर्स की तरह होगे जिनके पास वे समय समय पर दिशा निर्देशन और परामर्श के लिये जा सकते हैं।

अन्त में, किसानों की साक्षरता में कृषि संस्थानों की भूमिका को सशक्त किया जा सकता है, यदि वे आस पास के नव साक्षर किसानों को कुछ आवश्यक सेवायें प्रदान करने के लिये सरकार के साथ जिम्मेदारी को बटायें। ये सेवायें मिट्टी की जांच करने, बिजली से चलने वाले हलों और ट्रैक्टरों को किराये पर देने, बीज तैयार करने के प्रबन्ध करने, कलपुरजों और औजारों की मरम्मत में सहायता करने और क्रय विक्रय, पेकिन्ग आदि में सलाह देने का रूप ले सकती है। ये सेवायें चाहें कठोरता से साक्षरता कार्य-क्रम का हिस्सा भले ही न हो, पर ये निरक्षरों के लिये साक्षर बनाने का न केवल आकर्षण और नियंत्रण ही प्रदान कर सकेगी वरन् नव साक्षरों के लिये शिक्षा जारी रखने की एक प्रक्रिया भी होगीं। साक्षरता को कठोर खेमों खानों में नहीं भरा जा सकता। इसमें एक तरलता है जिसके कारण उन संगठनों और व्यक्तियों द्वारा, जो साक्षरता प्रदान करने के काम में लगे हैं, यदि अनुगामी पग नहीं उठाये गये तो यह फिर निरक्षरता में लौट सकती है।

कृषि शिक्षा संस्थाओं के बारे में जो कुछ ऊपर कहा गया है

वह उन पर भी और अधिक बल तथा यथार्थता के साथ लागू होता है जो कृषि विस्तार अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं के लिये प्रशिक्षण संस्थानों की श्रेणी में आते हैं। इन कृषि विस्तार अधिकारियों और कार्यर्त्ताओं के उदाहरण जिला कृषि अधिकारी, कृषि विस्तार आयोजक, ग्राम सेवक, पशुप्रजनन आयोजक आदि हैं। नि: सन्देह इन संस्थानों को मार्गदर्शन करना है क्योंकि उनके प्रशिक्षार्थी पहले ही से कृषि उत्पादन कार्यक्रमों में लगे हुये हैं।

जन साक्षरता में कृषि शिक्षा संस्थाओं की भूमिका किसानों के लिये कार्यमूलक साक्षरता की जटिल प्रकृति से उत्पन्न होती है। यह काम तब तक सफलतापूर्वक पूरा नहीं हो सकता, जब तक प्रौढ़ शिक्षा और भारत सरकार के उन विभागों और अन्य संगठनों के बीच परस्पर के सम्बन्ध को पर्याप्त रूप से न समझ लिया जाय, जो कृषि उत्पादन का काम चालू करने और उसका पर्यवेक्षण करने के लिये उत्तरदायी है। प्रौढ़ शिक्षा की प्रगति के लिये शास्त्रीय और सैद्धान्तिक ज्ञान के मन्दिरों के रूप में कृषि शिक्षा संस्थानों की वृद्धि से बढ़कर दूसरी कोई हानिकारक वस्तु नहीं होगी। जब विस्तार कार्य और उत्पादन कार्यक्रमों की बात आयेगी तब शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता को भी समझौता करना पड़ेगा। शिक्षा संस्थाओं और सरकारी विभागों तथा संगठनों को बिना किसी शंका और वैर भाव के हाथ से हाथ मिलाकर साथ साथ चलना होगा। टीम बनाकर कार्य करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है।

अध्याय १०

किसानों के लिए एक सार्वभौमिक विश्वविद्यालय

हाल ही में एक विचार प्रस्तुत किया गया कि राष्ट्र संघ को एक सार्वभौमिक विश्व विद्यालय स्थापित करने में पहल करनी चाहिये। यह विश्व विद्यालय लोगों के बीच बेहतर समझ तथा एक दूसरे की प्रगति की और अच्छी जानकारी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित किया जाना चाहिये। इसका उद्देश्य उस स्थिति को बढ़ावा देना भी होना चाहिये जिसमें युद्ध अनावश्यक हो जायें। हमेशा की तरह, विश्वविद्यालय की संकल्पना को एक बौद्धिक स्तर पर आरम्भ कर दिया गया है और इस बात पर बल दिया जा रहा है कि संसार के उच्चतम श्रेणी के ऐसे विद्वानों और होनहार नवयुवकों का एक सम्मेलन किया जाय जो विश्वविद्यालय की प्रकृति के अनुरुप बौद्धिक वातावरण और व्यक्तियों की संस्था को बढावा दे सके।

स्वभावतः यह सन्देह व्यक्त किये गये हैं कि क्या इस प्रकार के विश्वविद्यालय से उन उच्चतर शिक्षा के केन्द्रों की पुनरावृत्ति नहीं होगी जो संसार के विभिन्न भागों में सदियों के दौरान पनपे हैं और जो अपनी तरह से 'एक संसार' की संकल्पना को भी बढ़ावा देते हैं। ये केन्द्र मनुष्यों के बीच सामंजस्य की भावना के आदर्शों को भी बढ़ावा देते है। दक्षिणी अफ्रीका और पुर्तगाली उपनिवेशों की तरह के कुछ अपवाद हैं जहां मानवजाति की समानता को स्वीकार नहीं किया गया है, किन्तु न्यूनाधिक

रुप से राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों में विश्वविद्यालय यही भूमिका निभाना चाहते हैं। तब नये विश्वविद्यालय या विद्या के नये अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र की उपलब्धि क्या हो सकेगी ? क्या इस प्रकार की संस्था का होना आवश्यक है ?

मेरी राय में, इस प्रकार के नये साहस के लिए तभी औचित्य होगा जब वह ऐसी संस्थान हो जो मुख्य रुप से केवल शिक्षा शास्त्रियों और बौद्धिक व्यक्तियों को एक दूसरे से सम्पर्क के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए और एक संसार के आदर्श में पहिले ही से दीक्षित व्यक्तियों के मिल बैठ कर बातचीत करने के लिए बनाई गई हो। इसके स्थान पर हमें साधारण जन की आर्थिक स्थिति और बौद्धिक साधन को सुधारने की जरूरत है। यह साधारण जन ही उस संसार के अधिकांश का निर्माण करता है, जिसके लिये अन्ततः राष्ट्र संघ विद्यमान है। इस साधारण जन का अधिकांश किसान है। बहुत से प्रौढ़ किसान गांवों में केवल जीवन निर्वाह के स्तर पर ही विद्यमान है। कुछ मध्ययुगीन और यहां तक कि आदिम युगीन स्तर तक का जीवन निर्वाह कर रहे हैं जब कि वह विज्ञान, जिस पर उनकी स्वयं की वृत्तिका आधारित है, तेजी से कुलाचें भर रहा है।

इसीलिए यह सुझाव है कि इससे विश्वविद्यालय या कालेज की उस परम्परागत संकलपना से कुछ प्रथकता होनी चाहिये जिसमें प्रांगण हो और उस प्रांगण में बौद्धिक व्यक्ति एकत्रित हों, अनुसंधान करें और एक दूसरे को सूचना तथा ज्ञान प्रदान करें। इसके स्थान पर राष्ट्र संघ और उसके विशिष्टीकृत अभिकरणों तथा उसके कुछ अपेक्षाकृत धनाढ्य सदस्यों को ऐसी संस्था बनाने के लिए धन की व्यवस्था करनी चाहिये जिसका आवश्यक रुप से अपना प्रांगण चाहें न हो और जो थोड़े से ही कर्मचारियों से अपना काम चला सके। लेकिन यह किसानों के लिये "आजीवन शिक्षण" का विश्वविद्यालय होना चाहिये। इस संस्थान को

किसान के लिये सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के नाम से पुकारा जा सकता है। इस संस्थान में संसार के विभिन्न भागों से लिये गये उच्चतम श्रेणी के विशेषज्ञ होने चाहिये जिससे विभिन्न क्षेत्रों की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व हो सके। विश्वविद्यालय के विस्तृत रुप से छिटके हुये संकायों को अक्सर एक दूसरे के साथ विचार विनिमय करते रहना चाहिये। उन्हें संसार के सभी जगहों से सूचनायें मिलती रहनी चाहिये और साथ ही साथ उन्हें संसार के विभिन्न भागों में पत्र व्यवहार के रूप में एक सेवा भी चलानी चाहिये। ऐसा करने में, इस बात की जरुरत नहीं कि उसका अपना प्रांगण हो। इसकी जगह संसार के कृषि विश्वविद्यालयों और उन्नत कालेजों तथा अनुसंधान केन्द्रों में उसके अपने प्रतिनिधि और विद्या परिषदें हो सकती हैं। इसी समय वह उन रेडियों और दूरदर्शन केन्द्रों, संग्रहालयों और प्रदर्शनियों के साथ साझेदारी की हैसियत से अपने आपको उचित रुप से लगा सकता है, जो आजकल किसानों को सूचनायें और नवीनतम प्रविधियाँ प्रदान करने में लगे हुए हैं। इसका एक छोटा सा प्रशासनिक और संगठनात्मक कार्यालय तो होगा ही पर यह कभी-कभी किसानों को समर्पित और किसानों के विद्या संघ की बैठकें भी बुला सकता है।

इसलिए, यह उन विश्वविद्यालयों से, जो देशों में राष्ट्रीय स्तरों पर बिकसित हुये है, एक अत्यन्त भिन्न प्रकार का विश्वविद्यालय होगा। फिर भी यह उस मुक्त विश्वविद्यलय की संकलपना के निकटतर होगा जिसकी संसार के विभिन्न भागों में मुख्यत: ग्रेट ब्रिटेन में आजकल चर्चा की जा रही है।

इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी वे होंगे जो आधुनिक प्रविधि और विज्ञानों पर आधारित वास्तविक कृषि सम्बन्धी क्रिया कलाप कर रहे हैं, या उनको दिशानिर्देश देने में लगे हुये हैं और जो प्रतिमास और अधिक जानकारी पाना चाहते हैं। यह

जानकारी वे कोई उपाधियां पाने के लिए नहीं प्राप्त करना चाहते किन्तु नवीनतम विकासों से अपने आपको भली-भाँति परिचित रखने के लिये प्राप्त करना चाहते हैं। वे यह जानकारी कुछ अनुसंधान कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए भी प्राप्त करना चाहते हैं जिनके लिये केवल प्रयोगशालाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत किसानों के खेतों पर उच्चस्तरीय प्रयोगों की आवश्यकता होती है। इसमें वे मछुओं, ग्वालों, गडरियों और मुर्गीपालन का काम करने वालों आदि को भी शामिल कर सकते हैं। इसमें कोई बाध्यता नहीं होगी, परन्तु उन्हें भर्ती करने का प्रयास किया जायगा और न्यूनतम फीस ली जायगी। किसानों के इस अनोखे सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से विश्वविद्यालय में भर्ती करने की जो फीस ली जायगी उस के बदले में उन्हें पुस्तकों से उद्धरण, विवरणिकायें, चित्र और अन्य सामग्री प्रदान की जायगी।

इस संकाय में केवल उन्हीं विशेषज्ञों को ही शामिल नहीं किया जाना चाहिये जिनका सुझाव दिया गया है किन्तु ऐसे व्यक्ति भी शामिल किये जाने चाहिये जो संसार के कुछ अन्य भागों के विद्यार्थियों की भाषायें जानते हों। वे विद्यार्थियों की भाषाओं में उस सामग्री को अनुवादित कर देंगे जो उनके लिये महत्वपूर्ण होगी। यह सामग्री अक्सर विभिन्न विशिष्टीकृत विद्याशाखाओं के लिए खासतौर से तैयार कराई जायेगी। यह सामग्री संसार के विभिन्न भागों के किसान विद्यार्थियों के लिये प्रश्नों के उत्तर देने और स्पष्टीकरण प्रदान करने के रुप में लगभग उसी प्रकार तैयार की जायगी जिस प्रकार हमेशा की जाती है। इस प्रकार ये किसान अन्तहीन शिक्षा की प्रक्रिया में भागीदार हो जायेंगे। यह एक ऐसा विश्वविद्यालय होगा जो न तो परम्परागत नवयुवकों के विश्वविद्यालयों और डिग्रियाँ देने वाले कालेजों की तरह सत्र बद्ध पाठ्यक्रम ही प्रदान करेगा और न

इसमें ऐसे समारोह ही होंगे जिनकी समाप्ति पर डिग्रियां और डिप्लोमा प्रदान किये जाते हैं। यह तो आजीवन शिक्षण का एक ऐसा विश्वविद्यालय होगा जो किसान को प्रतिमास संसार भर में विकसित हो रहीं नवीनतम प्रविधियों में भाग लेते रहने के लिए समर्थ बनायेगा।

किसानों के ऐसे विश्वविद्यालय के होने की आवश्यकता यह है कि आज कृषि और मत्स्य पालन आदि की प्रविधियों पर कुछ अत्याधुनिक जानकारी अंग्रेजी फ्रेन्च और रशियन जैसी भाषाओं में ही प्रकाशित हो रही है। पूर्वी देशों की भाषाओं में बहुत कम प्रकाशित हो रही है। इसलिए यद्यपि राष्ट्र संघ और उसके विशिष्टीकृत अभिकरण विश्व संगठन के रुप में माने जाते है, तथापि वे मनुष्यों के एक बहुत कड़े भाग को कुछ छोटे-मोटे साहसी अपवादों सहित) सही अर्थों में सूचित कर सकने में समर्थ नहीं हो सके हैं। मनुष्यों का यह बहुत बड़ा भाग उस तबके का है जो संसार की अर्थव्यवस्था में सर्वोच्च महत्वपूर्ण और अति आवश्यक व्यवसाय अर्थात् खेती, मछलीपालन, पशुपालन आदि से सम्बन्धित है। प्रस्तावित सार्वभौमिक विश्वविद्यालय न केवल राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों के माध्यम से ही काम करेगा बल्कि रेडियो और दूरदर्शन के संगठनों, संग्रहालयों और ग्रामीण पुस्तकालयों को भी इस में अन्तर्ग्रस्त कर लेगा। इन सबकी पूरी सूची सार्वभौमिक विश्वविद्यालय में रक्खी जायगी। इसके लिये अनिवार्य रुप से यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक विद्यार्थी के साथ सीधा और व्यक्तिगत सम्पर्क रखा जाय यद्यपि ऐसे सम्पर्कों से इनकार भी नहीं किया जायेगा।

यह कभी-कभी पत्राचार के द्वारा और अक्सर सार्वभौमिक विश्वविद्यालय की विद्या संघ के सदस्यों को विवरण कार्य और परिपत्र जारी करके दिशानिर्देश देने के तरीके को प्रोत्साहित करके किया जा सकता है। ये सदस्य स्थानीय परिस्थितियों और

आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसान विद्यार्थियों के पास सूचनायें पहुंचा सकते है और कुछ परीक्षित तरीकों का प्रयोग कर सकते हैं।

इन तरीकों पर एक से अधिक बार अन्यत्र चर्चा की गई है। सबसे महत्वपूर्ण तरीका, निःसन्देह, चुनीदा किसानों के खेतों पर प्रदर्शनों का है। किन्तु रेडियो, दूरदर्शन, वाईडियो टेप रिकोर्डर, सुपर ८ एम एम फिल्म, स्थानीय भाषाओं में पठन सामग्री और संग्रहालयों आदि पर भी जानकारी प्रदान करने का तरीका कम महत्वपूर्ण नहीं है।

सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा किसानों के छोटे दलों के गठन को प्रोत्साहन देना एक दूसरी संभावना हो सकती है। इस प्रकार सार्वभौमिक विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी एक विशेष शैक्षणिक कार्य सम्पादित कर सकता है। अर्थात् वह अपना खुद का एक छोटा सा दल चला सकता है, जिसमें वह सार्वभौमिक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध निकायों से उसे मिली जानकारी पर चर्चा कर सकता है।

प्रस्तावित विश्वविद्यालय की तरह का विश्व केन्द्र क्यों जरुरी है? यह इस लिए जरुरी है, क्योंकि विशेषतः विकासशील देशों के लिए नई समस्यायें उठ रही हैं। ये वे समस्यायें हैं जिनका संसार के अन्य दूसरे भागों के लिए भी एक जैसा ही महत्व है। लेटिन अमरीका के देशों को वैसी ही कठिनाइयां हुई जैसी दक्षिण भारत के प्रदेशों को। यही बात दक्षिण पूर्व एशिया तथा संसार के कुछ अन्य भागों के बारे में भी सच है। निःसन्देह, कुछ लाभदायक संगठन है; जैसे लन्दन में कामन वेल्थ का ब्यूरो। लेकिन ये उच्च स्तरीय अनुसंधानकर्त्ताओं और वैज्ञानिकों तक ही सीमित हैं, जिनको कई संस्थानों और विश्वविद्यालयों के माध्यम से एक दूसरे से मिलने और विचारों का आदान प्रदान करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। किन्तु सामान्य जन के लिए राष्ट्रसंघ और

उसके विशिष्टीकृत अभिकरण क्या कर सकते हैं ? इसलिये यदि सार्वभौमिक विश्वविद्यालय बनना है तो नई दिशा की ओर प्रयास करना अच्छा होगा। यदि किसी विशेष निधि का निर्माण हो तो वह उस प्रकार के संगठन के लिये उपलब्ध होना चाहिये जिस प्रकार के संगठन की कल्पना ऊपर की गई है। यह संगठन संसार भर के ग्रामीण क्षेत्रों के सामान्य जन के लाभ के लिए होना चाहिये।

यह सच है कि विश्वविद्यालय का सम्बन्ध मात्र व्यवसाय और जीविका के साधनों से नहीं होता। यह तो मस्तिष्क और अभि-रुचि को समृद्ध बनाने का स्थान है। निःसन्देह मस्तिष्क की ऐसी समृद्धि लोगों की आर्थिक अवस्था पर बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर करती है। किन्तु यदि सार्वभौमिक विश्वविद्यालय की स्थापना की जायगी तो वह संसार के विभिन्न भागों से, विशेष करके विकासशील संसार से–चुनीदा फार्म मुखियाओं को अन्तर्ग्रस्त कर लेगा। फिर जब इन खेती करने वाले समुदायों के बीच एक बार खेती के बारे में नवीनतम जानकारी उनकी पहुंच के भीतर तक लाने के साधन के रुप में उसकी प्रामाणिकता स्थापित हो जायगी और जब एक बार स्थानीय विश्वविद्यालय रेडियो, दूरदर्शन तथा अन्य निकाय, जो सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के सहयोगी या उसके भाग होंगे, प्रौढ़ किसान शिक्षार्थियों को उचित दिशा निर्देश देने लगेंगे, तब सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के लिए यह कठिन नहीं होगा कि वह इन सम्पर्कों का प्रयोग इन समुदायों की लोक और परम्परागत विरासत को बढ़ाने के लिए कर सके। किसी देहाती समुदायों की लोक और परम्परागत विरासत जीवित रहेगी या नहीं, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। शायद यह आंशिक रुप से इस धारणा पर आधारित है कि जो कुछ अब लोक और पारस्परिक सांस्कृतिक रुपों में दिखाई देता है, वह अपरिवर्तित, प्राचीन और अपरिवर्तनीय है, भले

ही वे नाट्यों में या लीला आदि के रूपों में प्रदर्शित किया गया हो। वास्तव में, यदि ध्यान पूर्वक उसका अध्ययन किया जाय तो पाया जायगा कि उनमें हमेशा ही परिवर्तन होता रहा है, चाहे ये परिवर्तन कभी-कभी बहुत धीमा दिखाई दे। उन्होंने अक्सर समाजों तथा विशिष्ट घटनाओं और जीवन तथा अभिवृत्तियों की परिवर्तनशील रीतियों को प्रतिबिम्बित किया है। उदाहरण के लिए, परम्परागत नाटक का या परम्परागत लीला का एक सूक्ष्म अध्ययन यह संकेत देगा कि एक निश्चित अवधि के दौरान उनकी प्रेषणीयता के तरीकों में कुछ मनोरंजक परिवर्तन हुए हैं। अभी बहुत हाल ही में एक लीला गायक दिल्ली आया और उसने महाभारत के एक प्रसिद्ध दृश्य का आश्चर्यजनक प्रदर्शन किया जिसमें श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का परामर्श दिया था। इस श्री कृष्ण ने ऐसी अपूर्व चित्रमय अभिव्यक्ति का प्रयोग किया था जिसका प्रभाव यह पड़ता था कि "अर्जुन के मस्तिष्क में एक छोटा सा सूराख हो गया है जिसके कारण वह इतना हतोत्साहित है और अकर्मण्यता के पक्ष में दलीलें देने की कोशिश कर रहा है।" यह वास्तव में एक भाषा सम्बन्धी और प्रेषणीयता सम्बन्धी परिवर्तन था। लेकिन अध्ययनों ने यह उद्घाटित कर दिया है कि शताब्दियों के दौरान सारभूत परिवर्तन हुए हैं। इसलिए यह सोचना सही होगा कि संसार भर में शहरी सभ्यता द्वारा समाजों की लोक और परम्परागत संस्कृति को निश्चित रूप से आमूल चूल नष्ट भ्रष्ट कर दिया जायेगा। यह निःसन्देह सच है कि इतिहास मे पहले कभी गांवों पर मासमीडिया का ऐसा स्टीम रोलर नहीं चलाया गया था जिसमें न तो इस बात ख्याल रखा गया है कि वह लोगों पर कुरूचिपूर्ण प्रभाव डालेगा और न ही इस बात का ख्याल रखा गया है कि उसमें ग्रामीण लोग शामिल नही होंगे। लेकिन बात यह है कि चाहे यह शहरी लोगों के लिए हो चाहे देहाती लोगों के लिए, यदि व्यवसायों और काम धन्धों

से अलग विभिन्न प्रकार के क्रिया कलापों में, सांस्कृतिक ढंग से भाग लेने के लिये लोग कुछ अवकाश के क्षण निकाल सकें तो जीवन अर्थपूर्ण बन जाता है। प्रविधिकी अधिक कार्यभार और अधिक अवकाश, दोनों ही चीजें लाती है। वास्तव में, हाल ही में, जर्मनी में बहुत से नियोक्ताओं ने यह मालूम किया है कि यदि वे चाय की छुट्टी के समय सामूहिक नृत्यों का आयोजन करें तो अपने कर्मचारियों से और अधिक अच्छा काम पा सकते हैं। प्रस्तावित सार्वभौमिक विश्वविद्यालय को इस लिये और लोक परम्परागत रूपों के अध्ययन में, जो कि योग्य विद्वानों द्वारा पहले भी कई बार किया जा चुका है, न केवल संकोच ही नहीं करना चाहिए वरन् प्रौढ़ शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित भी करना चाहिये कि वे उन सामाजिक क्रियाकलापों को जारी रक्खें चाहे वे शहरी मनोरंजनों द्वारा अक्सर प्रताड़ित भले ही हों। इस प्रकार प्रस्तावित सार्वभौमिक विश्व विद्यालय विकास शील संसार की जनता का सच्चा शिक्षण केन्द्र बन जायेगा। किसानों के लिए प्रौढ़ शिक्षा भी अपने चरम बिन्दु पर पहुंच जायगी और यदि सम्भव हो सका तो उसे संसारव्यापी मान्यता भी मिल जायगी।

किसानों के लिए सार्वभौमिक विश्व विद्यालय तब तक अस्तित्व में नहीं आ सकता जब तक कि विश्वव्यापी वित्त व्यवस्था करने वाले अभिकरण यह अनुभव नहीं कर लेते कि संसार भर के, मुख्यतः खाद्यान की कमी वाले देशों के किसानों का प्रशिक्षण एक अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है। समय समय पर धनी देशों की राष्ट्रीय आय का एक प्रतिशत सहायता के रुप में जमा करने के लिए दलीले दी जाती रहीं हैं। यह केवल कुछ ही मामलों में जमा हो पाया है। अंशतः कारण इसका यह है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बावजूद बहुत से धनी देशों ने अपनी राष्ट्रीय आयों में से पर्याप्त धन युद्ध सम्बन्धी उद्योग पर खर्च करते रहना जारी रखा है। फिर भी पुनर्रचना और विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और

नवगठित क्षेत्रीय बैंकों जैसे एशियन बैंक जैसे निकायों की नई अभिवृत्ति कुछ आशा उत्पन्न करती है। कृषि अनुसंधान में सहायता के लिए नये सम्मेलन ने भी, जिसमें कि कई बहुपार्श्वीय और द्विपार्श्वीय संस्थाओं ने भाग लिया है, कुछ आशा उत्पन्न की है। इस विषय पर कुछ देशों में जो बातचीत हुई है उससे यह संकेत मिलता है कि विश्वविद्यालय सम्बन्धो लोग यह अनुभव करते हैं कि वित्त व्यवस्था करने वाले अभिकरणों को केवल उच्चतर अनुसंधान पर ही धन व्यय करना चाहिये और विस्तार कार्य राष्ट्रीय संसाधनों के लिऐ छोड़ देना चाहिए। विकासशील देशों की सरकारों को कृषि की उन्नति के लिए खाद बीज आदि के उद्योग लगाने को साधन खोजने पड़ंगे। इसलिए उनकी इन प्रायोजनाओं में किसानों, कारखानों के मजदूरों, मछुओं आदि के शिक्षा के लिये, यदि है तो, सीमान्त व्यवस्था ही है। आजकल विश्व बैंक (पूनर्रचना और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक) कुछ कृषि प्रायोजनाओं के लिए ऋण देता है किन्तु इनमें से बहुत कम में किसानों की शिक्षा के लिये व्यवस्था का कोई तत्व है। क्योंकि पुनर्रचना और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक को, विस्तार और प्रशिक्षण के अभाव में, उनकी कुछ सर्वोत्तम योजनाओं के असफल हो जाने के कई अनुभव हुए हैं, इसलिए उनके लिए यह बुद्धिमत्ता पूर्ण होगा कि वे किसानों के प्रशिक्षण के लिए ऐसे विकासशील देशों की धन से सहायता करें। इसे वे प्रस्तावित किसानों के सार्वभौमिक विश्वविद्यालय माध्यम से चला सकते हैं।

यह सच है कि कई प्रायोजनाओं ने, जिसे संचार कहा गया है, उसकी व्यवस्था की है। लेकिन विकासशील देशों के किसानों की दृष्टि में संचार और विस्तार तथा प्रशिक्षण के बीच भेद स्पष्ट बहुत नहीं है। इसलिए, आर्थिक सहायता वाली प्रायोजनाओं में, इन सुविधाओं के लिए व्यवस्थायें होनी चाहिए और इस बात का काफी बारीकी के साथ ब्यौरा भी होना चाहिए कि उनका

प्रस्तावित संचालन इन क्षेत्रों में कैसे होगा।

एक दूसरी भूमिका, जो कृषि के लिए सार्वभौमिक विश्वविद्यालय अदा कर सकता है, यह है कि वह पत्राचार पाठ्यक्रमों के द्वारा तथा गांव के अध्यापकों को प्रशिक्षण देने वाले अध्यापक, प्रशिक्षण कालेजों और विश्वविद्यालयों को दिशानिर्देशन देकर कृषि की नई प्रविधि में सहायता प्रदान करे। यह विश्वविद्यालय विभिन्न प्रकार की दृश्य श्रव्य प्रविधियों पर अनुसंधान भी करा सकता है, जो विकासशील देशों में किसानों द्वारा उनकी अपनी परिस्थिति में, उनकी छोटी जोतों पर, प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सार्वभौमिक विश्वविद्यालय को विकासशील देशों में, या तो राष्ट्रीय और स्थानीय समाचार पत्रों के विशेष कालमों के लिए या किसानों के विशिष्ट समाचार पत्रों के लिए, लेख आदि की सुविधायें प्रदान करके प्रकाशन को उन्नत बनाने में समर्थ होना चाहिए।

अन्त में, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि किसानों के सार्वभौमिक विश्वविद्यालय को आजीवन शिक्षा का स्रोत होना चाहिये। इसलिए, सार्वभौमिक विश्वविद्यालय के लिए यह आवश्यक होगा कि वह आजीवन शिक्षा के मदों को पहचान ले, जिसके द्वारा उसे अपने विद्यार्थियों को आगे भी दिशानिर्देश प्रदान करना होगा। इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

(क) विद्या सम्वन्धी क्षेत्र–विवरणिकायें और पत्राचार,

(ख) आर्थिक क्षेत्र–विभिन्न आर्थिक क्रिया कलापों के लिए राष्ट्रीय बैंकों का किसानों आदि को और विभिन्न प्रकार के खादों, बीजों आदि के निर्माताओं और वितरकों को ऋण देना जारी रखना,

(ग) सामाजिक क्षेत्र–परम्परागत पाठ पूजा, संस्थायें, छोटे कस्बों में सामाजिक क्लबें और सामाजिक जीवन के क्रिया कलाप,

(घ) दूरदर्शन और रेडियो, फिल्म पट्टियाँ और विडीओ रेकोर्डर आदि।

अध्याय ११

स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका

क्या किसानों की प्रौढ़ शिक्षा के लिए, गैर सरकारी या स्वयं सेवी संगठनों में विशेष क्षमता है ? अधिकांश यूरोपीय देशों, खासतौर से स्कैंडेनेवियन समूह, डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे तथा जापान के अनुभव यह प्रदर्शित करते हैं कि किसानों, मछुओं आदि की सहकारी समितियां प्राथमिक उत्पादकों के प्रशिक्षण के लिए अत्यन्त प्रभावी अभिकरण हैं। यह अधिकतर इसलिए संभव है कि ये सहकारी समितियाँ इस काम के साथ-साथ बीज खाद आदि खेती में डाली जाने वाली चीजे भी देती हैं, व्यवहार की सेवायें (जैसे कीड़े मारने वाली दवाईयां, खादें छिड़कना, भूमि विकास करना आदि) प्रदान करती हैं, और कई जगह तो किसानों के उत्पादों का क्रय विक्रय भी करती हैं।

उन देशों में, सहकारिताओं की शक्ति कार्यकुशल प्रबन्ध-संवर्ग में भी निहित है; यद्यपि यह स्वेच्छिक है। सहकारी समितियाँ इस बात का ध्यान रखती हैं कि वे पूर्ण कालिक वेतन भोगी कर्मचारी नियुक्त करें। इन कर्मचारियों में यह क्षमता होती है कि वे किसानों के लिये प्रशिक्षण सुविधाओं का आयोजन कर सकें और कृषि विशेषज्ञों तथा किसानों के बीच मध्यस्थ के रूप में काम कर सकें। ऋण के मामलों में उनकी अपनी दक्षता उन्हें इस योग्य बनाती है कि वे ऋण कार्यक्रमों को समझने और व्याख्या करने में किसानों की सहायता कर सकें। इस प्रकार समिति के सभी सदस्य किसानों के लिए प्राथमिक प्रशिक्षण दल है, न कि के केवल उन्हीं के लिए जो उसके पदाधिकारी हैं।

जापान ही शायद इस बात की सबसे अच्छी मिसाल प्रस्तुत करता है कि छोटी जोतों सहित किसी घनी आबादी वाले देश में और जमींदारी तथा अर्ध अधिनायकवादी प्रणालियों से सघन और मिलीजुली खेती में लगे हुए छोटे किसानों के व्यक्तिगत स्वामित्व में संक्रमण के सन्दर्भ में, कैसे सहकारी संगठन उगती हुई कृषि अर्थ व्यवस्था के मुख्य आधार के रूप में उभरे हैं। सहकारी समितियों द्वारा किसानों को नेतृत्व प्रदान किया जाता है। एक यूनिट सहकारिता में अक्सर लगभग ६००० सदस्यों की बड़ी सदस्य संख्या होती है। इसके साधारणतया ६ विभाग होते हैं और ऋण, चुँगी सेवायें, संभरण, क्रय विक्रय, जीवन बीमा और नेतृत्व इसके कामों के अन्तर्गत होते हैं। कुछ के चारा विकास के लिये विशेष विभाग होते हैं।

यूनिट सहकारिताओं का एक महत्वपूर्ण काम प्रत्येक सदस्य किसान को अपनी खेती की योजना बनाने में सहायता करना है। यह प्रक्रिया परोक्ष रूप से कृषि प्रबन्ध में एक तरह का प्रशिक्षण है और सभी अवस्थाओं में किसान के काम करने का आधार है। एक पक्की और सही खेती की योजना बनाने में सहकारिता की विशेष दिलचस्पी होती है, क्योंकि यही उसके बर्ष भर के लेन देन का हिसाब लगाने का आधार होता है। इसी के आधार पर वह हिसाब लगाती है कि उसे किसान को क्या क्या और कितना कितना कच्चा माल देना है, उसके लिए उसे किस चीज का और कितना आयात करना है, और किस चीज का कितना निर्यात करना है। इस शिक्षण प्रक्रिया के मूल में पारस्परिक स्वार्थ होता है।

कई यूनिट सहकारितायें प्रीफेक्चर स्तरीय केन्द्र से सम्बद्ध होती हैं जो प्रीफेक्चर की सहकारी यूनिटों की संस्था द्वारा चलाये जाते हैं। यह केन्द्र भी कृषि सहकारिता संस्था के राष्ट्रीय क्रय संघ की एक तरह की शाखा होती है। यह अक्सर तकनीकी सेवा,

अनुकूली अनुसंधान और प्रशिक्षण का सम्मिश्रण होता है। अनुकूली अनुसंधान संस्थान का राष्ट्रीय स्तर के अनुसंधान संस्थाओं और सरकार के जिला विस्तार कर्मचारियों से सम्पर्क रहता है।

इस प्रकार केन्द्र अपनी मिली जुली प्रकृति के कारण और इस कारण भी कि यह अधिकांश किसानों को आसानी से कई सुविधायें प्रदान करता है, सहकारिताओं के व्यक्तिगत सदस्यों और दलों को कई प्रकार के प्रशिक्षण देने में समर्थ होता है। सामान्यत: प्रत्येक केन्द्र में रसायनों (जीवनाशकों), रासायनिक खादों, खाद्य उत्पादों, पशुआहारों और मशीनों का परीक्षण करने के लिये और किसानों के प्रयोग के लिए प्रमाणित करने के लिए प्रयोगशालायें होती हैं। जब खेतों पर उत्पन्न हुई समस्याओं की सूचना दी जाती है तब ये प्रयोगशालायें आरम्भत: उसके काम में लग सकती हैं। यदि समस्या की जटिलता के कारण उन्हें सफलता नहीं मिलती तो वे उस मामले का आवश्यक प्रविधिक विवरणों सहित राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान को भेज देती हैं। केन्द्र की प्रयोगशाला प्रीफेक्चर के किसानों के लिए सीखने का एक वातावरण उत्पन्न करती हैं।

केन्द्र पर किसान युवकों के लिए कई पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। एक लोकप्रिय पाठ्यक्रम कृषि मशीनों की मरम्मत का है। छोटे किसानों के लिए उपयोगी मशीनों में नवीनता के महत्व को ध्यान में रखते हुए केन्द्र अक्सर नवीनतम औजारों और युक्तियों की प्रदर्शनी भी लगाता है। केन्द्र साधारण प्रयोग की मशीनरी भी अपने पास रखता है। इस प्रकार केन्द्र पर रखे एक बड़े चावल प्रेशर का बारी बारी से २० किसान प्रयोग कर सकते हैं। क्योंकि सहकारी यूनिटें उपभोक्ता वस्तुयें और दूरदर्शन सेट भी बेचती हैं, इसलिए प्रीफेक्चर केन्द्र दूरदर्शन सेटों या अन्य उपभोक्ताओं के इस्तेमाल की जटिल मशीनरियों की मरम्मत और

रख रखाव का पाठ्यक्रम भी चला सकते हैं।

बहुत से साज सामान और दूसरी आवश्यकताओं के लिए राष्ट्रीय संघ (जेन्कोरेन) द्वारा पूंजी और ऋण प्रदान किए जाते हैं। १९७० में, राष्ट्रीय स्तर पर दो सहकारी संघ थे—एक विपणन के लिए और दूसरा खरीददारी के लिए–लेकिन उनके आपस में विलय होने की बात थी।

कृषि विकास और प्रशिक्षण में सहकारी पद्धति की मुख्य भूमिका के लिये, भारत जैसे देश के मार्ग में, क्या चीज आड़े आती है? भारत का राष्ट्रीय सहकारिता संघ है जिसके पास नई प्रायोजनाओं के लिए सरकार द्वारा दिया गया पर्याप्त धन है। इसका राष्ट्रीय कृषि विपणन संघ भी है। सहकारी समितियों की संख्या भी काफी बढ़ गई है।

कृषि विकास में सहकारी ढांचे की असमान भूमिका का एक मुख्य कारण यह रहा है कि देहातों में व्यक्तिगत ऋण दाताओं और व्यक्तिगत गल्ले का धंधा करने वालों की जड़ें गहरी और परम्परागत रूप से जकड़ी हुई हैं। सहकारिताओं की प्रगति के विरूद्ध उनका सर्वव्यापी और अक्सर भ्रामक निहित स्वार्थ बन गया है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता के बाद जमींदारी और मौरूसीदारी के उन्मूलन के साथ इन विचौलियों में से बहुतों ने, जिनकी अपनी खुद की लम्बी चौड़ी जमीने हैं, यह लाभदायक पाया कि वे मुख्यत: अपने भाई भतीजों और रिश्तेदारों को सदस्य बना कर न्यूनतम आवश्यक सदस्य संख्या के साथ सहकारी समितियां बना लें। इन सहकारी समितियों ने शीघ्र ही उस उदार सहायता और ऋण को हथिया लिया जिसे सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए इच्छुक, स्वतंत्र भारत की सरकार ने देने के लिये कहा था। फिर भारत में सहकारिता आन्दोलन की वृद्धि, १९०५ से, यूनिट स्तर पर थोड़ा थोड़ा करके काम शुरू करने की नीति द्वारा अवरुद्ध होती रही है। पहले केवल साख

सहकारी समितियां ही थी, जिन्होंने स्थिर कृषि अर्थव्यवस्था में केवल इस बात को ही प्रोत्साहन दिया कि कृषि सम्बन्धी ऋणों को घर-गृहस्थी के दूसरे प्रयोगों और शादी मौत के खर्चों में लगा दिया जाय। जब इन ऋणों की कड़ाई के साथ वसूली की गई तब किसान भयभीत हो गये और आखिरकार सहकारिता शब्द ही बकाया के बदले में कर्जदार को अपनी धन सम्पत्ति से वंचित करने वाले एक निर्दय तन्त्र के रूप में जाना जाने लगा। गन्ना सहकारी समितियां भलीभांति शुरू हुई थी लेकिन जल्दी ही देश के कई भागों में वे स्थानीय राजनीतिक शक्ति के दुर्ग बन गई। पदाधिकारियों ने सोसायटी के धन और स्थिति को स्थानीय पंचायतों में अपनी स्थिति बनाने के लिए और राज्य विधान सभाओं के लिए चुनाव के दाव पेचों में इस्तेमाल किया। उपभोक्ता सहकारी समितियां अधिकतर अलाभकर बन गई है और उनके घाटे सरकार के लिए सरदर्द बन रहे हैं। विपणन सहकारी समितियां, संयुक्त कृषि सहकारी समितियां, वन सहकारी समितियां सभी अपने अपने रास्तों पर चल चुकी हैं और अपनी सीमित खण्डात्मक प्रकृति के कारण और सहयोगी संस्थाओं के साथ पर्याप्त चालन सम्बन्धी सम्पर्कों के अभाव में, वे अक्सर कार्य-अक्षमता और भ्रष्टाचार की दयनीय दर्शक बन गई है।

यह नहीं कि भारत भर में सहकारी आन्दोलन का यही भाग्य हुआ है। इसके विपरीत सफलता के ज्वलन्त उदाहरण भी हैं; खासतौर से महाराष्ट्र, गुजरात, मैसूर के भागों और तमिलनाडु में। शायद सर्वोत्तम परिणाम वहीं प्राप्त हुए हैं, जहां सदस्यों द्वारा उत्पादित की जा सकने वाली जिन्सों के लिए नये बाजारों की मांग पर, सहकारी समितियों को विकसित किया गया था। इस प्रकार गुजरात के केरा जिले के आनन्द नामक स्थान पर दुग्ध सहकारी समितियों के अत्यन्त कार्यकुशल और प्रसिद्ध कार्य जाल की जो अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, उसके मूल में यह बात है कि

दूध तथा दूध से बने पदार्थों के लिए बम्बई में और बाद में सहस्त्र सेना में, एक निश्चित और बढ़ता हुआ बाजार था। कैरा सहकारी समितियां इस बात का भी सर्वोत्तम उदाहरण है कि ये यूनिट स्तर पर बहु प्रयोजनीय कार्य करती हैं और इनके पीछे एक अतिसावधान पद्धति और सुस्पष्ट व्यापार नीति है जिसके ऊपर शिखर संगठन चलाया जाता है। बहु प्रयोजनीय भूमिका कुछ प्रसिद्ध सहकारी संगठनों जैसे महाराष्ट्र में उरूली-कांचन और मैसूर के माणड्य की सफलताओं का भी कारण बनी है। पहली में तो नेतृत्व की मिशनरी भावना ने और बाद की में व्यापार की तीक्ष्णता ने सहकारी समितियों को जीवित रखा ।

इन्होंने और देश के अन्य सफल सहकारी संगठनों ने अपने सदस्यों को व्यावसायिक और व्यापारिक दोनों ही पक्षों में शिक्षित करने में विशेष मूमिका निभाई है। भारत में व्यवस्थित प्रशिक्षण अधिकांशतः सहकारिताओं के प्रबन्धकों और सहकारी आन्दोलन को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारियों तक ही सीमित रहा है। अधिकांश पाठ्यक्रम सीधे या परोक्ष रूप से राष्ट्रीय सहकारिता विकास योजनाओं के अधीन आयोजित किये गये हैं। कर्मचारियों के लिए कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्ण रूप से स्वयं सहकारी संस्थाओं द्वारा अपनी कमाई से चलाये जाते हैं। केरा जिला दुग्ध सहकारी संघ एक ऐसा अपवाद है जिसकी तुलना अधिकांश बातों में संसार के कुछ सर्वोत्तम सहकारी अधिकरणों से की जा सकती है।

फिर भी, समग्र चित्र एक सरकार द्वारा शासित सहकारी आन्दोलन ही का है जो केवल कभी कभी और कदाचित ही स्थानीय अभिप्रेरणा के चिन्ह प्रदर्शित करता है। क्या इसका अर्थ यह है कि भारत में सहकारिता आन्दोलन का भविष्य यदि शोकपूर्ण नहीं तो अनिश्चित अवश्य है? इस बात में विश्वास करने के प्रबल कारण हैं कि ऐसा निराशापूर्ण दृष्टिकोण,

रखना सही नहीं है। जैसे जैसे हरित क्रान्ति; छोटे-छोटे खेतों, मछुओं, मुर्गी पालकों और दुग्ध उत्पादकों आदि तक फैलती जायगी वैसे ही वैसे उन सबको एक साथ करने के लिए संगठनों की आवश्यकता बढ़ेगी। लेकिन आज भारत को जिस चीज की आवश्यकता प्रतीत होती है वह अन्तर्कालीन संगठनों का पैदा होना है। ये संगठन क्षेत्रों के, संस्थाओं के और व्यवसायों के संगठन हो सकते हैं। इन संगठनों को सहकारिताओं की अपेक्षा अधिक लचीला, छोटे आदमी को अधिक निबाहने वाला तथा किसानों का विश्वास करने और निवेश कार्यक्रमों की योजना बनाने और कार्यान्वित करने में अधिक साहसी होना पड़ेगा। उनकी जड़ें धरती में और अधिक गहरी जमानी होंगी। यदि उनके संगठनों का भार ऐसी स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा उठा लिया जाये जो आदर्श द्वारा प्रेरित और जनता की सेवा तथा प्रगति के प्रति सर्मपित हों, तो उनमें ये सब गुण आ सकते हैं।

देश में ऐसी स्वयं सेवी संस्थाओं की पृष्ठभूमिका क्या है और कृषि के क्षेत्र में, वे हाल के वर्षों में किस प्रकार अपना निर्णायक प्रवेश करती प्रतीत होती हैं, इस बात का हमें परीक्षण करना चाहिए। भारतीय कृषि में क्रान्ति की एक अभिव्यक्ति यह रही है कि स्वयं सेवी संगठनों ने खेतों पर प्रशिक्षण सहित उत्पादन कार्यक्रम को आयोजित करने के लिए, अभिकरण के रूप में, नई भूमिका अदा की है। कृषि जिन्सों के प्राथमिक उत्पादकों और किसानों के प्रशिक्षण तथा उसके साथ संचार की प्रक्रिया में, इस भूमिका का दूरगामी महत्व है। इस भूमिका के महत्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि भारत के अर्वाचीन इतिहास में, गांधी युग के दौरान देहाती विकास और प्रशिक्षण के लिए स्वंय सेवी संगठनों की खासियत को तटस्थ रूप से समझा जाय और यह भी देखा जाय कि आवश्यकता के दबाव में उन खासियतों में किस प्रकार परिवर्तन हुआ था।

यद्यपि, गांधी युग के दौरान, अधिकांश स्वयं सेवी संगठनों ने देहाती क्षेत्रों में समग्र विकास करने के उद्देश्य से काम किया था तथापि इन संगठनों में से कुछ संगठन कृषि प्रविधिकी से सम्बन्धित थे। खेती को गरीब लोगों के लिए, जीवनयापन का एक तरीका मानने की प्रवृत्ति थी, जो पूरी तरह से उनका भरण पोषण नहीं कर सकती थी। इसलिये साथ में कुटीर उद्योग और घरेलू कारीगरी को भी चलाना पड़ता था। कृषि प्रविधिकी की उस अवस्था में, निवेशोन्मुख कृषि की संकल्पना एक अव्यावहारिक और दूर की वस्तु प्रतीत होती थी।

गांधीवादी आदर्श में भी साधनहीनों के प्रति साधन सम्पन्न लोगों के कर्त्तव्य पर बल दिया गया था। एक तरह से यह ग्रामीणों के प्रति सार रूप से एक विशिष्ट दृष्टिकोण था, अर्थात् वह दृष्टिकोण जो ग्रामीणों की ऊपर से मदद करने पर आधारित था, आत्म बलिदान की भावना से, उन तक नये विचार पहुंचाने और उनके बीच में काम करने पर आधारित था। इस प्रकार पढ़े-लिखे भारतीयों का यह कर्त्तव्य था कि वे निरक्षरों को शिक्षा दें। सवर्ण लोगों का यह कर्त्तव्य था कि वे हरिजनों का उत्थान करें। गरीब और साधनहीन इस स्थिति में नहीं थे कि वे अपनी मदद आप कर सकें और न इस प्रयोजन के लिए उन्हें संगठित करने पर अधिक ध्यान ही दिया गया था। यह पर्याप्त विरोधामासी रूप से अपनी मदद खुद करने की आदर्शवादिता नहीं थी। यहाँ एक दूसरी परिस्थिति संगत है। जब महात्मा गांधी ने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को अपने आश्रम में प्रशिक्षित किया था तब जब जब उन्होंने जन आन्दोलन शुरू किया तब तब रचनात्मक क्रियाकलापों को निलम्बित कर दिया था और अक्सर जब जब दो आन्दोलनों के अन्तराल में उसे फिर शुरू किया था तब तब भिन्न-भिन्न प्रांगणों से बिल्कुल नए सिरे से शुरू किया था।

शिक्षक-संचारक महात्मा गांधी और नेता संचारक महात्मा

गांधी के बीच स्पष्ट भेद है, जिसे यह घटनाक्रम अक्सर धूमिल कर देता है। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष, तत्पश्चात आन्तरिक रचनात्मक क्रिया कलाप, उसके बाद फिर संघर्ष, इस घटना क्रम का प्रेक्षण किये बिना अधिकांश लोग उनकी संचार प्रक्रिया का केवल एक ही पक्ष देख सके थे। यह पक्ष उनके स्वदेशाभिमानी नेता के रूप में था, जिसने देहाती जनता को संगठित करके अहिंसक कार्रवाही में लगाया और ब्रिटिश सरकार को व्यग्र कर दिया। यह संगठित करके कार्रवाही में लगाने का काम बड़ी-बड़ी जन सभाओं के माध्यम से, महात्मा गांधी द्वारा की गई पद यात्राओं के माध्यम से, उपवासों के माध्यम से और इसी प्रकार के अन्य कार्यों के माध्यम से हुआ था जिन्होंने स्थिति को नाटकीय रूप प्रदान किया था और उन्हें जनता के साथ एक ही प्रयत्न में संचार सम्बन्ध बनाने में समर्थ कर दिया था: शिक्षक-संचारक के रूप में महात्मा की दूसरी भूमिका बहुत भिन्न थी। प्रक्रिया वहां विशिष्ट थी। विवरणों पर ध्यान दिया गया था। निर्देश स्पष्ट थे और इसलिए थे कि उनका पालन किया जाय। उनके कार्यान्विय के लिये जो संगठन और अभिकरण स्थापित किये गये थे वे सूक्ष्म नियमों सहित क्रियात्मक थे। संबोधन उन व्यक्तियों की ओर सीधा था जो विशिष्ट क्रिया कलापों में लगे थे। महात्मा गांधी की रचनाओं का संकलन "तीसरे दर्जे में यात्रा करने का आदर्श तरीका" "कार्बनिक खाद के रूप में मनुष्य के मलमूत्र का प्रयोग" "साधारण बीमारियों के लिए प्राकृतिक चिकित्सा" "डायरी कैसे लिखी जाय" "पौष्टिक भोजन" आदि जैसे विभिन्न प्रकार के विषयों पर निर्देश रेखाओं से भरा पड़ा है।

शिक्षक-संचारक के रूप में गांधी जी ने बच्चों के लिये बुनियादी शिक्षा प्रणाली की युक्ति निकाली थी। बुनियादी शिक्षा का सिद्धान्त शिक्षार्थी के मस्तिष्क और हाथों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित है। कताई, बुनाई और सब्जी उगाने

जैसा काम शिक्षकों को ऐसे अवसर प्रदान करता था जो उनके शिष्यों को गणित, पठन, लेखन, रेखागणित, अर्थशास्त्र, भूगोल आदि की ओर अग्रसर कर दें। लेकिन इस प्रविधि का प्रयोग उस क्षेत्र में नहीं अपनाया गया जहां तर्क के अनुसार इसकी सफलता के अवसर अधिक अच्छे थे। यह क्षेत्र प्रौढ़ों की शिक्षा का क्षेत्र है। यदि गांधी जी के जीवन काल में, आरम्भ में साक्षरता अभियान के रुप में शुरु किया गया प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम सह सम्बन्ध के सिद्धान्त पर आधारित होता तो प्रौढ़ किसानों का प्रशिक्षण किसानों के लिये 'अच्छी खेती ऊंची आय' के आन्दोलन का एक भाग होता।

इस भूमिका में गांधी जी ने राष्ट्रीय आधार पर अखिल भारतीय चरखा संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघ जैसे कई स्वयं सेवी संगठन स्थापित किये थे। केवल किसानों के लिये ही कोई संगठन नहीं बनाया गया था और यह क्षेत्र कुछ वाम पक्षी दलों के लिये छोड़ दिया गया था जिसमें उन्होंने भूमि सुधारों के सम्बन्ध में संघर्ष करने के लिये ट्रेड यूनियन जैसे संगठन विकसित किये थे। स्वतन्त्रता के बाद ही के वर्षों में ये गाँधीवादी संगठन झंझा बात में फंस गये और अधिकांश रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं ने आचार्य विनोबा भावे की पद यात्रा मिशनों में पलायन पाया। वे उस परिवर्तन के सम्पर्क से दूर हो गये जो देहातों में आ रहा था और यह देखकर उनका भ्रम भंग हो गया कि उनके अक्सर दुहराये गये सिद्धान्त जैसे 'अकेले कार्बनिक खाद का प्रयोग' नष्ट भ्रष्ट हो रहे थे।

गाँधी युग के दौरान स्वयं सेवी संगठनों का उपरोक्त विश्लेषण आलोचना के लिये नहीं किया गया किन्तु तत्वत: यह ऐतिहासिक घटना का विश्लेषण है। आज के कार्यकर्त्ता के लिये जो बात महत्वपूर्ण है वह यह है कि वह गांधीवादी दृष्टिकोण में से वे पक्ष ढूंढ़ निकाले जो आज संगत हैं। इन सबमें, सबसे महत्व-

पूर्ण यह प्रतीत होता है कि समाज शास्त्रीय प्रकारों और यहां तक कि आर्थिक आचरण पर आधारित पूर्वनिर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से देहाती जनता के प्रशिक्षण के प्रश्न तक और देहाती विकास तक नहीं पहुंचना चाहिए। प्रकार विद्या और समाज शास्त्रीय तथा आर्थिक सिद्धान्तों को विकास और विश्लेषण का अनुसरण करना चाहिये। गांधीवादी मार्ग मुख्य रुप से परिस्थिति की आवश्यकताओं और मांगों पर आधारित एक व्यावहारिक मार्ग था।

वास्तव में कार्यकर्त्ता को अपना कार्यक्रम समय और परिस्थिति की आवश्यकताओं पर आधारित करना पड़ेगा। समय से तात्पर्य परिस्थितियों के उस विशेष समूह से है जो विकास की प्रक्रिया को जन्म दे सके। परिस्थिति का अर्थ स्थानीय क्षेत्र विशेष में विशिष्ट समस्याओं को पहचानना और उन समस्याओं के सुकर समाधान की तलाश करना है। इस प्रकार गांधीवादी कारंवाही उतनी दीर्घकालीन योजना की कारंवाही नहीं, किन्तु क्रिया कलापों का एक समय बद्ध कार्यक्रम है। निर्विवाद रूप से यह कार्यकर्त्ताओं को, सिद्धान्तों और निष्कर्षों में पहले ही से उलझे रहने के विपरीत, स्थानीय परिस्थिति की जकड़ में ले आता है। विशिष्ट परिस्थितियों में व्यावहारिक मार्ग का प्रदर्शन बढ़ता रहना चाहिये अन्यथा गांधीवादी कार्यकर्त्ता सैद्धान्तिक आधार वाक्यों से आप्लावित होने का खतरा उठाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से रचनात्मक गांधीवादी कार्यकर्त्ता की भूमिका के पुनरूत्थान का समय १९६६-६७ के बिहार के अकाल के बाद के वर्षों का है। तब तक स्वतन्त्र भारत में गांधी वादी प्रकार के, क्षेत्रीय रचनात्मक क्रियाकलाप नगण्य स्थिति में थे और विभिन्न कारणों से प्रच्छन्न थे। गांधीवादी वृत्त के बाहर दो प्रकार के स्वयं सेवी संगठन थे। एक तो वे मिशन थे जिनका सम्बन्ध दान तथा दया से था। इनमें से अधिकांश क्रिश्चियन मिशन है, यद्यपि

रामकृष्ण मिशन और मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी जैसे अन्य मिशन भी है। संगठनों की दूसरी श्रेणी केन्द्र आधारित छाते की तरह के संगठनों की थी। इनका केन्द्र राजधानी में होता था और इनका सम्बन्ध कई क्रिया कलापों से होता था जिसके लिए वे स्वयं सीधे उत्तरदायी नहीं होते थे। इनमें से कुछ ने चोटी से सूची स्तंभ बनाने चाहे थे और वे कुछ इस प्रकार की रचना बन गये थे जो सरकारी संगठनों से अधिक भिन्न नहीं थे।

भारत में भिन्न प्रकार के स्वयं सेवी संगठनों के प्रगट होने का क्या कारण था? यह केवल बिहार के अकाल का ही परिणाम नहीं था, यद्यपि उसने कुछ आत्म निरीक्षण की प्रेरणा अवश्य प्रदान की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सामुदायिक विकास के अनुभव ने तथाकथित सामुदायिक कार्रवाही के प्रति लोगों को सावधान कर दिया था जिसके नाम पर एक नये प्रकार का बिचोलिया काम करने लगा था। सामुदायिक विकास की कार्रवाही से कभी-कभी गांव के ठेकेदारों का उदय हो जाता था जिनमें से अधिकांश भूतपूर्व छोटे जमींदार या उनके गुमाश्ते थे। ये लोग देहात में पहले ही से शक्तिशाली थे और अब ज्यादा शक्तिशाली हो गये थे तथा अपनी प्रभावशाली स्थिति बनाये रखने में समर्थ हुये थे। वे ग्राम समुदाय के नाम पर पुलिया, खण्ड भवन, गाँव की सड़कें आदि बनाकर मालदार हो गये थे। इस प्रकार गांव के छोटे आदमी को दिशा निर्देश देने वाला, उसकी मदद करने वाला कोई नहीं था बल्कि उसका दोहन करने वालों की संख्या और अधिक बढ़ गई थी।

छटे दशक में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की एक दूसरी कमी यह थी कि ग्राम सेवक एक ऐसा सामान्य विस्तार अभिकर्त्ता निकला जो विशेष प्रवीणता के अभाव में किसानों का विश्वास न जीत सका। सामान्य प्रकार के विस्तार अभिकर्त्ता की त्रुटियां तब और अधिक स्पष्ट हो गई जब कृषि सम्बन्धी प्रविधियां और

अधिक जटिल होने लगी ।

तीसरे, छोटे किसान ने उस समय और भी अधिक उपेक्षित अनुभव किया जब देश के कुछ भागों में ऊंची उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम की नई प्रविधि के कारण, खेतों में ज्यादा और जल्दी धन लगाकर, खाद बोज आदि डालने के लिये ऋणों आदि की जरूरत पड़ी। ऐसा कोई अभिकरण नहीं था जो उन अधिकारियों के साथ छोटे किसानों का सम्पर्क स्थापित करवा सकता जो उनके लिए खाद और बीज आदि खेती में डाली जाने वाली चीजों की व्यवस्था करते और उनको ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति करते। फिर, भूमि सुधारों के क्रियान्वयन में विलम्ब के कारण खाते पीते किसानों ने तो स्थानीय राजनीतिक रूप से शक्तिशाली लोगों के साथ अपनी जान पहिचान करके अपना काम निकाल लिया पर छोटे काश्तकारों के पल्ले तो यही पड़ा कि उन्हें खाद बीज की सुविधा नहीं मिल सकी। ऋण पहले उन लोगों को मिलता था जो भूमि पर अपने स्वामित्व का लिखित सबूत दे सकते थे या ऋण प्राप्त करने के लिये उसे रहन रख सकते थे।

इस वातावरण में, गांधोवादी प्रकार के समर्पित सामाजिक कार्यकर्त्ता राजनीतिक रूप से प्रभावशाली नये अमीरों द्वारा आच्छादित कर दिये गये थे। ये राजनीतिक रूप से प्रभावशाली नये धनवान राजनीतिक मठाधीशों के साथ मुलाकातों का इन्तजाम करने में अधिक साधन सम्पन्न थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सातवें दशक के मध्य में नये या रूपान्तरिक स्वयं सेवी संगठनों की आवश्यकता अनुभव की गई। ऐसे संगठन भारत में गत ५ या ६ वर्षों से चल रहे हैं जो खासतौर से कृषि उत्पादन और सम्बन्धित क्रिया कलापों के प्रति समर्पित है। उन तत्वों का विश्लेषण करना संभव है जो इन्हें प्रभावी बनाते है। ये खासियतें इन सभी संगठनों में आवश्यक रूपों से चाहे न हों, किन्तु ये वे आधार हैं जिसके ऊपर कार्य ढांचा बनाया गया प्रतीत

होता है ।

इन स्वयं सेवी क्षेत्र संगठनों की सफलता का कारण यह प्रतीत होता है कि ये किसी कार्यक्रम को एक बड़े क्षेत्र या मण्डल पर एक बिखरे तरीके से विकसित करना चाहने की अपेक्षा छोटे, गठीले, स्थानीय देहाती क्षेत्रों में चलाते हैं। सुगठित विधि से उनके क्रियाकलाप उचित नियंत्रण और पुनरीक्षण में रहते हैं। इनमें से कई सोसाइटियां है जो १८६१ के एक्ट के अधीन पंजीकृत हैं । इससे उनकी निधियों पर आय कर नहीं लगता । सामान्यतया, देश के उन भागो को छोड़ कर जहां परम्परागत रूप से सहकारी समितियां सफल हुई है, सहकारी समितियों को बनाने में हिचक ही है ।

वे किस प्रकार के कार्यक्रम पसन्द करते हैं ? साधारणतया ये कृषि विकास की उन्नति के कार्यक्रम हैं । इनके साथ भाग लेने वाले दलों के द्वारा संभावित लाभ-प्राप्त कर्त्ताओं का प्रशिक्षण भी जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में, लक्ष्य पूर्ति के आधार पर उत्पादन बढ़ाना इनका लक्ष्य नहीं है । न ये प्रशिक्षण के ऐसे छोटे पाठ्यक्रम ही रखने की बात सोचते हैं जो उत्पादन क्रिया कलाप से उद्भूत न होते हों । प्रशिक्षण स्वयं उत्पादन आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है और वह ऐसा लाभ प्राप्त कर्त्ताओं के छोटे दलों के क्षेत्र अभिकरणों द्वारा करता है ।

ये नये रचनात्मक स्वयं सेवी संगठन अपने साधनों और निधियों के लिए सरकार पर अधिक निर्भर नहीं करते किन्तु विभिन्न ग़ैर-सरकारी संगठन पर निर्भर करते हैं। इन संगठनों में विदेशों के तथा भारत के औद्योगिक तथा निर्माता प्रतिष्ठान भी शामिल हैं । इस मामले में इन संगठनों ने कृषि मंत्रालय के अधीन भूख से 'मुक्ति अभियान' सोसायटी के साथ अपने मेल मिलाप से लाभ उठाया है । यह सोसायटी स्वयं सेवी संगठनों के बीच समन्वय में भी सुविधा प्रदान करती है ।

इन संगठनों का नेतृत्व अब उन व्यक्तियों के हाथों में बढ़ता जा रहा है जो केवल सामान्य संगठनकर्त्ता ही नहीं है। उनमें से बहुत से विशिष्ट प्रविधिक ज्ञान और समझदारी से सम्पन्न व्यक्ति हैं। कुछ इंजिनीयर है, कुछ सस्य विज्ञानी है, और कुछ मुर्गीपालन में विशेष योग्यता रखते है। इस कारण वे ग्रामीणों का ध्यान भी अपनी ओर नियंत्रित करते हैं।

राजनीतिक रूप से ये नये संगठन तटस्थ हैं। ये उनके राजनीतिक विचारों का कोई ख्याल किए बिना सरकारों तथा प्रशासकों का हित चाहते हैं और उनसे सहायता प्राप्त करते है। ये बिकास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने व्यक्तिगत प्रभाव का प्रयोग करते हैं। लेकिन यह प्रभाव दल के द्वारा न होकर व्यक्तिगत होता है। यद्यपि ये संगठन अपने अनावर्ती और पूंजी व्ययों की पूर्ति के लिए सहायता की याचना करते हैं तथापि ये साथ ही साथ ऐसे काम भी करते हैं जिनसे उनके आवर्ती व्ययों के लिए धन पैदा हो। यह एक वाणिज्यिक क्रियाकलाप हो सकता है जो फार्म से आमदनी को बढ़ा दें। आमदनी किसानों को प्रदान की जाने वाली व्यवहार सेवाओं से हो सकती है। यह निःसन्देह एक स्वागत योग्य प्रवृत्ति है क्योंकि यह उन्हें आर्थिक स्थायित्व और स्वतन्त्रता प्रदान करती है। इन रचनात्मक संगठनों के क्रियाकलापों का एक दूसरा लक्षण यह है कि जहां वे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में छोटे किसानों की आवश्यकताओं पर पहले ध्यान देते हैं वहां ये इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि छोटे किसान खाते पीते किसानों से अलग थलग न हो जायें। ये सुगठित क्षेत्र में समाज के सभी भागों से सद्भाव बनाये रखना चाहते हैं और इस प्रकार पूरी जनता के लिये परिणाम उपलब्ध करते हैं।

१९६६ से इन ग़ैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाये गये कुछ रोचक कार्यक्रम दृष्टिगोचर हुये हैं। मालवा जल विकास समिति, इन्दौर ने भूमिगत जल साधनों का विकास करने में बहुत अच्छा

काम किया है। यह एक अवकाश प्राप्त अधिकारी की अध्यक्षता में एक ग़ैर सरकारी समिति है। इसका दल प्रविधिक रूप से सक्षम है और यह अपना खर्च खुद निकाल लेती है। दूसरा संगठन, जिसने भूमिगत जल के दोहन पर ध्यान केन्द्रित किया है बिहार के चम्पारन जिले के तुर्कोलिया का नलकूप विकास संगठन है। और बिहार रिलीफ एसोसियेशन जयप्रकाश नारायण के दिशा निर्देशन में वहुत बड़े पैमाने पर चल रहा है।

मुट्टन (तमिलनाडु) के छोटे से मछुहारा केन्द्र द्वारा मछुहारों की नावों का विकास भी उल्लेखनीय है। यह संगठन एक वेल्जियन इंजीनियर की प्रेरणा पर शुरू हुआ था। यह कटमरन नौकाओं पर इंजन लगाने में समर्थ हो सका है जिससे छोटे पुरानी चाल के मछुहारों को बहुत लाभ हुआ है। इन मछुहारों ने अपनी आमदनी काफी बढ़ा ली है। दयानन्द एंगलो वेदिक कालेज न्यास उड़ीसा में जन जाति के लोगों के विकास को आयोजित करता रहा है। इसका एक केन्द्र रूरकेला के पास है और एक दूसरा कोरापुट में है। यह सोसायटी भूमि विकास और छोटी सिंचाई पर ध्यान केन्द्रित करती रही है। इसकी निधि का केन्द्रक, आरम्भ में एक लाख रूपया डाक्डर ए० एन० खोसला द्वारा दान में दिया गया था। ये निधियां भारतीय विकास लोक कार्यक्रम से मिली सहायता द्वारा बढ़ गईं। महाराष्ट्र की उरूली कञ्चंन सहकारी समिति पशु प्रजनन और पशु विकास क्रियाकलापों के संगठन पर अपना ध्यान केन्द्रित करती रही है। वैशाली क्षेत्र लघु किसान सम्मेलन ने उत्तरी बिहार में छोटे किसानों के बीच नलकूप के बरमे बैठाने और फसलों का ढांचा सुधारने का काम हाथ में लिया है। हावड़ा जिले के नरेन्द्रपुर में रामकृष्ण मिशन के केन्द्र ने मुर्गी विकास का एक बहुत अच्छा कार्यक्रम संगठित किया है। उत्तरप्रदेश के अल्मोड़ा जिले में उत्तराखण्ड निधि बागवानी और खुम्भी पर ही ध्यान जमा रहा है। केरल में, त्रिवेन्द्रम के पास मित्र निकेतन का पशु-विकास, मुर्गी

पालन और फसलों का उल्लेखनीय कार्यक्रम है। ग्रामीण विकास की ऐच्छिक संस्थाओं के संघ ने, जो कि स्वयं सेवी संगठनों का एक परि-संघ है, हजारीबाग जिले में 'काम के लिए भोजन' पर आधारित लघु सिंचाई का एक कार्यक्रम हाथ में लिया था। हैदराबाद की आन्ध्र महिला सभा ने आन्ध्रप्रदेश के महबूबनगर जिले में महिलाओं के लिए एक किसान प्रशिक्षण और कार्यशील साक्षरता कार्य-क्रम संगठित किया है।

कई अन्य संगठन भी हैं जो इन क्रिया कलापों में लगे हुये हैं। ये क्रियाकलाप गत ५ या ६ वर्षों के दौरान उत्पन्न हुए हैं। यह एक मनोरंजक बात है कि ऐसे कार्यक्रमों द्वारा विविध प्रकार के क्षेत्रीय कार्यों के लिए विविध रचनात्मक क्रिया कलापों और लाभ उठाने वालों का उद्घाटन हुआ है।

इन संगठनों द्वारा ऐसे कार्यक्रमों को हाथ में लेने की प्रक्रिया में अनेकों समस्यायें भी उठ खड़ी हुई है। इन समस्याओं का समाधान सावधानी और दूरदर्शिता से करना होगा। पहली समस्या तो योग्य क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं का एक संवर्ग बनाने की है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता सामान्य कार्य-कर्त्ताओं से भिन्न होने चाहिए और समर्पित प्रकार के संगठन कर्त्ता होने चाहिए। इन्हें केवल आदर्श से ही प्रेरित नहीं होना चाहिए वरन् प्राविधिक रूप से भी योग्य होना चाहिए। इन्हें जटिल परि-पत्रों, नियमों और कानूनों को समझने में समर्थ होना चाहिए। इन्हें उन प्रोफार्माओं को समझने में भी समर्थ होना चाहिए जिन्हें अपने कार्यक्रमों को संगठित करने के लिये किसानों और मछुवरों को भरना पड़ता है। ये फार्म वगैरह अनुभवी सरकारी अधिकारियों के लिए भी एक चुनौती हो सकते है। स्वयं सेवी कार्यकर्त्ताओं को स्थानीय दलगत हितों से कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए। फिर भी उन्हें उन हितों की आवश्यकतायें जानने में समर्थ होना चाहिए। उनकी स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि

उन्हें अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक वित्तीय समस्यायें परेशान न करें। फिर उन्हें ग्रामीणों के साथ संचार के सिद्धान्तों का और प्रशिक्षण तथा प्रौढ़ अध्यापन का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उन्हें सरकारी विभागों, बैंकों, वाणिज्यिक फर्मों आदि के साथ मामलों का अनुसरण करने के लिए आत्मविश्वास और धैर्य से परिपूर्ण होना चाहिए।

इस संवर्ग का संगठन कैसे किया जाये? एक संभावना तो यह हो सकती है कि न्यास की तरह की एक विशेष निधि बनाई जाय। इस आधारभूत निधि के ब्याज से स्वयं सेवी कार्यकर्त्ताओं का खर्च चलाया जाय। भारतीय विकास लोक कार्यक्रम सोसायटी का अनुभव यह प्रदर्शित करता है कि एक स्वयंसेवी कार्यकर्त्ता पर लगभग ५०० रुपये प्रतिमाह खर्च करना जरूरी है ताकि वह अपने घर से दूर उचित स्थितियों में रह सके और अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं के लिए उसे स्थानीय लोगों की दान-दक्षिणा पर निर्भर न रहना पड़े। यह लागत शान्ति सेना स्वयं सेवकों और अन्य विदेशी स्वयं सेवकों पर खर्च की जाने वाली लागत से बहुत कम है।

इन कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण और नवीकरण के केन्द्रों को चलाने के लिए उपलब्ध स्रोतों से धन भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

दूसरी समस्या यह है कि स्वयं सेवी कार्यकर्त्ताओं के प्रयासों के फलस्वरूप जो स्थानीय संगठन कायम हुए हैं उन्हें अनुसंधान केन्द्रों और संस्थानों से नियमित दिशा निर्देशन मिलता रहना चाहिये ताकि वे ग्रामीणों के साथ प्रभावी हो सकें। अन्य संगठनों के अनुभव के सम्बन्ध में सूचना केन्द्र भी उनके लिए होना चाहिए।

स्वयं सेवी संस्थानों के संगठनकर्त्ताओं के लिए सरकारी कार्यालयों में, अपने संस्थान के लिये काम करवा लेना सरदर्द

होता है। प्रत्येक राज्य सरकार में एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो स्वयं सेवी कार्यकर्त्ताओं के लिए सम्पर्क बिन्दु हो जिससे कि उन्हें एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे तक न भटकना पड़े। उस व्यक्ति के पास, स्वयं सेवी कार्यकर्त्ता अपने प्रार्थनापत्रों और प्रस्तावों के त्वरित निष्पादन में, दिशानिर्देश और सहायता के लिए जा सकें। जब तक इस प्रकार का कुछ प्रबन्ध नहीं किया जाता तब तक अधिकांश प्रशासनों का खण्डित स्वरूप स्वयं सेवी कार्यकर्त्ताओं को निश्चित रूप से उत्तेजित करेगा। आज सरकार के विभिन्न अंगों के बीच संचार की कमी के कारण, ग़ैर सरकारी संगठनों के कार्यक्रमों को अक्सर धक्का लगता है।

दीर्घकाल में, इन क्रिया कलापों में लगे स्वयं सेवी संगठनों को जो चीज जीवित रखेगी वह ठोस परिणामों के लिए उनकी आतुरता होगी। 'यथास्थिति से आक्रोश' अक्सर परिवर्तन के लिए यंत्र होता है। ग्रामीणों को ऊपर से मदद करने की अभिवृत्ति की अपेक्षा लोगों को उसमें शामिल करने का तरीका हमेशा ही उनके प्रयासों को शक्ति प्रदान करेगा। बाह्य रूप से उनकी शक्ति शंका और उपेक्षा से दूषित अभिवृत्ति की अपेक्षा विनम्र और सक्रिय प्रशासन की अभिवृत्ति में निहित है।

अध्याय १२

भारत में किसान की शिक्षा की वृद्धि

किसानों के प्रशिक्षण के विविध पहलुओं का विश्लेषण करते समय मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि भारत के या किसी दूसरी जगह के, किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम में, ये सभी लक्षण दिखाई नहीं दे सकते। कृषि विकास और प्रौढ़ शिक्षा से सम्बन्धित अधिकांश लोगों ने, साधारणतया, किसानों के लिए प्रशिक्षण को विकास के सीमान्त और समानान्तर होना स्वीकार कर लिया है, और इसे उसकी प्रगति के साथ आपस में गुंथा हुआ उसका आन्तरिक तत्व नहीं माना है। प्रतीत होता है कि इसका कारण यह है कि किसानों का प्रशिक्षण क्या है इसकी उनकी कल्पना अनिश्चित है। फिर भी परीक्षण करने और गलती करने की स्थितियों के द्वारा किसानों के प्रशिक्षण की संकल्पना और उसके लक्षणों के स्वरूप में जो वर्षों के दौरान प्रगति हुई है उससे कोई भी व्यक्ति उसके केन्द्रीय तत्व को स्पष्ट रूप से खोज सकता है।

अपने ग्रामीण विकास की अवस्थाओं और प्रवृत्तियों में विकासशील देशों के बीच कुछ बातों में भारत अनोखा है। संस्था की दृष्टि से और विश्वासों तथा अभिवृत्तियों में भारतीय गांवों की शताब्दियों से एक सतत परम्परा रही है। सारतत्व में, यह बार बार के आक्रमणों द्वारा प्रभावित नहीं हुआ था और जब तक ब्रिटिश लोग नहीं आये थे तब तक यह संयुक्त और न्यूनाधिक रूप से ज्यों का त्यों बना रहा था। संसार के दूसरे भागों में उपनिवेशवादी ताकतों के विपरीत, भारत में ब्रिटिश लोगों ने

भारतीय सामाजिक जीवन को आधुनिक बनाने का यत्न किया था। यह वह प्रक्रिया थी जो १८३५ के बाद उनके लिए एक मिशन बन गई थी। लेकिन इस आधुनिकीकरण ने कृषि को केवल सीमान्त रूप ही से स्पर्श किया और उनके द्वारा खोले गये बड़े अनुसंधान केन्द्रों और कृषि कालेजों ने कृषि वैज्ञानिकों के एक ऐसे वर्ग को उत्पन्न किया था जो अपनी प्रयोगशालाओं के लिए समर्पित था और सामान्य किसान की पहुंच से बाहर था। बिहार और बंगाल के ब्रिटिश बगीचा मालिकों ने अक्सर जुल्म किये थे और किसानों को उन्नत कृषि में दीक्षित नहीं किया था। इस प्रकार एक नीति विरुद्ध स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अब हमारा आधुनिक और बौद्धिक रूप से उन्नत शहर का मध्य वर्ग और परम्परागत तथा पिछड़े हुए किसानों का एक बहुत बड़ा समुदाय हो गया था।

भारतीय परिस्थिति के अनोखेपन का एक दूसरा कारण सर्वव्यापी और कई दृष्टियों से अनोखा महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता संघर्ष था। उनके आन्दोलन और संगठन सभी गाँवों पर आधारित थे। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उनके अभियान इस प्रकार रचित थे कि वे गांवों को अपने अस्तित्व का फिर से बोध करा दें और सुधार तथा ग्रामीण विकास के लाभों को प्राप्त करने के लिए तैयार कर दें। ये गांव अंग्रेजों की न्याय, मालगुजारी और पुलिस की पद्धति द्वारा शताब्दियों में पहली बार विघटित हुए थे। फिर, गांधीजी ने ग्रामीण विकास को विस्तृत अर्थ में देखा था। उनका आर्थिक कार्यक्रम, अतिरिक्त आय के एक स्रोत के रूप में, दस्तकारी पर आधारित था, न कि सघन और प्रविधिक रूप से उन्नत कृषि पर।

इन दो लक्षणों के संदर्भ में, ग्रामीण विकास को छः अवस्थाओं में से होकर किसानों की शिक्षा की संकल्पना और कार्यक्रमों के विकास को खोजा जा सकता है। १९४७ तक, जब स्वतन्त्रता

आई, देहाती जीवन की उन्नति मुख्यतः सामाजिक सुधार, स्वास्थ्य सम्बन्धी उपाय और दस्तकारी को बढ़ावा देने के रूप में ही सोची जाती थी। कृषि को बहुत कम और शहरी हितों के लिए ही परोक्ष रूप से बढ़ावा मिला था। इस प्रकार जब चीनी उद्योग का विकास हुआ तब बड़े पैमाने पर गन्ने की खेती के कारण नई प्रविधि में किसानों का प्रवेश हुआ। यह केवल सीमान्त विकास ही था। मुख्यतः ग्रामीण उन्नति का अर्थ साक्षरता पर बल, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष, सफाई और अच्छे स्वास्थ्य के लिये अभियान टीकों के द्वारा बीमारियों से बचाव आदि था।

१६२२ या उसके आस पास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दिशा निर्देशन के अधीन लीओनार्ड एल्म्हिर्स्ट ने शान्ति निकेतन में लगभग ४८ गांवों में ग्रामीण पुनर्रचना कार्यक्रम चलाने की कोशिश की थी। इस कार्यक्रम का ध्येय ग्रामीणों तक उसके अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं में पहुंचना था। शान्ति निकेतन वाला प्रयोग सहकारी स्वास्थ्य संगठनों और दस्तकारी की कार्यशालाओं के इर्दगिर्द बनाया गया था। कृषि बाद में आई और वह भी काफी हिचक के साथ। बहुत पहले महात्मा गांधी ने टाल्सटाय और रस्किन के दर्शन के प्रकाश में, दक्षिण अफ्रीका के फोनिक्स फार्म पर पढ़े लिखों द्वारा खेती करने का प्रयोग किया था। जब वे भारत आये तब उनका देहाती विकास कार्यक्रम दस्तकारी के द्वारा गरीब किसानों और मजदूरों की अतिरिक्त आय की आवश्यकता के चारों ओर बनाया गया था।

बीसवें दशक के अन्तिम वर्षों में, अंग्रेज आई० सी० एस० आफिसर एफ० एल० ब्राएने ने आजकल के हरियाणा राज्य के गुड़गांव जिले में, ग्रामीण विकास लाने के लिये ग्रामीणों के बीच 'प्रश्नों और उत्तरों' का सुकरात का तरीका अपनाया था। ये प्रश्न और उत्तर एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये जाते थे और उन अफसरों को उपलब्ध करा दिये जाते थे जिनसे यह आशा की

जाती थी कि वे ग्रामीणों के बीच नई अभिवृत्तियों को जाग्रत कराने के लिये इनको आधार बनायेंगे। यहां फिर, निःसन्देह, देहाती पुनर्रचना में शायद पहली बार अनौपचारिक प्रशिक्षण एक कारक के रूप में दिखाई दिया था, पर कृषि देहाती विकास के कई पहलुओं में से एक थी और आवश्यक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण नहीं थी।

दूसरी अवस्था स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद आई। इटावा का प्रयोग पूरे समुदाय और उसके सदस्यों पर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए समेकित वातावरण में देहाती जीवन की आगे बढ़ती हुई तस्वीर द्वारा प्रेरित था। यह प्रयोग भारत में सामुदायिक कार्यक्रम के देश व्यापी कार्यजाल का अग्रदूत बना। अलबर्ट मेयर्स द्वारा लिखी गई इटावा प्रयोग की विस्तृत रिपोर्ट एक मनोरंजक पठनीय सामग्री है। इसके बाद जो समुदायिक विकास कार्यक्रम आया, उसकी रूपरेखा एस० के० डे० द्वारा बनाई गई थी। यह नीलोखेड़ी में देहाती और शहरी सम्मिश्रण को विकसित करने के अपने खुद के पहले के प्रयोग की अपेक्षा इटावा के प्रयोग पर अधिक आधारित थी। सामुदायिक विकास प्रायोजना, जिसका कि कार्यजाल समूचे देश में फैला हुआ है, पांचवे दशक के विस्तृत आदर्शवाद का एक प्रमाण है। किन्तु इसने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम पर पहुंचाया। वह परिणाम यह था कि भारत में पहली बार विस्तार कार्यकर्त्ता नीचे हर सौ गांवों की इकाई तक पहुँच गया। वह ढाँचा बाद को उस समय सुविधाजनक हुआ जिस समय नई प्रविधि पर आधारित क्षेत्रीय कार्यक्रमों के द्रुत क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कृषि सम्बन्धी मार्ग प्रस्फुटित हुआ। दूसरी तरह से भी किसानों की अभिवृति के (यद्यपि कुशलता से नहीं) परिवर्तन की प्रक्रिया सामुदायिक विकास कार्यक्रमों द्वारा देश व्यापी पैमाने पर उत्पन्न की गई थी। इस कार्यक्रम ने देश को लगभग ५,००० खण्ड प्रदान किये। इनमें से प्रत्येक खण्ड में, मानकित ढांचे पर एक विस्तार अधिकारी और प्रत्येक २० गांवों

के लिये एक ग्रामसेवक होता है।

इस बिन्दु पर हम तीसरी अवस्था पर आते हैं। छटवें दशक के प्रारम्भ में भारत के कृषि विकास के कार्यक्रम में दो प्रवृत्तियां प्रगट हुई। पहली प्रवृत्ति सामान्य से विशिष्ट की ओर, विस्तृत से सघन की ओर बढ़ने की इच्छा थी। समूचे देश में व्याप्त सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने, सर्वांगीण देहाती विकास में लोगों के शामिल होने के लिये, कार्यढांचा प्रदान किया था; किन्तु जल्दी ही यह भावना बढ़ने लगी कि 'जनता' बिना किसी विशिष्ट आकृति के समूह द्वारा नहीं बनी किन्तु विशिष्ट व्यावसायिक हितों और आवश्यकताओं वाले दलों की बनी हुई है। कुछ खास फसलें उगाने वाले किसान की विशिष्ट परिस्थिति और शक्यता को पहचानना और उसका परीक्षण करना चाहिये। उन्नत उत्पादन के लिये परामर्श और सुविधायें ऐसे परीक्षण पर आधारित होनी चाहिये। उत्पादन के सुधार और उच्चतर आय के साथ किसान को और अच्छा जीवनयापन करने की प्रेरणा मिलेगी। शिक्षा का प्रसार होगा, स्वास्थ्य का मापदण्ड सुधरेगा और परिवार नियोजन अर्थपूर्ण बन जायेगा। विशिष्ट उपागम का यही अर्थ है।

कृषि विकास कार्यक्रम के अभिगम में दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन इस अनुभूति से उत्पन्न हुआ कि नई प्रविधि किसान को तुरन्त स्वीकार्य है बशर्ते कि इससे फसल की पैदावार में सारभूत वृद्धि हो और परिणामस्वरुप उसकी आमदनी बढ़े। यह ज्वलन्त शक्ति है जिसके बिना पहले के बहुत से प्रयास निष्फल हो गये प्रतीत होते हैं, किन्तु अक्सर निष्फलता का दोष परम्परा पर आधारित समाज की कमियों के मत्थे मढ़ा गया है। जिस प्रविधि की शुरुआत द्वारा उत्पादन में विशेष और द्रुत सुधार उत्पन्न होता है, उस के द्वारा खाद बीज आदि खेती में डाली जाने वाली वस्तुओं की खपत, बेहतर भन्डारण और विपणन के लिये मांग, खेती की योजना बनाने के लिये मांग और जानकारी तथा प्रशिक्षण

तक के लिये मांग, ये सभी कुछ दूर फैंक दिये गये हैं।

ऐसी प्रविधिकी का पहिला संकेत लगभग १९६० में तब दिखाई दिया था जब कि भारतीय धरती पर मक्का का संकरण सफल हुआ था। उन किसानों को, जो कास्तकारी के सरल तरीकों के अभ्यस्त थे, हर साल नये सिरे से संकर बीज तैयार करना जटिल प्रक्रिया थी। किन्तु उस समय संकर मक्का की पैदावार सारभूत रूप से मेहनताना देने वालो थी। किसानों ने इसे इस योग्य पाया कि वे इसमें खाद बीज आदि के लिये धन लगावें, नई प्रविधि सीखें और अधिक मशक्कत का काम करें। १९६४-६५ में, प्रविधि को एक और दूसरी सफलता मिली। रोकफेलर प्रतिष्ठान के सहकार से भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने गेहूं की मेक्सीकन किस्मों पर परीक्षण आयोजित किये। ये किस्में अधिकतर बौनी, अधिक फोटो संश्लेषात्मक और बहुत ऊंची उपज देने वाली होती है। चावल की कुछ किस्में ताइवान और तैचुंग–अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, फिलीपीन से मंगाई गई और उन पर भी वैसा ही परीक्षण किया गया। जहां कहीं गेहूं को रासायनिक खाद की पर्याप्त मात्रा देकर और आवश्यकतानुसार सिंचाई करके आजमाया गया वहां उसे सफलता मिली। यद्यपि चावल की नई किस्में कुछ क्षेत्रों में प्रभावी थी तथापि उनमें कीड़े लग जाते थे। क्योंकि भारत में चावल के कई क्षेत्र हैं इसलिये यहां कई प्रकार की विभिन्न नस्लों के चावलों की जरुरत पड़ी। गेहूं के सम्बन्ध में यह बात नहीं थी। गेहूं तो एक ही सुगठित क्षेत्र में, जहां की परिस्थितियां एक ही समान होती है, उगाया जाता है। भारतीय वैज्ञानिक काम में जुट गये। अनुसंधान केन्द्रों और विश्वविद्यालयों में क्रियाकलापों की गूंज होने लगी। प्रयोगशाला कार्य का लक्ष्य, साधारण संकरण से लेकर आणविक उर्जा के प्रयोग की विधियां अपनाते हुये, गेहूं और चावल दोनों ही के विदेशी बीजों का नस्ल सुधार और अनुकूलन करना था। परीक्षण बहुत तेजी के साथ किया गया।

जलवायु सम्बन्धी वर्षक्रम ने प्रयोग शालाओं और परीक्षण खेतों को देश के किसी न किसी भाग में वर्ष भर काम करते रहने में समर्थ बनाये रखा। गेहूं के बारे में परिणाम अभूतपूर्व घटना के रुप में प्रगट हुआ और चावल के बारे में परिणाम आशाजनक था। उन क्षेत्रों में, जहाँ सिंचाई की पूरी सुविधा थी, किसान नये बीजों का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ाने लगे। गेहूं का नया बीज कितनी तेजी से फैला इसका निर्णय इस तथ्य से किया जा सकता है कि १९६४ में केवल १०० किलोग्राम विदेशी बीज आयात किया गया था जब कि १९६५ में २५० टन और १९६६ में १८,००० टन आयात किया गया। और इसके बाद, किसानों की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करने के लिये, प्रतिवर्ष देश में ही काफ़ी बीज पैदा किया गया।

बीजों और रासायनिक खादों के साथ-साथ जल भी निर्णायक तत्व बन गया। नये बीजों के लिए ८० पौण्ड से लेकर १२० पौण्ड तक प्रति एकड़ नत्रजनी रासायनिक खाद की जरुरत होती थी। रसायनों की इस भारी मात्रा को धरती में जज़्ब करा सकने के लिये और वहां से पौधों तक पोषक तत्व पहुंचाने के लिये छः से सात पानी देने की जरुरत होती है। उस क्षेत्र में जहां नहर से सिंचाई होती है किसान को एक फसल में साधारणतया दो से तीन पानी देने की छूट है। अतिरिक्त जल कहाँ से आये। इसका उत्तार भूमि गत जल था। उत्तारी भारत के मैदानों में सभी जगह और दक्षिण भारत की नदी के थालों में, किसानों के वीच नलकूपों, खुले कुओं में पम्पों, जल फिल्टर आदि के लिये उत्साह की एक नई लहर फैल गई।

यह उत्साह समान रुप से नये बीज की उत्कट इच्छा और १९६६-६७ में भारत के कई भागों में किसानों द्वारा भोगी गई पीड़ा के कारण उत्पन्न हुआ था। १९६५ के अन्त में, इस शताब्दो का निकृष्टतम दुर्भिक्ष आया। यह १९६७ की पहली तिमाही तक

रहा। धरातलीय जल, नदियां, तालाब और यहां तक कि नहरें तक कोई सहयता नहीं कर सकी। दो वर्षा ऋतुओं में वर्षा न होने के बावजूद भी जिन्होंने नलकूप लगा रखे थे उन्होंने बहुत अच्छी फसलें काटीं। यह देखकर दूसरे लोग भी सोचने लगे। उन दो वर्षों के भीतर भूमिगत जल के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन आ गया था। नलकूपों की तेजी से वृद्धि होने लगी और महीनों के भीतर हजारों पम्प लग गये। इसके बाद के वर्षों के दौरान जल-प्रयोग और जल प्रबन्ध में किसान रुचि लेने लगे। ये दोनों ही विषय अपेक्षाकृत नये और जटिल कौशल के हैं।*

सामान्य के विपरीत विशिष्ट के प्रति रुझान की और नई प्रविधियों तथा आविष्कारों के प्रति अभिवृत्ति के रुपान्तरण को इस पृष्टभूमि में ही, सातवें दशक में, कई कार्यक्रम दृष्टि गोचर हुये जो किसानों की नव-अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते थे। इनमें से कुछ कार्यक्रमों में किसानों की शिक्षा एक बना बनाया तत्व था। कुछ दूसरों के लिये प्रशिक्षण के समानान्तर कार्यक्रम शुरू किये गये थे। दोनों ही अवस्थाओं में शुरु में ध्येय उत्पादन बढ़ाना हो था। बाद में, पिछड़े हुये पर्वतीय क्षेत्र जैसे विशेष असुविधा वाले क्षेत्रों और छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों जैसे वर्गों को पहचानने और समझने पर बल दिया गया। पहले चरण में नई प्रविधि की वैधता को प्रभावी ढंग से प्रदर्शित करना पड़ा था जिससे कि अत्यन्त उपयुक्त क्षेत्रों में वह जल्दी से अपनाई जा सके और इसके परिणाम स्वरूप जल्दी

---

* वैज्ञानिक जल प्रबन्ध कैसे महत्वपूर्ण है वह इस तथ्य से स्पष्ट हो जायेगा कि भारत में सिंचाई के काम आने वाले जल का मुश्किल से २० प्रतिशत ही वास्तव में फसलों तक पहुंचता है जबकि जापान में तथा अन्य प्रगतिशील देशों में इसका प्रतिशत ७० या ८० तक बढ़ा हुआ है।

से उत्पादन बढ़ सके। इन क्षेत्रों में, किसान स्वयं ज्ञान की खोज करने आगे आये और शैक्षणिक कार्यक्रम को अनुकूल क्षेत्र मिल गया। दूसरे चरण में, किसानों की शिक्षा की भूमिका को यदि अधिक नहीं तो बराबर ही निर्णायक होना पड़ा, पर इसका कारण भिन्न था। कठिन क्षेत्रों के लिये प्रविधि का समायोजन करना पड़ा। विशेष असुविधा वाले लोगों, छोटे किसानों और भूमिहीन जोतदारों के लिये इसे संगठनात्मक उपायों और युक्तियों द्वारा चलाना पड़ा जो कि जटिल है। प्रशिक्षण और शिक्षा, लाभ प्राप्तकर्त्ताओं और आयोजकों दोनों ही को, प्रक्रियाओं के समझने में सुविधा प्रदान करेगी। आइये, सातवें दशक के दौरान चालू किये गये कुछ इन उत्पादन सहित प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विचार कर लें।

१९६० में सघन कृषि विकास कार्यक्रम' नामक प्रायोजना द्वारा किसानों के प्रशिक्षण को आयोजित करने का पहला प्रयास किया गया था। इसका देश में संकर मक्का की शुरूआत के साथ मेल खा गया। कार्यक्रम ने अग्रिम आधार पर आधुनिक उत्पादनशील फार्मों और किसानों तथा आधुनिक कृषि प्रणाली का विकास करना शुरू कर दिया। इसका लक्ष्य खेतों किसानों और उनको उपलब्ध साधनों तथा अबसरों से आरम्भ करना था।*

इसने आर्थिक लाभ की जलवायु वाले जिलों को चुना (देश के ३२९ में से केवल १७)। जिला खंड और ग्राम स्तरों पर कर्मचारी बढ़ा दिये गये और उनकी तनख्वाहें अन्य सामुदायिक खण्डों के कर्मचारियों की अपेक्षा ज्यादा थी। आयोजकों ने विस्तृत योजनायें बना कर और खादबीज आदि खेती में डाली जाने वाली चीजों के लिए उन्हें विशेष सुविधाएं देकर और अन्त में सहकारी समि-

---

* मैलोन, शास्त्री और फ्रांसिस, फोर्ड प्रतिष्ठान, नई दिल्ली द्वारा लिखित कृषि आधुनिकीकरण के लिये एक दिशा निर्देश।'

तियों आदि द्वारा ऋण के लिये विशेष प्रबन्ध करके, भाग लेने वाले किसानों की एक तिहाई भूमि पर ही अपने प्रयास केन्द्रित किये।

बाद को, विपणन और भंडारण जैसे कुछ अन्य तत्व भी इसमें जोड़ दिये गये थे।

कार्यक्रम बढ़ाने के लिए, कुछ अन्य जिलों में एक और अधिक हल्का संस्करण जिसे 'सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम' पुकारा जाता था, चालू कर दिया गया। इसमें अन्तर यह था कि क्षेत्र विशेष में, उसकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए, एक फसल विशेष पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता था।

सघन कृषि विकास कार्यक्रम में एक दूसरा चरण, १९६५ के बाद, कृषि सम्बन्धी महापरिवर्तन अधिक उपज देने वाले नए बीजों की किस्मों के शुरू से आया। क्योंकि महापरिवर्तन की वजह से एक बहुत बड़ी संख्या में जिले लगभग अपने आप सघन खेती में शामिल हो गये थे। इसलिए यह महसूस किया गया कि सघन खेती विकास कार्यक्रम वाले जिलों की संख्या घटा देनी चाहिए। सघन खेती विकास कार्यक्रम की घटी हुई संख्या के जिलों को खेतों पर और अधिक व्यक्ति आधारित चालनों के लिए एक तरह की प्रयोगशाला बना देना चाहा गया है। मूल रूप से १९६९ में तैयार की गई और अगस्त १९७१* में संशोधित एक रिपोर्ट में कई जिलों का विवरण दिया गया है। इन चार जिलों में आन्ध्र प्रदेश का पश्चिम गोदावरी जिला, मध्य प्रदेश का रायपुर और हरियाणा का करनाल शामिल है। पश्चिम गोदावरी की रिपोर्ट में उच्चतर पैदावार पर सामान्य विवशताओं का उल्लेख है, जैसे सिंचाई का धीमा विकास, क्षेत्र के लिए अनुकूल ज्यादा

---

* रोबर्ट डब्ल्यू विलकोक्स, कृषि विकास परामर्शदाता, फोर्ड प्रतिष्ठान।

पैदावार वाली किस्मों का अभाव, उपज मूल्यांकन कार्य का अभाव और तालाब वाले क्षेत्र में ज्यादा पानी का भराव। प्रशिक्षण के प्रसंग में एक बात यह है कि हैदराबाद के कृषि विश्वविद्यालय ने अनुकूली अनुसंधान के काम में कर्मचारियों को सहायता करने के लिए, १९६९ में, जिले में अपने कर्मचारी वर्ग के पांच सदस्य तैनात किये थे। ये नियमित विस्तार कर्मचारियों के साथ पूरी तरह सहकार करते हैं और प्रायोजना अधिकारी के प्रति उत्तरदायी हैं। यह एक क्षेत्र में अनुसंधान सहित प्रशिक्षण केन्द्र की शुरूआतों की एक मिसाल थी। यहां यदि दूसरी विवशताओं पर काबू पा लिया जा सके तो प्रशिक्षक निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

करनाल जिले में, सघन परिचालन उपायुक्त द्वारा बनाई गई एक जिला विकास योजना पर आधारित था। इसने प्रमुख समस्याओं को प्रभावी रूप से पहिचाना था। उपायुक्त योजनेतर साधनों को भी गतिशील बनाने में समर्थ हो सका था। किन्तु प्रयोग ने यह भी प्रदर्शित किया कि करनाल डेरी संस्थान पर किसानों के प्रशिक्षण के लिए असीम अप्रयुक्त संभावनाएं हैं। इसके साधन और इसका प्रांगण नई प्रविधियों में प्रगतिशील किसानों को लघु अवधि के प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं प्रदान कर सकता था। वास्तव में, काफी समय तक डेरी संस्थान एक टापू की तरह अलग अलग रहा और यह केवल अभी हाल ही से हुआ है कि वह अपने पास पड़ोस के क्रियाकलापों में अन्तर्ग्रस्त हुआ है। यह प्रकट करता है कि सघन कृषि विकास कार्यक्रम में, विस्तार कार्यकर्त्ताओं के एक आत्म निर्भर दल रखने की मूल संकल्पना अपर्याप्त सिद्ध हो रही है। जैसा कि इस पुस्तक के एक एक दूसरे अध्याय में कहा गया है और जैसा कि राष्ट्रीय कृषि आयोग की अन्तरिम रिपोर्ट में भी परोक्ष रूप से सुझाया गया है कि सभी विकास कार्यक्रमों के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण

और अनुसंधान के या तो निकटतम कृषि अनुसंधान केन्द्र से या कृषि विश्वविद्यालय से या विशेष रूप से स्थापित अनुकूली अनुसंधान केन्द्र से सम्पर्क होने चाहिए। करनाल का अनुभव यह भी प्रदर्शित करता है कि सघन कृषि विकास कार्यक्रम तभी अधिक सफल हो सकता है जब जिलाधीश (कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर) कृषि को उच्च प्राथमिकता दें और जिले के विकास की स्थिति पर निकटता से ध्यान दें।

मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में, आरम्भ से ही कार्यक्रम साधारणतया आवश्यकता पर आधारित रहा है। इसमें ३८०० गांव हैं जिनकी जनसंख्या १६ लाख है। हाल ही के वर्षों में इसका पुनः-विन्यास करने से रायपुर प्रायोजना की बिशेषता उस बात में है जिसे 'पूर्ण ग्राम विकास प्रयास' के नाम से पुकारा जाता है। १९६८-६९ में जिले को तीन क्षेत्रों में बांटा गया था और बाद को प्रत्येक क्षेत्र को दो-दो उपक्षेत्रों में बांट दिया गया था। प्रत्येक उपक्षेत्र की अपनी एक छोटी समिति थी। प्रत्येक उपक्षेत्र के लिए उन क्षेत्रों के विशेष कार्यक्रम बनाये गये थे। इस प्रकार क्षेत्र की सघन कृषि के लिए कुछ अन्य क्षेत्रों से कर्मचारी लेकर लगा दिये गये और सिंचित चावल के २,००,००० एकड़ पर ध्यान इस प्रकार केन्द्रित किया गया था कि चावल के प्रति १,५०० एकड़ के लिए एक क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता था। निःसंदेह, स्थानीय क्षेत्रीय और जिला स्तरों पर उत्पादन समितियां तो थीं ही। रायपुर के प्रयोग का महत्व प्रशिक्षण को किसान के ब्यौरेवार अभिनवीकरण की ओर मोड़ने में है। यह प्रयोग भारी खर्च पर किया गया था जिसे राज्य सरकार ने वहन करना स्वीकार किया था।

क्या सघन कृषि विकास कार्यक्रम का भविष्य, इसलिए, इस प्रकार के अत्यन्त सघन किसानोन्मुख प्रणाली पर आधारित प्रयोग

शाला कार्य में निहित है ? राष्ट्रीय कृषि आयोग ने अपनी रिपोर्ट* में सही ही कहा है "लाखों किसानों को प्रशिक्षण देना एक विशाल कार्य है। प्रशिक्षकों तक को प्रशिक्षण देना भी काफी बड़ा काम है। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक राज्य में स्थापित कुछ किसानों के प्रशिक्षण केन्द्र या स्कूल पर्याप्त नहीं हो सकते। यदि कृषि विश्वविद्यालय भी अपने परिसर में किसानों की एक बड़ी संख्या को प्रशिक्षण देने का प्रयास करें तब भी वह काफी नही होगा। यदि खेती करने वाले परिवारों को कम से कम एक सदस्य प्रति परिवार के हिसाब से प्रशिक्षित करने का ध्येय प्राप्त करना है तो संचार की सभी सुविधाओं और तरीकों का प्रयोग करना होगा।" निःसंदेह रायपुर का प्रयोग तथा अन्य सघन कृषि विकास कार्यक्रमों के प्रयोग सघन और विस्तृत रूप से प्रत्येक किसान परिवार तक पहुंचना चाहते हैं। यह खेदजनक होगा यदि सघन कृषि विकास कार्यक्रम वाले जिले अनावर्तनीय और खर्चीले उपक्रम बने रहें और जिनसे केवल थोड़े से पाठ ही दूसरी जगह लागू किये जा सके। यह प्रतीत होता है कि सघन कृषि विस्तार कार्यक्रम का भविष्य उनके "किसानों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के आदर्श क्षेत्र" बनने में निहित है। वे पाँच जिले, जो सघन कृषि विकास कार्यक्रम के जिलों के रूप में हैं, शिक्षा सम्बन्धी केन्द्र नहीं होने चाहिए किन्तु उन राज्यों के अन्य भागों के लिए, जिनमें कि प्रत्येक जिला स्थित है, शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्र होना चाहिए।

अब तक हमने केवल चुनीदा केन्द्रों पर ही किसानों के प्रशिक्षण और प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण को संस्थागत प्रशिक्षण और संस्था विहीन प्रशिक्षण के रूप में सोचा है : क्या इस संकल्पना को नये

---

* कृषि अनुसंधान, विस्तार और प्रशिक्षण के कुछ पहलुओं पर राष्ट्रीय कृषि आयोग की आन्तरिम रिपोर्ट, नवम्बर १९७१ (पृष्ठ ५९)

मण्डी की कार्यशाला में
निर्मित धातु का
एक नया हल ।

नए बीज की फसल
को देखते हुए ।

क्षेत्र के किसानों द्वारा पौध संरक्षण सेवा ।

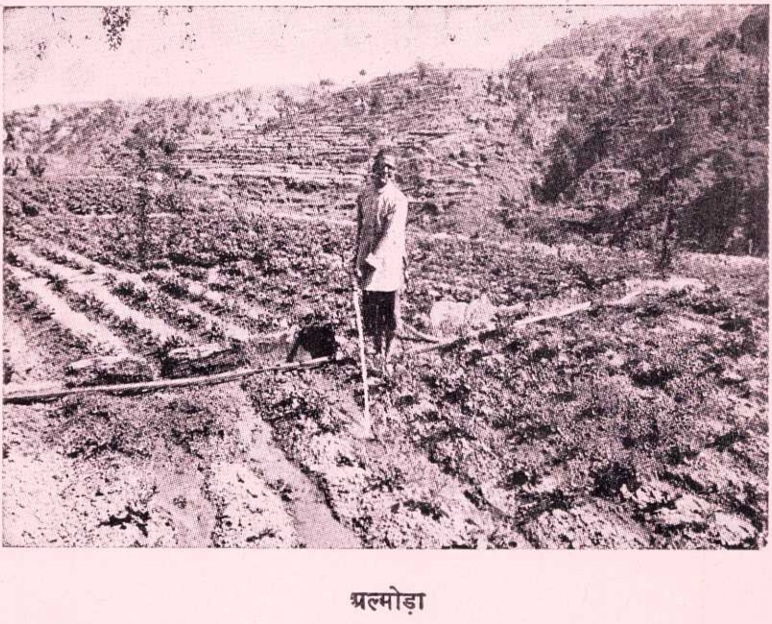

अलमोड़ा

आयाम देना और समूचे जिले या क्षेत्र को राज्य के दूसरे भागों के चुनींदा किसानों और विस्तार कार्यकर्त्ताओं एवं वैज्ञानिकों दोनों ही के लिए प्रशिक्षण जिले के रूप में मानना व्यावहारिक नहीं होगा ? इस अवस्था में इन जिलों पर भारी खर्च औचित्यपूर्ण हो सकेगा। किसानों और विस्तार कर्मचारियों के छोटे-छोटे दल विशिष्ट उपक्षेत्रों के साथ अल्प अवधियों के लिए संलग्न कर दिये जाने चाहिए। दलों को स्थानीय किसानों और क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं के काम में हाथ बंटाने के लिए तैयार रहना चाहिए। काम के बाद विचार विनिमय होना चाहिए और प्रश्नोत्तर का सत्र होना चाहिए। शायद सघनता के साथ विकास करती हुई कृषि स्थिति के बीच काम करने और उस पर विचार विनिमय करने से ज्यादा अच्छा क्षेत्रीय प्रशिक्षण और दूसरा कोई नहीं हो सकता।

---

* प्रसंगतः, यह यूनेस्को की उन क्षेत्रीय सेमीनारों की योजना के संशोधित रूप को भलीभांति अग्रसर कर सकता है जो मध्यपूर्व और संभवतः लेटिन अमरीका के कुछ देशों में उन्होंने आयोजित किए हैं। इन सेमीनारों में चुनींदा कृषि प्रशासकों, व्यावसायिक साक्षरता विशेषज्ञों और अन्य पर्यवेक्षक कर्मचारियों को व्यावसायिक साक्षरता और किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रम को अपनी आंखों से चलते देखने के लिए कुछ खेतों पर ले जाया जाता है। भारत में प्रारम्भतः ऐसी प्रायोजना बनाना व्यावहारिक नहीं पाया गया था क्योंकि इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए आन्तरिक आवश्यकतायें अधिक दबाव डालने वाली हैं और इसका एक कारण यह भी है कि प्रेक्षण और अध्ययन तब अधिक लाभदायक होंगे जब एक खास क्षेत्र से आया पूरा का पूरा दल अपने क्षेत्र में लौट कर जो कुछ उन्होंने खेत पर देखा था उनके परिणामों का परीक्षण करेगा। इसके अलावा क्षेत्रीय सेमीनार, तब अधिक प्रभावी हो सकेंगे जब वे केवल व्यावसायिक शिक्षा ही का प्रेक्षण न करें बल्कि कृषि विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को देखें।

प्रति १५०० एकड़ के लिए, एक क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता के रूप में, इस प्रकार की सुविधाओं का दुहराया जा सकना खर्चीला हो सकता है। फिर भी, ऐसी परिस्थिति शीघ्र ही उत्पन्न हो सकेगी जब किसान दलों में संगठित होकर क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं का, उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए, खर्च उठा सकने में समर्थ हो सकेंगे। यह मुख्यतः उन क्षेत्रों में व्यावहारिक हो सकेगा जिनमें फसलों की आमदनी के सहायक स्रोत आयोजित किए जा सकेंगे।

मूल सघन कृषि विकास कार्यक्रम की शुरुआत के चार वर्षों के भीतर ही भारत ने गेहूं के मामले में बाधा पार करके अपना मार्ग बना लिया था जिसने निखर कर वह रूप धारण कर लिया जिसे उचित रुप से ही गेहूं क्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है। संकर मक्का पहले ही से फैल रही थी और चावल की अधिक उपज देने वाली किस्में और चरी की फसलें (ज्वार, बाजरा) भी शुरु कर दी गई थीं। यह प्रशिक्षण की संकल्पना के विकास की चौथी प्रावस्था में प्रविष्ट हुआ था। प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद जिलों और क्षेत्रों में किसानों के बीच प्रोत्साहन देने के कार्य व्यापक रुप से उत्पन्न हुए जो ऊंची उपज की किस्मों के कार्यक्रमों के लिए उपयुक्त पाये गये। बाद को आरम्भ में १९६५-६६ में, केवल कुछ जिलों में एक उत्पादन कार्यक्रम शुरु किया गया। दो वर्षों के भीतर ही यह उन अधिकांश क्षेत्रों में फैल गया जिनमें उन फसल या फसलों के लिए जल प्रदाय सुनिश्चित था जिनके लिए अधिक उपज देने वाले बीज शुरु किए जाने वाले थे। लगभग देशव्यापी सघन उत्पादन कार्यक्रम के समर्थन के रूप में किसानों के प्रशिक्षण और शिक्षण की एक प्रायोजना १९६६-६७ में बनाई गई जो १०० जिलों के लिए बनाई गई थी।

किसानों की प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता प्रायोजना का ध्येय खेती में डाली जाने वाली अन्य पूरक वस्तुओं के संयोग से

प्रति एकड़ पैदावार और प्रति वर्ष फसलों की संख्या को बढ़ाना भी है। इस प्रायोजना के अंतर्गत, अधिक उपज देने वाली किस्मों के कार्यक्रम में, बड़े और छोटे किसानों की एक बहुत बड़ी संख्या को शामिल किया जाता है और उन्हें बीज, रासायनिक खाद, हानिकर जीवों को नष्ट करने की विधियों, औजारों, सिंचाई आदि जैसी उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के प्रयोग के लिए जरूरी जानकारी और कुशलता प्रदान की जाती है। इसे तेजी के साथ करना पड़ता है जिससे कि किसान बदलती हुई प्रविधियों के साथ चल सकें।

प्रशिक्षण प्रयास के मुख्य घटक किसानों के खेतों पर आयोजित दृश्य श्रव्य उपकरणों की सहायता से लगाये गये राष्ट्रीय प्रदर्शन और माध्यमिक प्रदर्शन, मौके पर चल प्रशिक्षण, किसानों की रूचि के विशिष्ट विषयों में प्रशिक्षण, किसानों के लिए रेडियो प्रसारण, किसानों के विचार विमर्श दल और व्यावसायिक साक्षरता है।

कार्यक्रम की संरचना समग्र रूप से किसान परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई है और किसान को औपचारिक संस्थाओं के वातावरण में लाने की अपेक्षा प्रशिक्षण को किसान के दरवाजे पर ले जाने का प्रयास किया जाता है। प्रशिक्षण के विभिन्न संघटक विभिन्न परिस्थितियों में किसानों की आवश्यकताओं के अनुकूल विविधता प्रदान करते हैं।

कार्यक्रम केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में, १९६६-६७ में, पांच जिलों में, शुरू किया गया था। ९९६७-६८ के वर्ष में २० अतिरिक्त जिले ले लिए गये थे। १९६८-६९ में २५, १९६९-७० में १०, १९७०-७१ में २० और इतनी ही संख्या १९७१-७२ में शामिल कर ली गई थी। इस प्रकार चौथी योजना अवधि के तीसरे वर्ष में १०० जिले इसके अन्तर्गत आ गये थे। शुरू में, नियत परिपूरकता के आधार पर कार्यक्रम के सभी तत्वों को

स्थापित करने में कुछ समय लगा था और अब लगभग ८० जिलों में प्रयास को संतोषजनक ढंग से चालू कर दिया गया समझा जा सकता है। मार्च १६७२ तक, लगभग ८५० हजार किसानों ने प्रायोजना के अधीन (चल दलों के) विशेष कर्मचारियों द्वारा आयोजित प्रशिक्षण सत्रों में भाग लिया था।

किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के बनने की अवस्था में राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया था और प्रायोजना की मोटी रूप रेखा पर विचार विनिमय किया गया था। बाद को चार क्षेत्रीय सलाहकार सभायें आयोजित की गई थीं जिनमें राज्य सरकारों और क्षेत्र के प्रमुख क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया था। इसके अतिरिक्त सहज क्रियान्वयन की सुविधा प्रदान करने हेतु कार्यक्रम में लगे कार्यकर्ताओं को कार्यक्रम के ध्येय और क्रिया विधियां स्पष्ट रूप से समझने के अवसर प्रदान करने के लिये समय समय पर राज्य स्तरीय अभिनवीकरण सभायें की गई थीं।

कार्यक्रम की योजना बनाने और क्रियान्वयन में समन्वय लाने के लिये राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर समन्वय समितियां स्थापित कर दी गई हैं। कुछ किसानों के प्रशिक्षण-जिलों में ऐसी समितियां खण्ड स्तर पर भी स्थापित की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर मंत्रालयीय समन्वय समिति साधारणतया तीन महीने में एक बार अपनी बैठक करती है और महत्वपूर्ण नीति सम्बन्धी मामलों पर विचार विमर्श करती है तथा कार्यक्रम को चलाने के लिए मोटे उपायों का निश्चय करती है। राज्य और जिला स्तरों पर स्थापित की गई समन्वय समितियां क्षेत्रीय स्तर पर कार्यक्रम के क्रियान्वयन में समग्र दिशानिर्देश प्रदान करती हैं।

नया प्रयास होने के कारण, जिसमें कि कई अभिकरण अन्तग्रंस्त हैं, विभिन्न स्तरों पर कार्यकर्त्ताओं का नवी प्रशिक्षण करना जरूरी हुआ है। आरम्भतः, किसानों के प्रशिक्षण जिले आगरे में भारत सरकार द्वारा प्रशिक्षकों का अभिनवीकरण प्रशिक्षण

आयोजित किया गया था। बाद में, इस प्रयास को फैला दिया गया। अब देश के तीन विस्तार शिक्षा संस्थानों पर क्षेत्र-कार्य-कर्त्ताओं का प्रशिक्षण चल रहा है। अब तक आठ प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किये जा चुके हैं और १२१ कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

राज्य स्तरीय सूचना अधिकारियों के लिये, दृश्य श्रव्य उपकरण पर काम करने का विशेष प्रशिक्षण आयोजित किया गया है। क्षेत्रीय स्तरों पर, खासतौर से चल दलों के सदस्यों के लिये कार्यशालायें भी लगाई जाती है। अब तक पांच ऐसे पाठ्यक्रम आयोजित किये जा चुके हैं जिनमें ८८ अधिकारियों ने भाग लिया है। आकाशवाणी के फार्म एण्ड होम यूनिट (खेत और घर एकक) द्वारा रेडियो सम्पर्क अधिकारियों के लिये एक सप्ताह का प्रशिक्षण भी आयोजित किया गया है। इनके अतिरिक्त किसानों के प्रशिक्षण केन्द्रों के कर्मचारी कुछ सफल किसानों के प्रशिक्षण जिलों में मौके पर गये है ताकि वे कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सफलता पूर्वक अपनाई गई प्रविधियों और विविध प्रशिक्षण पद्धतियों की अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें।

किसानों की शिक्षा के केन्द्र बिन्दु किसानों के खेतों पर आयोजित प्रदर्शन हैं। प्रत्येक जिले में विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केन्द्रों के विशेषज्ञों द्वारा किए गये लगभग १५ राष्ट्रीय (केन्द्र द्वारा आयोजित) प्रदर्शन हैं। ये बारी बारी से सभी महत्वपूर्ण फसलों के सम्बन्ध में प्रदर्शन करते हैं। किन्तु, क्योंकि शायद ये प्रदर्शन जिले की पूरी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ न हो सकें, इसलिये राज्य सरकारों, खेतों में डाली जाने वाली चीजों के विक्रेताओं और स्वयं सेवी संगठनों द्वारा लगाये जाने वाले अन्य वैज्ञानिक प्रदर्शन भी जिले में किसानों के प्रशिक्षण और शिक्षा के लिये उपयोगी हो सकते है। उस समय जब किसी महत्वपूर्ण फसल के सम्बन्ध में काम करने का प्रदर्शन किया जाता

है तब आस पास के पैदल या साईकिलों पर पहुंच सकने वाले किसान प्रदर्शन फार्मों पर "क्षेत्र-दिवसों" में भाग लेने पहुंच जाते है। किए जाने वाले क्षेत्र दिवस के कामों की तारीख, समय और स्थान तथा क्षेत्र समस्याओं पर परामर्श के लिए उपलब्ध विशेषज्ञ के बारे में रेडियो के द्वारा पहिले ही घोषणा कर दी जाती है। कई राज्य सरकारें भी विशिष्ट फसलों और कार्रवाहियों के बारे में कुछ प्रदर्शनों का आयोजन करती हैं। रासायनिक खादों की उन्नति और रासायनिक खादों के संतुलित प्रयोग के लिये प्रदर्शन प्रदान करने का एक नया कार्यक्रम हाल ही में हाथ में लिया गया है।

राष्ट्रीय प्रदर्शन कार्यक्रम के अधीन बहुफसली खेती बहुत सघनता के साथ प्रदर्शित की जा रही है। दो और तीन फसलों के लिये तदनुसार प्रति वर्ष न्यूनतम पैदावार लक्ष्य ६ और ११ टन हैक्टर है। सस्य विज्ञान, भू विज्ञान, पौधा संरक्षण और कृषि इंजीनियरी की विधाओं में प्रति जिले को चार विषय विशेषज्ञ प्रदान कर दिये गये हैं और ७५ जिलों में काम कर रहे हैं।

मार्च १९७२ तक, समस्त देश में राष्ट्रीय प्रदर्शनों की कुल संख्या ६,४०५ थी। १९७०-७१ के वर्ष में धान के प्रदर्शनों के ८४ प्रतिशत में, गेहूं के ८१ प्रतिशत में, मक्का के ७५ प्रतिशत में, बाजरा के ५५ प्रतिशत में और ज्वार की फसल के ५० प्रतिशत में, ४ टन प्रति हैक्टर के उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त हो गया था। समग्र रुप से दो और तीन फसलें रखने वाले प्रदर्शनों के ७० प्रतिशत ने तदनुसार ९ से ११ टन हैक्टर के उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त किया था।

आयोजित प्रदर्शनों और समर्थनकारी अनुवर्ती प्रयासों को जोड़ने के लिए प्रत्येक जिले में प्रशिक्षित और अनुभवी क्षेत्र कर्मचारियों के एक चलदल की व्यवस्था है। इस दल के पास अधिक उपज देने वाली किस्मों की फसलों पर 'क्षेत्र दिवस' और प्रशिक्षण कैम्प लगाने के लिए विशेष रूप से बनाई गई और पूरी तरह से

साज सामान से लैस श्रव्य दृश्य उपकरणों सहित एक प्रदर्शन मोटर गाड़ी होती है। स्थानीय और आस पास के गांवों के किसानों को इन प्रशिक्षण कैम्पों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है। चल दल, फिल्मों, फिल्म पट्टियों, फसल के नमूनों, खेती में डाली जाने वाली-वस्तुओं के नमूनों और दूसरे श्रव्य दृश्य साधनों के द्वारा अधिक पैदावार देने वाली किस्मों के कार्यक्रम पर सूचना का वितरण करने के लिए प्रबन्ध करते हैं। यह जिले के राष्ट्रीय प्रदर्शनों को तथा अन्य क्षेत्र प्रदर्शनों को आवश्यक विस्तार समर्थन प्रदान करता है। किसान महिलाओं के लिए आयोजित प्रदर्शन कैम्पों में, अधिक उपज वाली किस्मों के अनाजों, बीज चयन, खाद्यानों की घरेलू कोठियों आदि पर उपभोक्ता शिक्षण जैसे विषयों पर जोर दिया जाता है।

आधुनिक कृषि प्रविधिकी की द्रुत प्रगतियों ने कुछ विशिष्टीकृत क्षेत्रों में भी प्रशिक्षण की आवश्यकता को उजागर किया है। किसानों के दलों के संयोजकों को भी दल की गतिशीलता आदि में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि कालेजों, अनुसंधान केन्द्रों, किसानों के प्रशिक्षण केन्द्रों आदि द्वारा किये जा रहे विशिष्ट विषय वस्तु के पाठ्यक्रम द्वारा होती है, जहां पर विशेषज्ञों की तथा भौतिक साधनों की सुविधायें उपलब्ध हैं। ये पाठ्यक्रम अक्सर लघु अवधि के होते हैं। अब तक ४,००० लघु पाठ्यक्रम दिये जा चुके हैं।

दलगत विचार विमर्शों और रेडियो अनुश्रवणों के द्वारा नवीनतम खेत और घर सम्बन्धी विकास सूचना अपने सदस्यों को देने के लिए और उन्नत व्यवहारों को अपनाने में प्रोत्साहित करने के लिए गांवों में किसानों के विचार विमर्श दल संगठित किये जाते हैं जो एक सतत माध्यम के रूप में सेवा करते हैं। ये दल प्रदर्शनों के साथ निकटता से सम्बद्ध होते हैं और इसलिए कि दलों को सप्ताह में दो बार के प्रसारण सुनने की सुविधा मिल जाय, दलों को

कम कीमत के ट्रांजिस्टर तथा रेडियो सेट रियायती दरों पर दिये जाते हैं। अनुश्रवण दल एक ओर किसानों और दूसरी ओर विशेषज्ञों तथा आकाशवाणी के बीच दुतरफा संचार मार्ग स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। किसान सभा सहित किसानों के विचार विमर्श दलों की कुल संख्या १६,४४० हैं और अब तक सूचित की गई सदस्यता की संख्या ५०,६६० हैं। स्पष्टतः कुछ सभाएं निष्प्राण हो गई हैं।

किसानों के प्रशिक्षण और शिक्षा कार्यक्रम को आकाशवाणी सूचना सम्बन्धी समर्थन प्रदान करती है। हर प्रशिक्षण जिले में एक रेडियो सम्पर्क अधिकारी होता है जो संगत स्रोतों से अधिक उपज की किस्मों के कार्यक्रम के बारे में सूचना एकत्रित करने के लिए उत्तरदायी होता हैं। जिले के राष्ट्रीय प्रदर्शनों और अन्य कृषि सम्बन्धी क्रियाकलापों के कार्यक्रम को आकाशवाणी के खेत और घर एकांश द्वारा सप्ताह में नियत दिनों पर दो बार रेडियो प्रसारणों के माध्यम से समर्थन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त तुरन्त प्रकृति की विशेष सूचनायें जैसे महामारी के रूप में बीमारियों और हानिकर जीवों के फैलने की सूचना भी आवश्यकतानुसार प्रसारित की जाती है।

खाद्य एवं कृषि तथा शिक्षा मंत्रालयों के परामर्श से स्थापित २७ खेत और घर 'प्रसारण एकांश' नियमित रूप से 'खेत और घर' कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं। इन कार्यक्रमों का प्रभाव किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता प्रयासों पर पड़ता हैं। प्रत्येक केन्द्र शाम को आध घंटे का ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। इनमें से १२ केन्द्र लघु अवधि के विशेष प्रातः कालीन कार्यक्रम प्रसारित करते हैं और ८ केन्द्र ५ से १० मिनट के मध्यान्तर कालीन कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। ये सभी कार्यक्रम अधिकांशतः उत्पादन बढ़ाने में किसानों की सहायता करने के लिए बनाये गये सामयिक संकेतों और सूचनाओं से सम्बन्धित होंते हैं। इन प्रसारणों में

किसान महिलाओं को अपना जीवन-स्तर सुधारने में सहायता प्रदान करने के लिए प्ररचित घरेलू संघटक भी शामिल होते हैं।

ये कार्यक्रम वार्ताओं और भेंटवार्ताओं तथा विचार विमर्शों और तथ्य रूपकों के द्वारा शैक्षणिक सामग्री प्रेषित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये कार्यक्रम महत्वपूर्ण सूचनायें जैसे मौसम रिपोर्ट, बाजार समालोचना आदि भी प्रदान करते हैं। रेडियों प्रसारणों को समय समय पर खेतों में उठने वाली समस्याओं के साथ जोड़ने का भी एक प्रयास किया गया है।

जनवरी से दिसम्बर १९७१ की अवधि में, आकाशवाणी में, किसानों के प्रशिक्षण पर कुल ३०४४, व्यावसायिक साक्षरता पर ६९९, घरेलू समस्याओं पर ३१३५ और राष्ट्रीय प्रदर्शनों पर ५७७ कार्यक्रम प्रसारित किये थे। जनवरी से दिसम्बर १९७१ तक की इसी अवधि में व्यक्तिगत रूप से किसानों से प्राप्त पत्रों की संख्या ५७,६९१ थी। किसानों के विचार विमर्श दलों ने रेडियो केन्द्रों को १०,५७२ पत्र भेजे थे। किसानों द्वारा उठाये गये कुल १,४२,८५२ प्रश्नों के उत्तर प्रदान किये गये थे।

प्रसारणों की गुणावस्था सुधारने के लिए आकाशवाणी के 'खेत और घर' के कर्मचारियों तथा किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता और राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रायोजनाओं के कर्मचारियों के लिए संयुक्त रूप से कार्यशालाओं के आयोजन किये गये थे। अब तक राज्य स्तर पर पांच ऐसी कार्यशालाओं के आयोजन किये जा चुके हैं।

१९७१-७२ के लिए आकाशवाणी के 'खेत और घर' के ग्यारह एकांश और अधिक स्वीकृत हो चुके हैं जो जल्दी ही प्रसारण शुरू कर देंगे और १९७२-७३ में आठ एकांश और स्थापित करने का प्रस्ताव हैं। इस प्रकार चौथी योजना के अन्त तक खेत और घर एकांशों की कुल संख्या ४६ हो जायेगी। जब ये स्थापित हो जायेंगे तब वे किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता के

ये चुने गए सभी १०० जिलों को आवश्यक रेडियो समर्थन प्रदान करने में समर्थ हो जायेंगे।

कृषि में तीव्र गति के विकासों के सन्दर्भ में जहाँ बिस्तृत क्षेत्र अधिक उत्पादन वाली किस्मों और बहुफसली कार्यक्रमों के अधीन लाये जा रहे हैं, वहाँ प्रगतिशील किसान सभाओं को देखने के तथा चालू कार्यक्रमों और क्षेत्र समस्याओं पर साथी किसानों के साथ विचार विनिमय करने के इच्छुक थे। अन्य प्रगतिशील किसान सभाओं और कृषि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान केन्द्रों आदि जैसे कृषि संस्थानों को देखने जाने के अवसर भी कभी-कभी प्रायोजना के अधीन प्रदान किये जाते हैं।

कृषि के आधुनिकीकरण के संदर्भ में, उन्हें व्यावसायिक रूप से अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए किसानों के अशिक्षित दलों के बीच, कार्यक्रम के अभिन्न भाग के रूप में, व्यावसायिक साक्षरता का आयोजन किया गया है। साक्षरता की पहली पुस्तक में, जिसे इस प्रयास के लिए खासतौर से तैयार किया गया है, क्षेत्रीय भाषाओं में मूल सूचनायें हैं। ये सूचनायें अधिक पैदावार वाली किस्मों के कार्यक्रम में, आवश्यक कृषि सम्बन्धी खाद, बीज आदि जैसी वस्तुओं के बारे में, खेती की योजना बनाने के बारे में, खेती का हिसाब किताब रखने के बारे में, खाद बीज आदि कब और कितना तथा कैसे खेत में डाला गया इसकी सूचना एक कार्ड में चढ़ाने के बारे में और ऋण आदि के लिए मामूली अर्जी लिखने के बारे में होती है। इस प्रकार साक्षरता का प्रयास किसानों की आवश्यकताओं से सीधा जोड़ दिया गया है और यह उन्नत कृषि के लिए एक साधन का काम करता है।

यह कार्यक्रम ३ जिलों में १९६७-६८ में शुरू किया गया था और १९७१-७२ में उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ ८० जिलों में फैल गया है। लगभग ७०,००० किसानों को साक्षर बना दिया गया है और लगभग १००,००० किसान आजकल कार्यक्रम में भाग ले रहे

हैं। जब १९७१-७२ के २० नये जिले अपने आधार रेखीय सर्वेक्षण आदि पूरे कर लेने के बाद व्यावसायिक साक्षरता कक्षाएं चलाना शुरू कर देंगे, तब चालू नामांकन १,३६,००० तक बढ़ जाने की सम्भावना है। लाभ प्राप्त कर्त्ताओं की सालाना निकासी १९७२-७३ और १९७३-७४ के मध्य से क्रमश: १,५०,००० और १,८०,००० तक पहुंचने की आशा है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९६९-७४) का लक्ष्य १० लाख प्रौढ़ किसानों वाले १०० जिलों का है।

अब तक व्यावसायिक साक्षरता कक्षाओं के लगभग ३,५०० प्रशिक्षकों ने प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है। प्रशिक्षण के लिए उनके अपने-अपने जिला प्रशासकों द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्रीय निदेशालय से यदा-कदा सहायता के प्रबन्ध किये जाते हैं। प्रशिक्षण देने वालों को प्रार्थना करने पर चल दल के रूप में प्रशिक्षण केन्द्रों के लिए प्रतिनियुक्त किया जाता है। प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्रीय निदेशालय ने स्वयं पर्यवेक्षकों और जिला स्तरीय प्रायोजना अधिकारियों के लिए ९ अभिनवीकरण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किये हैं और इन दो श्रेणियों के लगभग २०० अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। फिर भी तब से प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है। नये प्रबन्धों के अधीन इस क्षेत्र में उनकी अपनी-अपनी प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक राज्य में ३ से ४ मूलस्तरीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण सेल स्थापित कर दिये गये हैं जबकि केन्द्रीय प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय शिक्षा के क्षेत्रीय कालेजों के साथ मिलकर प्रत्येक राज्य के केवल मूल स्तरीय प्रशिक्षार्थियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन करता है।

किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सूचना और संचार के समर्थन को सशक्त बनाने के लिए प्रायोजना के अधीन विभिन्न दृश्य श्रव्य उपस्कर प्राप्त हो गये हैं। ये उपस्कर राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों से सूचना समर्थन प्रदान करने के

लिए हैं। राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम द्वारा प्रदत्त उपस्करों के अतिरिक्त स्थानीय रूप से प्राप्त किये गये दृश्य श्रव्य सहायताओं की एक शृंखला भी खासतौर से जिला स्तर पर प्रदान कर दी गई है। राज्य सूचना एकांशों को स्लाइडें और फिल्मों की पट्टियाँ बनाने के उपस्कर दे दिये गये हैं। कुछ राज्य एकांशों ने स्लाइड बनाना शुरू भी कर दिया हैं। केन्द्र पर छोटी शिक्षा सम्बन्धी फिल्में बनाई जातो हैं और प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रयोग के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों को वितरित कर दी जाती हैं। कई जिले किसानों के विचार-विमर्श दलों द्वारा प्रयोग में लाने के लिए फोल्डर और इश्तहार निकाल रहे हैं। पाक्षिक या मासिक समाचार पत्र भी निकाले जा रहे हैं। दृश्य श्रव्य सहित प्रदर्शनी के फिल्म-वाहन फिल्मों की पट्टियाँ, खेतों में डाली जाने वाली चीजों के नमूने, इश्तहार, अनुरक्षित नमूने और हानिकर जीवों द्वारा प्रभावित फसलों के नमूने आदि लेकर चलते है और क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रदर्शन कार्यक्षेत्र में चक्कर लगाते है तथा विचार-विमर्श दलों की सभाओं में भी पहुंचते है।

किसानों तथा अन्य प्रारम्भिक उत्पादकों का उत्पादन-केन्द्रित प्रशिक्षण सूचित करता है कि प्रशिक्षण के ढांचे और कार्यक्रम का अभिगमन क्षेत्रीय न होकर प्रायोजनानुसार है। विशिष्ट परियोजना पद्धति के अनुसार वर्तमान विस्तार-कार्यजाल और प्रशिक्षण कर्मचारियों का समायोजन कैसे किया जाय? एक उत्तर तो यह प्रतीत होता है कि किसानों और प्रारम्भिक उत्पादकों के प्रशिक्षण के लिए जो नियत धन-राशि और साधन हैं वे फसल विकास की किसी भी योजना के बनाने और उसके क्रियान्वयन में सारभूत तत्व बनने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी खास जिले में गन्ना, कपास, दलहन, सोयाबीन, सब्जी, तिलहन आदि की खेती के लिए योजनायें हैं तो इनमें से प्रत्येक योजना के लिए जो वित्तीय व्यवस्था की गई है उसमें से एक निश्चित राशि किसानों के

प्रशिक्षण के लिए प्रदान की जानी चाहिए। जबकि यह व्यवस्था खासतौर से उस योजना के लिए होनी चहिए, समन्वय और क्रियान्बयन के लिए उत्तरदायित्व अधिक पैदावार की किस्मों के कार्यक्रम के लिए नियुक्त प्रशिक्षण कर्मचारियों पर होना चाहिए, जिन्हें योजना विशेष के लिए आवश्यक विशेषज्ञ कर्मचारियों द्वारा समर्थन प्रदान किया जाएगा। यह सुझाव कुछ उन बड़ी विकास योजनाओं पर भी लागू किया जा सकेगा जो बाद में शुरू की गई हैं, जैसे 'शुष्क कृषि' और 'छोटे किसानों का विकास'। यह सुझाव यह भी सूचित करता है कि इस मान्यता में संशोधन करना पड़ेगा कि किसी भी नई योजना के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम केवल विद्यमान कर्मचारियों द्वारा चलाया जा सकता है। यदि नई योजनाओं के लिए अतिरिक्त रासायनिक खाद, अतिरिक्त ऋण, अतिरिक्त कीटनाशकों आदि की व्यवस्था की जाती है तो यह आशा करना तर्क संगत प्रतीत होता हैं कि मानव निवेश अर्थात् प्रशिक्षण को भी उसी अनुपात में बढ़ाया जायगा।

अधिक पैदावार देने वाली किस्मों के क्षेत्र में भाग लेने वाले किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता की प्रायोजना को सीमान्त सहायता, राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम द्वारा दी जाती है। इसके कार्यकारी अभिकरणों के रूप में खाद्य और कृषि संगठन तथा यूनेस्को काम करते हैं। समूचे विश्व की दृष्टि से यह उन ग्यारह व्यावसायिक साक्षरता प्रायोजनाओं में से एक मानी जाती है, जिनको राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम की सहायता के लिए यूनेस्को ने आरम्भ किया था। भारतीय प्रायोजना अन्य से दो बातों में भिन्न है। यह राष्ट्रीय पैमाने की प्रायोजना हैं जिसके अन्तंगत इस बड़े देश के सभी जिलों की संख्या का एक तिहाई आ जाता है, जब कि अन्य अग्रगामी और प्रदर्शन प्रकार की छोटे क्षेत्र की प्रायोजनायें हैं। इसके अलावा जब भारतीय प्रायोजना में, किसानों का प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता ऊंची पैदावार देने वाली

किस्मों पर एक बहुत बड़े विकास कार्यक्रम को सशक्त करने के लिए और उसके काम आने के लिए है, तब दूसरे देशों में प्रायोजनायें इस प्रकार बनाई गई हैं कि उनमें विकास और व्यावसायिक साक्षरता तथा प्रशिक्षण दोनों ही के तत्वों का समावेश हो जाय। फलस्वरूप, यूनेस्को का झुकाव "व्यावसायिक साक्षरता" को एक ऐसा विकास सम्बन्धी कार्यक्रम प्रदर्शित करने की ओर रहा है जिसमें साक्षरता एक तत्व हैं। भारत में क्योंकि विकास सम्बन्धी कार्यक्रम पहले ही से चल रहा था इसलिए किसानों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक साक्षरता दोनों ही का स्पष्ट अस्तित्व है और फसल विकास कार्यक्रम के साथ उनके अविभाज्य सम्बन्ध की खोज में नई प्रविधियां और सिद्धांत विकसित किए जा रहें हैं।

जब अधिक उपज वाली किस्मों का कार्यक्रम भारतीय कृषि का रूप परिवर्तित कर रहा था तब कुछ अन्य घटनाएं घटित हुईं, जिन्होंने किसानों की शिक्षा के उपयुक्त रूप और प्रविधियों की तलाश को नई दिशाएं प्रदान कीं।

१९६६-६७ के सूखे ने भूमिगत जल के महत्व को देशव्यापी अनुभूति प्रदान की। यदि नये बीजों को सफल बनाना है तो मानसून पर निर्भरता को घटाना होगा। इसका उत्तर नलकूप थे। भारत के गांगेय प्रदेश में तथा मध्य और दक्षिण भारत की नदियों के प्रदेश में, जहां कहीं भी भूमिगत जल उपलब्ध था, वहां नलकूप के बरमे लगाने का काम हाथ में लिया गया है और ऋण की मांग बढ़ गई है। कई दानशील संगठन, जो लोगों को राहत बांटने में लगे हुए थे, सूखे के विरुद्ध किसानों को दीर्घकालीन संरक्षण प्रदान करने के काम की ओर मुड़ गये। किसानों को नलकूप लगाने में सहायता करना उस प्रकार का दीर्घकालीन उपाय प्रतीत हुआ। फलस्वरूप सरकारी और ग़ैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर तेजी से बरमे लगाने के काम हाथ में ले लिये गये और कई स्वयं सेवी संगठन अस्तित्व में आये जिन्हें विदेशों से दान द्वारा सहायता मिलती

थी। जल्दी ही यह मालूम हो गया है कि जब तक किसानों को जल के उचित प्रयोग और प्रबन्ध में तथा पम्पों के रख-रखाव में प्रशिक्षण नहीं दिया जाता तब तक नलकूप प्रदान करना काफी नहीं होगा। तब यह किसानों के प्रशिक्षण के विकास की पांचवीं अवस्था थी।

दो प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये थे। इन्दौर की मालवा जल विकास समिति उन चार स्वयं सेवी संस्थाओं में से एक थी जिन्होंने नलकूप के बरमे चलाने का कार्य-क्रम हाथ में लिया था। अपने प्रावधिक कर्मचारियों के गठन के लिए इसके उच्च सलाहकार ने स्थानीय गाँव के मिस्त्रियों और किसानों के लड़कों को भरती करने का निश्चय किया और उन्हें कक्षाओं में नहीं बल्कि उन जगहों पर, जहां बरमे चल रहे थे, प्रशिक्षित किया। इसी तरह नार्वे की तकनीकी सहायता से गठित बिहार के चम्पारन जिले की तुरकोलिया खण्ड प्रायोजना कार्या-न्वयन समिति ने भी स्थानीय किसानों के परिवारों के नवयुवकों का अपना प्राविधिक दल खड़ा किया। नल के लिए बरमे से खुदाई करने वालों का यह दल अब इतनी विशेष योग्यता प्राप्त कर गया है कि पूरे उत्तरी बिहार में व्यावसायिक एकांशों की अपेक्षा इसकी मांग अधिक है।

दूसरे प्रकार का प्रशिक्षण अर्थात् जल के प्रयोगों में और जल के प्रबन्ध में प्रशिक्षण, मूल रूप से नये सिंचित क्षेत्र के किसानों से सम्बन्धित है। यद्यपि भारत के भागों में विस्तृत नहरी सिंचाई एक शताब्दी पुरानी सुविधा है तथापि जल के सिलसिलेवार और वैज्ञानिक प्रयोगों का व्यवहार किसानों द्वारा भी नहीं किया गया। सिंचाई को मुख्यत: आकस्मिक सूखे के विरुद्ध संरक्षण के रूप में माना जाता था। सिंचाई के स्रोतों से जल के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोग में आते ही सघन और कई फसलों की मांग से उत्पन्न हुई थी क्योंकि

ये बीज लघु अवधि की फसलें देते थे। व्यक्तिगत या कई लोगों के मिले-जुले स्वामित्व वाले नलकूपों ने भी किसानों को जल के किफायती प्रयोग के बारे में सचेत बना दिया है। इन्दौर की जल विकास समिति ने, जिसका कि जिक्र पहले किया जा चुका है, अपना कार्यक्रम शुरू करने के तुरन्त बाद ही महसूस किया कि इस प्रकार का प्रशिक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसने मध्यप्रदेश की कड़ी चट्टान और कछारी भूमि में कई कुओं के बरमे मुख्यतः सिंचाई के प्रयोजनों के लिए लगाए थे। उसने मुख्यतः इस अर्थ में कड़ाई के साथ व्यापारिक आधार पर काम किया था कि अनुदानों को टाला जाता था और किसानों को रुपया जमा करना पड़ता था। इस क्षेत्र के डाकचा गांव का एक मामला अध्ययन यह जाहिर करता है कि कुछ मामलों में डाला गया बीज खराब किस्म का था और अधिकांश मामलों में कितनी बार और कितनी मात्रा में जल देना चाहिए इसकी पद्धति का अभाव था। जल की मात्रा और उसके प्रयोग के बारे में बिजली की ऊंची खपत से ही निष्कर्ष निकाला जा सकता था। विभाग द्वारा निर्धारित सींचने की मात्रा और संख्या के बारे में किसानों को कोई संकेत नहीं दिया गया था क्योंकि इस योजना में उस अवस्था पर किसानों के लिए प्रशिक्षण का कोई प्रावधान नहीं था। वास्तव में, कार्यक्रम शुरू करने के दो साल बाद कार्य भारी डच इन्जीनियर ने महसूस किया कि यदि बरमे के पानी के कार्यक्रम को सफल बनाना है तो किसानों की भूमि समतल करने, नालियां बनाने और कृषि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के पूरे विस्तार का सिलसिलेवार प्रशिक्षण देना जरूरी होगा।

पश्चिम तक में जल प्रबन्ध अपेक्षाकृत एक नया कौशल है। इसलिए भारत सरकार ने तीन जगहों में—उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ में, मैसूर के तुंगभद्रा कमाण्ड क्षेत्र में और हरियाणा के हिसार में राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम की अग्रगामी प्रायोजना से शुरू किया। भूमि को ठीक ढलान देकर समतल करना, धरातल को घटाने

के लिए नालियां बनाना, नालियों में जमीन की बर्बादी रोकने के लिए खेतों को फिर से व्यवस्थित करना, पानी के भाप बन कर उड़ जाने को कम करने की प्रविधियां, फसल की आवश्यकताओं और रासायनिक खाद की मात्रा के साथ सिंचाई की मात्रा और संख्या के बीच सम्बन्ध और नालियां बनाने के लिए आर्थिक सुविधायें—ये तथा कई अन्य विधियां, नये सिंचित क्षेत्रों में उनके खेतों पर विधियों का प्रयोग करते हुए, प्रदर्शनों द्वारा किसानों को सिखाई गई थीं। योजना, विकास और प्रशिक्षण को कदम से कदम मिलाकर चलना पड़ता है और यह कार्यक्रम किसी भी तरह आसान नहीं है क्योंकि अक्सर इन्हें समेकित करना पड़ता है। वास्तव में समेकन का, जिस का कि स्वयं कार्यक्रम के रूप में अक्सर विरोध किया जाता है, जल प्रबन्ध प्रायोजना में भाग लेने वाले किसानों द्वारा स्वागत किया जाता है और इसकी मांग की जाती है। इन तीन अग्र-गामी प्रायोजनाओं की सफलता के परिणाम स्वरूप कई अन्य क्षेत्रों में ऐसे ही कार्यक्रम चालू कर दिए गये हैं। भविष्य में, जल प्रबन्ध में प्रशिक्षण छोटी या बड़ी सभी सिंचाई प्रायोजनाओं का एक आवश्यक तत्व हो सकता है। फसल उगाने के तरीकों को तथा भण्डारण और विपणन को इसमें शामिल करने के लिए इसका क्षेत्र भी बढ़ाया जा सकता है। उसके लिए सिंचाई में लगे निवेश से अधिकतम लाभ प्राप्त करने की प्रेरणा काफी प्रबल है। इस प्रकार का मिला-जुला प्रशिक्षण कार्यक्रम अयाकुट (या कमाण्ड एरिया) विकास कार्यक्रम का भाग होगा। कोसी, नागार्जुन सागर, पूचम्पद, तुँगभद्रा और गंडक तथा कुछ अन्य कमाण्ड क्षेत्रों में क्षेत्र विकास कार्यक्रम शुरू कर दिए गये हैं। इन कार्यक्रमों के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा सारभूत रूप से वित्तीय व्यवस्था की जाती है जो विपणन, सड़क निर्माण और भण्डारन की लागत की भी पूर्ति करती है।

अन्ततः भारत में किसानों के प्रशिक्षण के विकास की छटी

अवस्था दो दबावों के परिणामस्वरूप आई। एक दबाव तो सामाजिक न्याय के आदर्श की क्रियान्विति पर सत्ताधारी दल द्वारा बल देने से उत्पन्न हुआ। कृषि की नई प्रविधियों से छोटे किसानों को लाभ मिलना चाहिए। इस प्रायोजन के लिये भूमि के पुर्नवितरण और भूमि सुधारों के पूरा हो जाने के अलावा छोटे किसानों को खेती में डाली जाने वाली चीजें और इन चीजों को प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करने का कौशल भी देने की आवश्यकता है। इसलिये चुनीदा क्षेत्रों में, छोटे किसानों के लिए जिन विशेष उपायों के करने का प्रस्ताव है उनका प्रशिक्षण एक अविभाज्य अंग है। दूसरा दबाव जो आंशिक रूप से पहले ही से सम्बन्धित था, आनुसंगिक कृषि अर्थात् पशु-पालन, मुर्गी-पालन, भेड़-प्रजनन, मत्स्य-पालन, खेतों पर पेड़ लगाना, सब्जियों और फलों की फसलें आदि आदि में विस्तार संचार और प्रशिक्षण के तरीकों को लागू करने के लिए था। ये सभी छोटे और सीमान्त किसान की, जिसकी फसलों वाली जमीन उसकी गुजर बसर के लिए काफी नहीं होतीं, अतिरिक्त आय के साधन हैं।

उन दोनों दबावों का एक परिणाम क्षेत्र-विकास के लिए तरज़ीह देना था। क्षेत्र-विकास का अर्थ है कुछ सामान्य समस्याओं वाले लोगों के एक निश्चित क्षेत्र का बहु-विध विकास। अन्ततः क्रियाकलापों का दृश्य-चित्र बड़ा हो सकता है। वह अपने में भूमि-विकास, जल-वितरण, नालियाँ, खेती की फसलों के विविध पक्ष, मुर्गी-पालन, पशु-प्रजनन, बगीचे आदि जैसी मदें समाविष्ट कर सकता है। इन अनेकों मदों में से पहले किन्हें आयोजित किया जाय यह बात क्षेत्र की समस्याओं पर निर्भर करती है। समस्याओं का पहचानना पहला काम होगा और फिर स्थानीय समस्याओं की शृंखला के पीछे कार्यक्रम के मदों की शृंखला आएगी।

इस प्रकार हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में (हिमालय में)

जर्मन सहायता से एक बहुमूल्य निचले इलाके की वैज्ञानिक ढंग से जल निकासी की प्रायोजना पहले शुरू की गई थी। इस निचले इलाके की भूमि पानी जमा हो जाने और क्षार से प्रभावित थी। वह अत्यन्त स्पष्ट समस्या थी। विशेषज्ञ दल ने, उस भूमि पर जिसका उद्धार किया जाना था, भूमिगत नालियों के जाल को बनाने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री (छत की टाइलों) को इस्तेमाल किया था। इस प्रकार उद्धरित भूमि अधिक उपज देने वाली और बहुफसलीय खेती के लिए प्रयोग में लाई गई। उन क्षेत्रों में काम में आने वाले परम्परागत औज़ार भूमि को शीघ्र और कुशल ढंग से तैयार करने के लिए तथा बहुफसलीय खेती के अन्य संचालनों के लिए अपर्याप्त पाये गये। इसलिए उन्नत औजार बनाने और उनकी मरम्मत करने के लिए वहां एक कार्यशाला स्थापित की गई। घाटी में भूमि का सुधार हो जाने से ऊपर की ज़मीन पर रहने वाले लोगों में कुछ करने की इच्छा ने जन्म लिया। यह पाया गया कि उनमें से बहुत से गायें रखते और दूध बेचते थे। पर ऊपरी क्षेत्र में बाजार सीमित था और लाभदायक नहीं था। प्रायोजना ने पहाड़ी पर दूध एकत्रित करने वाले केन्द्र कायम किये और इस बात का प्रबन्ध किया कि दूध की कीमत फौरन मौके पर अदा कर दी जाय। अधिक दूध उत्पादन करने के लिए जो प्रोत्साहन दिया गया था उससे अच्छी नस्ल के पशुओं की मांग आ गई। अत्यन्त आशाजनक संकर नस्ल उत्पन्न करने के लिए विदेशी पशु फ्रीज़न आयातित किये गये। एक संकर नस्ल के जानवर रखने से उसे खिलाने पिलाने और उसकी सेवा चाकरी करने का एक निश्चित समयानुसार कार्यक्रम बनाकर चलना पड़ता था। संकर नस्ल के जानवरों को सही ढंग से रखने-रखाने, स्थान पर ही उन्हें खिलाने पिलाने से उनका गोबर भी जैविक संरक्षित खाद बनाने के लिए अधिक उपलब्ध होता था। पशु आहार के लिए संरक्षित हरे चारे के गड्ढे बनाये गये। ढलानों पर चारागाह

सुधारे गये और इस प्रकार एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम का चक्र चलता गया।

नये और लाभकर कार्यक्रमों के एक के बाद दूसरे के द्रुत गति से आने की ऐसी अवस्था में प्रत्येक चरण पर किसानों का प्रशिक्षण एक आवश्यकता है। प्रारम्भ में नियोजित ढंग से इस पुस्तक के पहले के अध्यायों में बताये गये सभी तत्वों सहित संगठित प्रशिक्षण शुरू नहीं किया गया था। लेकिन व्यावहारिक रूप से प्रत्येक नये क्रियाकलाप में प्रदर्शन और किसानों के साथ मौखिक रूप से व्याख्या करना और विचार-विमर्श करना शामिल था। जैसे-जैसे कार्यक्रम की मदें बढ़ती गईं वैसे ही वैसे प्रशिक्षण की रूपरेखा अधिक तीव्रता के साथ स्पष्ट होती गई।

क्षेत्र-विकास-कार्यक्रम का एक दूसरा उदाहरण मध्यप्रदेश राज्य के दण्डकारण्य क्षेत्र में है। यह एक बड़ा वन प्रदेश है जिसमें ज्यादातर जनजाति के लोग रहते है। यहां बहुउद्देशीय विकास प्रायोजना प्रगति में है। इसके कुछ छोटे और सुगठित भाग में जंगल साफ कर दिया गया है और इस प्रकार उपलब्ध भूमि पर पश्चिम बंगाल से आए शरणार्थियों को बसा दिया गया है। ये शरणार्थी १९७१ की लड़ाई से बहुत पहले आए थे। इनमें से प्रत्येक को मकान और खेती के लिए जमीन दे दी गई है। इन सुगठित क्षेत्रों में से एक क्षेत्र, जो पखानजोर नामक स्थान के निकट है, कृषि विकास की भारत-जापान प्रायोजना के लिए चुना गया है। वहां तात्कालिक समस्या यह थी कि यद्यपि वहां मध्यम आकार के धरातलीय सिंचाई कार्य की व्यवस्था थी तथापि जल पर्याप्त रूप से इस्तेमाल नहीं किया जाता था, पैदावार और आमदनी बहुत कम थी और खेती के औजार काम के लिए काफी नहीं थे।

विकास के सभी पक्षों की खातेवार और क्षेत्रवार योजना ब्यौरों सहित बना ली गई है और इस बात का प्रबन्ध कर दिया गया है कि किसानों को उनके खुद के खेतों पर जापान से आये

कौशल विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाय तथा इन विशेषज्ञों की सहायता भारतीय विशेषज्ञों द्वारा की जाय। कृषि विकास के लिए क्षेत्र को दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया गया था। पहले एक प्राविधिक दल ने सघन सर्वेक्षण किया था और इन उपक्षेत्रों में से प्रत्येक की एक विस्तृत रूपरेखा तैयार कर ली थी। इसने ऊंची जमीन पर खेतो के लिए और उस खेती के लिए जिसके लिए जल उपलब्ध है, सिंचाई, चकबन्दी और विभिन्न प्रविधियों के प्रयोग के लिए विशेष प्रबन्ध करने की मांग की थी।

दण्डकारण्य कृषि प्रायोजना की रूपरेखा दो मूल सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित है। पहली परिस्थिति यह है कि यहां प्रायोजना के संयोजक उन नये बसे हुए ग्रामीणों से व्यवहार कर रहे हैं जो पूर्वी बंगाल से शरणार्थी के रूप में आये थे। ये लोग जीवन को करीब-करीब नये साहसिक प्रयास के रूप में स्वीकार करने की मन:स्थिति में थे। दूसरे शब्दों में, प्रशिक्षण के दृष्टि कोण से वे पहले ही से ग्रहण करने की मनःस्थिति में थे। दूसरी बात यह थी कि ये नए बसे हुए ग्रामीण चारों ओर से मध्यप्रदेश की जनजाति के लोगों से घिरे हुए थे। यह बात समझ में आने लायक है कि ये लोग आरम्भ में शंकालु थे और इनके लिए कार्यक्रम इस प्रकार बनाने पड़े थे कि वे न केवल उनके परम्परागत तौर तरीकों के अनुरूप ही हों वरन् उनके और नये बसने वालों के बीच सौमनस्य भी बढ़ा सकें। प्रायोजना तथा प्रशिक्षण में दोनों ही वर्गों के लोग शामिल हैं। दोनों वर्गो के अभिगम में पर्याप्त भिन्नता है। शरणार्थियों के मामले में उनके खेत सामान्यत: प्रदर्शन खेतों के रुप में माने जाते हैं और वे प्रत्येक चरण पर विकास की गतिविधियों में शामिल रहते हैं। जनजाति के किसानों को फसल प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों पर एक-एक बार तीन या चार दिनों के लिए प्रायोजना-केन्द्र पर बुलाया जाता है (जहां एक विकसित फार्म है)। वे वापिस जाकर अपने खेतों में

उन प्रविधियों का प्रयोग करते हैं जिन्हें उन्होंने सीखा है। इस तरह जो उन्हें सिखाया गया है उसका परीक्षण कर सकते हैं और उन्हें अपने खेतों को लम्बी अवधि के लिए नहीं छोड़ना पड़ता।

खेतों की फसलों को छोड़कर, कृषि सम्बन्धी क्रियाकलापों के बारे में आयोजित किये जा रहे क्षेत्र विकास का एक उदाहरण भारत के दक्षिण में अन्तरीप, कन्याकुमारी के पास मुत्तोम नामक गाँव के इर्द-गिर्द छोटे मछुआरों के लिए प्रायोजना है। ये मछुहारे केटामारान नामक बाबाआदम के ज़माने की नावों का प्रयोग करते हैं। ये नावें एक दूसरे से बंधे लकड़ी के तीन लट्ठों की बनी होती हैं। इस नाव को मछुहारों द्वारा कुशलतापूर्वक खेया जाता है। वे शायद शताब्दियों से ऐसा कर रहे हैं। इस प्रायोजना में, इन छोटे मछुहारों को, जो बहुत गरीब और अशिक्षित हैं, अपनी सदियों पुरानी केटामारान नावों पर नावों के इंजन लगाना सिखाया जाता है। यह प्रायोजना भारत के 'भूख से मुक्ति आन्दोलन' की सहायता से कोट्टार सामाजिक सेवा समिति द्वारा चलाई जा रही है। लगभग २०,००० केटामारान नौकाएं प्रयोग में हैं। इस प्रायोजना ने, जिसे बेल्जियम के एक दानशील संगठन से भी सहायता मिलती है, वहां से १०० नौका इंजन प्राप्त किये। प्रत्येक मछुहारा समुद्र में मछली पकड़ने जाते समय कार्यशाला से इन्जन लेता है, अपनी केटामारान नौका में लगाता है और मछली पकड़ने को अपनी यात्रा पूरी कर लेने पर कार्यशाला में वापिस लौटा देता है जहां उसकी सफाई, मरम्मत आदि होती है और उसे पुनः प्रयोग के लिए ठीक ठाक किया जाता है। कन्याकुमारी समुद्र-तट पर लोवस्टर्स और विविध प्रकार की बढ़िया मछलियां बहुतायत से उपलब्ध है। मछुहारों के केटामारान नौकाओं को इस आसान तरीके से यंत्रीकृत बना लेने से, वे बहुत अधिक मछलियां पकड़ सकते हैं, वे वायु और धारा के विपरीत यात्रा कर सकते हैं, वे हवा पर आश्रित नहीं हैं, और उनका यात्रा का समय भी घट

गया है क्योंकि उन्हें खेना नहीं पड़ता इसलिए वे इनमें उन केटा-मारनों की अपेक्षा, जिनमें इंजन नहीं लगे होते, अधिक मछलियां पकड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायोजना युवा मछुहारे को खासतौर से इंजनों की सफाई और खोल कर फिर से जोड़ने में भी प्रशिक्षण देती रही है। १०० मछुहारे प्रशिक्षित किये जा चुके हैं। इस सघन प्रशिक्षण के अलावा मछुहारों की साधारण सभा सप्ताह में एक बार इतवार के दिन बुलाई जाती है जिसमें नौका चालन और मछली पकड़ने के तरीकों के बारे में बताया जाता है। मछुहारों को उन्नत किस्म की गरारी भी दे दी गई है। नाइलोन का धागा उन्हें हानि लाभ रहित आधार पर बेचा जाता है। इन धागों से मछुहारों की स्त्रियां नायलोन के जाल बनाने में लगी रहती हैं। उन्हें नई सामग्री के प्रयोग का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस सबसे उनको अतिरिक्त आय होती है।

मंडी प्रायोजना की तरह ही यहां भी एक चीज से दूसरी चीज निकलती रही है। इस प्रकार, अब जब मछुहारे यंत्रीकृत केटामारान के अभ्यस्त हो गये तब उनका परिचय भारत निर्मित फ्रेन्च–डोरी प्रकार की आधुनिक नौकाओं से कराया गया है जिनमें डीजल इंजन लगे हैं। प्रारम्भिक प्रयोग सफल था और निरक्षर मछुहारों ने नई इकाइयों को बड़े चाव से अपना लिया है। क्योंकि इससे ज्यादा मछलियां पकड़ी जाती हैं इसलिए यह मछुहारों में खूब लोकप्रिय हो गया है। ऐसी प्राप्त की गई चार नौकाओं में से तीन, किराया-खरीद आधार पर तीन मछुहारों को किराये पर दे दी गई है। चौथी प्रयोग सम्बन्धी प्रायोजनाओं के लिए इस्तेमाल की जा रही है। आगे की अवस्था इसलिए उत्पन्न हुई कि मछुहारों ने गहरे समुद्र में और आगे जाने का अवसर दिये जाने की मांग उठाई ताकि वे मुत्तोम के लगभग ३५ मील दक्षिण वेजबैंक नामक अधिक मछली वाले क्षेत्र में मछली पकड़ने जा सकें क्योंकि केटामारान को एकदम त्याग देने का विचार नहीं है। इसलिए एक मनोरंजक

युक्ति का सहारा लिया गया। मत्स्य नौकाओं की सहायता से केटामारानों को वेजबैंक मत्स्य क्षेत्र तक खींचा जायेगा। इस प्रकार वे इंजन लगी अपनी खुद की केटामारानो का प्रयोग करने में समर्थ होंगे और बेहद मछलियों से भरे छिछले समुद्र का लाभ उठा सकेगें।

यद्यपि प्रौढ़ों के लिए साक्षरता प्रायोजना को अभी हाथ में लेना है, तथापि स्वयं मछुहारे अपने बच्चों के लिए कुछ करने के इच्छुक हैं। इसलिए प्रायोजना एक हाईस्कूल शुरू करेगी जो विभिन्न पाठ्यक्रम प्रदान करेगा। उस हाईस्कूल में नौवीं कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों को उनकी पाठ्य पुस्तकों की पढ़ाई के अतिरिक्त नौका चालन और नौका कौशल, व्यावहारिक और सैद्धांतिक मत्स्य प्रविधिकी, नौकाओं और जालों से मछली पकड़ना, व्यावहारिक इंजीनियरी, जाल बनाना आदि भी सिखाया जायेगा।

सब मिलाकर तटवर्ती गांवों के मछुहारों में सामान्य जागरण है। विशेष गाड़ियों की व्यवस्था के द्वारा विपणन की समस्या का समाधान करना है। एक बार बेजबैंक का दोहन शुरू हो गया तो शीत-गाड़ियां आवश्यक होंगी। इस प्रकार एक छोटा अज्ञात गांव एक उल्लेखनीय साहसिक प्रयास में लग गया है जिसमें सम्पूर्ण समुदाय जानबूझ कर या अनजाने में विविध शिक्षा प्रक्रियाओं में से गुजर रहा है।

सहकारी खाद्य उत्पादन की प्रगति का एक भारी भरकम उदाहरण, जो प्रशिक्षण तक पहुंच गया है, पश्चिमी भारत के एक भाग में देखा जा सकता है। गुजरात के केरा जिले में गत २५ बर्षों में दुग्ध क्षेत्र का विकास हुआ है। यह केरा जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ (सीमित), आनन्द (जो अमूल के रूप में अधिक विख्यात है) का काम है। यह संघ आरम्भतः जिले के दुग्ध उत्पादकों को उचित विपणन सुविधायें प्रदान करने के लिए संगठित किया गया था।

१९४८ में, संघ ने बम्बई दुग्ध योजना के लिए दूध को पेस्चुराइज करना शुरू किया। दो गांवों की सहकारी समितियों के मुट्ठीभर सदस्यों ने, जो प्रतिदिन २५० लिटर दूध उत्पन्न करते थे, यह काम शुरू किया था। एक सुनिश्चित बाजार ने इन दुग्ध उत्पादकों को बहुत प्रेरणा दी। १९४८ के अन्त तक सदस्य संख्या बढ़कर ४३८ हो गई और प्रतिदिन ५,००० लिटर दूध का कारोबार होने लगा। १९५३ तक दूध की मात्रा इतनी बढ़ गई कि उस समय बम्बई दुग्ध योजना अपने सीमित संयंत्र से शीतकाल में संघ द्वारा एकत्रित अतिरिक्त दुग्ध को खपाने में समर्थ नहीं थी। बिचौलियों को नीची दरों पर बिक्री से रोकने के लिए संघ ने एक संयंत्र लगाने का निश्चय किया जो अतिरिक्त दूध से मक्खन और दुग्ध चूर्ण जैसे दुग्ध उत्पादन बनाने की प्रक्रिया में काम आये। खाद्य कृषि संगठन और यूनीसेफ से सहायता आई और एक बढ़ी फैक्टरी स्थापित हो गई और १९५८ में उसका और विस्तार हुआ। और तो और, यहाँ संसार में पहली बार भैंस के दूध से चीज बनाया जाने लगा। बाल आहार भी तैयार किया जाने लगा और छिड़क कर सुखाया गया दुग्ध चूर्ण भी बनने लगा। उसके बाद विस्तार कितना आकस्मिक हुआ यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि १९७०-७१ में समितियों की संख्या ७०६ थी, सदस्यों की संख्या १,८०,००० थी। पूरे साल में इकट्ठे किये गये दूध की मात्रा ११,८२,२५,२७३ किलोग्राम थी और कुल बिक्री २७ करोड़ रुपये से अधिक की थी।

केरा जिले के किसानों के लिए सहकारिता का क्या अर्थ है, यह इस बात से प्रदर्शित होता है कि संघ के किसी भी गांव में दूध इकठ्ठा करने वाले केन्द्रों पर हर सुबह और शाम १०० से २०० लोगों की कतारें साधारणतया अपना दूध देने के लिए आती हैं। प्रशिक्षित कर्मचारी दूध लेते हैं, गुणवत्ता और वसाधारिता के लिए नमूने का परीक्षण करते हैं, सोसाइटी के कागजों और सदस्य को

पासबुक में इसकी लिखा-पढ़ी करते हैं, और उसको वसाधारिता की माप द्वारा निर्धारित गुणवत्ता पर परीक्षण पैमाने के आधार से मूल्य चुकाते हैं। सोसायटी में सबेरे लिए गये दूध की कीमत उसी शाम को अदा कर दी जाती है। मुझे एक दूध इकट्ठा करने वाले केन्द्र पर यह कारबार देखने का अवसर मिला था और मैं यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ था कि यहां पुरुष स्त्रियां और बच्चे दूध के रासायनिक परीक्षण की प्रविधि में, रेडी रेकनर के प्रयोग में, अपनी पासबुकों के द्वारा हिसाब-किताब के रखने में कैसे अपने आप शिक्षा प्राप्त करते हैं।

फिर भी, संघ अपने सदस्यों को अन्य तरीकों से भी प्रशिक्षण देता है। संघ का आनन्द में एक बहुत अच्छा कृत्रिम प्रजनन केन्द्र है और बहुत से गांवों में भी उपकेन्द्र हैं। दूध के ट्रकों द्वारा उपकेन्द्रों को वीर्य भेजा जाता है। संघ स्थानीय सोसाइटियों को प्रजनन कार्यक्रम में सहायता देता है। कृत्रिम प्रजनन उपकेन्द्र पर किसानों को कृत्रिम प्रजनन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के बारे में सीखने का अच्छा अवसर मिलता है। संघ ने समय-समय पर किसानों और उनकी पत्नियों को मुख्य केन्द्र पर आमंत्रित करके इस सुविधा को बड़ा दिया है। वहां उन्हें प्रयोगशालाओं में ले जाया जाता है। वे वीर्य का निकालना, परीक्षण करना और संरक्षण करना देखते हैं। वे जानवरों की शरीर रचना के चार्ट देखते हैं, पुरुषों और महिलाओं को प्रयोगशालाओं में अलग-अलग ले जाया जाता है। इस प्रकार परिवार नियोजन पर दो दलों में बातचीत करने का अत्युत्तम अवसर उत्पन्न होता है।

दुग्ध उत्पादक किसानों के प्रशिक्षण की एक दूसरी मद आहार सुधार है। संघ का अपना खुद का मिश्रण संयंत्र है। दूध इकट्ठा करने वाले केन्द्रों के पास ही स्थित दुकान पर पट्टियों के रूप में आहार सम्मिश्रण बेचे जाते हैं। यह उनके पशुओं के आहार कार्यक्रम के बारे में अनुदेश प्रदान करने के लिए अवसर प्रदान

करता है।

संघ पशुओं के रखरखाव पर अपने खुद के व्यावहारिक प्रदर्शन लगाता है और ग्रामीणों को छोटे पाठ्यक्रम प्रदान करता है। अनुदेश देने और शंकायें दूर करने के लिए संग्रह केन्द्रों के पास ग्रामीणों की सभा एक लोकप्रिय मंच है जो समय-समय पर होती है, जिसमें फिल्में दिखाई जाती हैं, प्रदर्शन किये जाते हैं और प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। ऐसी समितियां हैं जिन्होंने अपने लाभ में से अपने गांवों के लिए पुस्तकालय, स्कूल, सार्वजनिक जल प्रदाय, स्वास्थ्य केन्द्र, आदि की व्यवस्था की है। कुछ गांवों में स्थानीय उद्योगों तक को बढ़ाया गया है। इस प्रकार दूध इकट्ठा करने से शुरू करके बन गया है। सम्पूर्ण संगठन जिले के बहुप्रयोजनीय विकास का एक सम्बन्ध स्रोत इस प्रक्रिया में, किसानों और उनके परिवारों की एक सर्वतोमुखी शिक्षा की उपलब्धि प्राप्त कर ली गई है और युवा पीढ़ी की उचित शिक्षा के लिए आधारशिला रख दी गई है ताकि वे गांव छोड़कर शहरी जीवन के लिए भागने के बजाय आधुनिक तरीकों से समुदाय की अर्थ व्यवस्था में अंशदान कर सकें।

एक दूसरे प्रकार का क्षेत्र विकास जो रूप धारण करना शुरू कर रहा है और जिसमें नए कौशलों का प्रशिक्षण निर्णायक है, वह शुष्क कृषि के क्षेत्रों में है। इन क्षेत्रों में क्योंकि वर्षा बहुत कम होती है और भूमिगत जल आसानी से उपलब्ध नहीं, इसलिए सीमित जल के अधिकतम उपयोग के लिए और आर्द्रता आदि को सुरक्षित रखने के लिए नये प्रकार की प्रविधियां अपनानी पड़ती हैं। इन क्षेत्रों में छोटे खेत अधिक होते हैं। भारत सरकार ने शुष्क-कृषि-प्रविधि में अनुसंधान के लिए और विकास के लिए भी, जिसके बारे में 'अनुसंधान की भूमिका' वाले अध्याय में जिक्र किया गया है, एक राष्ट्र व्यापी कार्यक्रम हाथ में लिया है। किन्तु हाल ही में, पाण्डेचेरी के आसपास के तीस गांवों में एक छोटी प्रायोजना शुरू की गई है। वह गैर सरकारी संस्था, जिसने इसे हाथ में लिया है, श्री

अरबिन्द आश्रम सोसायटी है जिसकी कि अरोविले नामक एक नई बस्ती बनाने की एक बड़ी प्रायोजना है। इस सोसाइटी के उस क्षेत्र में कुछ समय से अपने खुद के तीन फार्म थे। इस प्रायोजना के लिए उन्हें नाभिक फार्मों के रूप में समझा जाता है। प्रत्येक फार्म के चारों ओर एक से तीन मील की परिधि में १० गांव चुने गये थे। इन गांवों के लिए उन्नत मशीनरी और औजार प्राप्त किये गए थे और विकास तथा प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम बनाया गया था। मशीनरी का प्रयोग न केवल नाभिकीय फार्मों पर ही होता था वरन् प्रदर्शनों के लिए तथा किसानों को किराये पर देने के लिए भी वे प्रयोग में लाई जाती थी। कार्यक्रम शुरू करने से पहले एक सर्वेक्षण भी किया गया था। शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम, जो रिपोर्ट भेजते समय एक साल से प्रगतिपूर्वक चल रहा था, शुरू ही से खूब सोच-विचार कर आयोजित किया गया था। पहले नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम हुआ, जिसके अधीन १० गांवों के प्रत्येक वर्ग से ३० किसान चुने गये थे। उन्होंने फार्म पर सघन पाठ्यक्रम में भाग लिया था। उनमें से अधिकांश साक्षर थे। आधा दिन प्रयोगात्मक कार्य के लिए दिया जाता था और आधे दिन प्रवीणों और विशेषज्ञों द्वारा वार्तायें तथा विचार विनिमय होता था। इन पाठ्यक्रमों के उद्घाटन दिवस पर श्रोताओं की उपस्थिति में, जिन में अन्य किसान भी शामिल थे, विशेष प्रदर्शनों का प्रबन्ध किया गया था।

प्रशिक्षण कार्यक्रम में दूसरा तत्व क्षेत्र प्रदर्शनों का था। किसानों के अपने खेतों पर ३४ प्रदर्शन आलेख रखे गये। और १०५ क्षेत्र दिवस आयोजित किये गये थे, जिन पर स्थानीय किसान भी आमंत्रित किये गये थे। कुल मिलाकर ५००० से ऊपर किसानों ने इन क्षेत्र दिवसों में भाग लिया था।

तीसरे फार्मों पर प्रशिक्षण पा चुकने वाले १८१ नेताओं में से ३० प्रशिक्षार्थियों को विचार विमर्श दलों के संयोजक बनने के

लिए चुना गया था। किसानों के गठित ये तीस दल अक्सर रेडियो कार्यक्रम सुनने के लिए और विचार-विमर्शों में भाग लेने के लिए इकट्ठे होते रहे हैं। अन्त में, कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर आदर्श फार्मों के लिए कई अध्ययन यात्राओं का प्रबन्ध किया गया था। लौटने पर भाग लेने वालों ने लेख लिखे थे और पुरस्कार दिये गये थे।

रिपोर्टों से यह प्रतीत होता है कि प्रायोजना के गांवों में मूंगफली की पैदावारों का प्रतिशत ३७ से बढ़कर १७८ हो गया था। दूसरी फसलों के सम्बन्ध में परिणामों पर निगाह रखी जा रही है। अधिकतर शुष्क कृषि के क्षेत्र के इन छोटे किसानों में पहली बार जागरण आया था। बैंकों के प्रतिनिधि उनके पास आते हैं और उनसे ऋण के बारे में बातचीत करते हैं। कृषि प्रवीण उनके साथ नई प्रविधियों के बारे में चर्चा करते हैं। वे एक दूसरे युग में प्रवेश करते हुए प्रतीत होते हैं।

ऋण-आधारित क्षेत्र विकास का काम ६७ जिलों में सरकार का मुख्य कार्यक्रम है। इसमें भी कुछ ग़ैर सरकारी संस्थाओं द्वारा थोड़ी सी जगहों में प्रयास किये गये हैं। ऐसी एक संस्था वैशाली संघ है। यह उत्तर बिहार के वैशाली गांव में एक सांस्कृतिक संगठन है। इसने एक नई संस्था बनाने की पहल की है जिसका नाम वैशाली क्षेत्र लघु कृषक संघ है। यह गाँव एक उपजाऊ क्षेत्र में स्थित है। लेकिन ९० प्रतिशत किसानों की खेती की जमीनें एक एकड़ प्रति किसान से कम है। यह एक एकड़ भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटा हुआ है। अधिकांश भूमि ऋण दाताओं के यहां रहन है। सहकारी समिति एक बुरा नाम है, क्योंकि इस क्षेत्र में सहकारिता आन्दोलन का उनका पिछला अनुभव कटु रहा है। 'वास्फा' (जैसा कि इसे छोटे में कहते हैं) ने प्रति २५ से ३० एकड़ ज़मीन के लिए किसानों के दल बनाना शुरू किया था। इस २५ से ३० एकड़ जमीन में अलग-अलग किसानों के खेत होते थे लेकिन

एक दूसरे से लगे होते थे। प्रत्येक ऐसे दल की सिंचाई का काम एक साझे के नलकूप द्वारा होगा। ३४ छोटे किसानों के दल बनाये जा चुके हैं। समूचा संघ, जिसके कि दल घटक हैं, आगे क्षेत्रीय संघों में विभाजित है। प्रत्येक उपक्षेत्रीय संघ में तीन या चार किसानों के दल हैं। इस क्षेत्रीय संघ के पास एक मिस्त्री और एक कृषि विशेषज्ञ तथा एक साझे का गोदाम होता है। १४ साझे के नलकूपों के बरमे लग चुके हैं और १४०० एकड़ जमीन की सिंचाई हो रही है। प्रत्येक दल की देनदारी सम्मिलित है और अधिकांश काम न्याय के आधार पर आयोजित किया गया है। भारत की 'भूख से मुक्ति' आन्दोलन समिति ने प्रारम्भिक धन दिया था। यह देखना मनोरंजक है कि छोटे किसानों द्वारा लिया गया ऋण जल्दी ही पटा दिया जाता है। छोटे किसानों की समस्याओं का समाधान खोजने के लिए यह अत्यन्त सघन और साहसपूर्ण प्रयोग है। किसी निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए अभी बहुत कम समय हुआ है। लेकिन यह स्पष्ट है कि कार्यक्रम का प्रत्येक चरण किसानों के लिए शिक्षा का चरण भी रहा है। यद्यपि अभी तक सिलसिलेवार शिक्षा की योजना शुरू नहीं की गई है तथापि हो सकता है कि विकास की प्रक्रिया में शिक्षा के कुछ नये तरीके निकलें।

इस अध्याय में दिये गये उदाहरण केवल निर्देशनात्मक है। भारत में कृषि सम्बन्धी भू-दृष्य एक विक्षुब्धता का चित्र प्रस्तुत करता है। कई सरकारी और गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा देश के विभिन्न भागों में प्रयोग किए जा रहे है। फिर भी इस निदर्शनात्मक सर्वेक्षण से यह प्रतीत होता है कि ऐसी कुछ परिस्थितियाँ हैं जो किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए दूसरों की अपेक्षा अधिक अनुकूल हैं। विस्तार शिक्षा की पुरानी संकल्पना यह थी कि किसानों के प्रशिक्षण और सूचना के लिये कर्मचारी और सुविधायें क्षेत्र भर में समान आधार पर एक जैसी ही प्रदान को

जाएं और विस्तार तथा शिक्षा से यह आशा की जाय कि वह अभिवृति की ऐसी काया पलट दे कि उससे किसान प्रगतिशील कृषि के सन्देश को और अधिक ग्रहण करे। यह आशा की गई थी कि इस तरीके से किसान का रुझान नई मशीनों के प्रयोग की ओर अधिक होगा, वह रासायनिक खादों तथा अन्य वस्तुओं को खेत में डालने के बारे में सुधार करेगा और उन्नत नस्ल के पशुओं आदि को स्वीकार करेगा। किन्तु अधिकतर भारतीय अनुभव ने कम से कम यह तो दिखा दिया है कि जहां इस 'जमीन को नर्म करने' की प्रक्रिया के लिये कुछ कहने को है वहाँ यह सोचना गलत होगा कि किसानों का प्रशिक्षण अपने आप क्रान्ति और आधुनिकीकरण ले आयेगा। प्रभावी होने के लिए कुछ परिस्थितियों में और कुछ समस्याओं के समाधान के लिए विधिवत किसानों के प्रशिक्षण को हाथ में लेना पड़ेगा। भारतीय अनुभव के संदर्भ में मैं इन परिस्थितियों की पहचान निम्न प्रकार से करूंगा :

१. यदि कृषि वैज्ञानिकों को ऐसी कोई अभूतपूर्व उपलब्धि हो जाती है जिससे किसानों की पैदावार और आमदनी में काफी बढ़ोतरी हो तो प्रशिक्षण और शिक्षा कार्यक्रम किसानों को उस प्रविधि के इस्तेमाल करने के लिए तैयार कर सकेगा। ऐसी परिस्थिति में किसानों की शिक्षा उचित और प्रभावी होगी।
२. उन क्षेत्रों में, जहां नदी घाटी प्रायोजनाओं ने कई जमीनें सिंचाई के अधीन की है, वहां नये तौर से उपलब्ध पानी से अधिक तम पैदावार प्राप्त करने के कौशल को सीखने के लिए किसान न केवल तैयार ही होंगे वरन् उत्सुक भी होंगे।
३. जहाँ कहीं भूमि सुधार ईमानदारी से और विस्तृत रूप से किए गए हैं और वे खेतिहर जिनके पास पहले कोई जमीन नहीं थी अब खेतों के मालिक बन गए हैं, वहाँ उन्हें अपनी जमीन से ऊंची पैदावार पाने के लिए तरीकों को जानने की

जरूरत है। यह लाभदायक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए अत्युत्तम अवसर प्रदान करेगा।

४. साधारण समस्याओं वाले संगठित क्षेत्र में उस विकास कार्यक्रम को, जो विभिन्न समस्याओं के समाधान को एक मिली जुली प्रक्रिया में समेकित कर देता है, किसानों के शिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता होगी। यह इसलिए होगी कि ऐसे विकास की नई मदों की प्रगति दूसरी मदों की प्रगति की गति पर निर्भर करेगी। इस प्रकार से समय के साथ तालमेल बैठाने के लिए सावधान प्रशिक्षण की जरूरत है।

५. जहाँ कहीं भूमि का नया नया उद्धार हुआ है, या आबादी के स्थानान्तरण के कारण लोगों को नया नया बसाया गया है, वहाँ उत्पादन और जीवन पद्धति दोनों ही में प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए सर्वोत्तम अवसर और आवश्यकता है।

६. यदि किसी क्षेत्र विशेष में–चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा–खेती में डाली जाने वाली या उसके प्रयोग में आने वाली एक या अधिक चीजों से सम्बन्धित अभिकरण उन चीजों के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहता है तब भी परिस्थितियाँ किसी शिक्षण कार्यक्रम के शुरू करने के लिए अनुकूल होंगी। इस प्रकार देहाती क्षेत्रों में अपने ऋणों को बढ़ाने की इच्छा रखने वाले बैंक, विस्तृततर बाजार की इच्छा रखने वाले ट्रैक्टर या मशीनों के निर्माता, रासायनिक खाद या कीट-नाशकों के निर्माता, जो अपनी व्यापक बिक्री को नियोजित करना चाहते हैं, ये सभी वे अभिकरण हैं जो किसानों के लिए सावधानी पूर्वक बनाई गई प्रशिक्षण सुविधाओं की शृंखला से लाभ उठायेंगे।

इसलिये, शिक्षा देने वालों को यह धारणा हटा देने का समय आ गया है कि प्रौढ़ शिक्षा उन के लिए बना बनाया वरदान है। यह मुख्य रुप से और आवश्यक रुप से उनके लिए यथा संभव सुगठित और प्रबन्ध कर सकने योग्य क्षेत्रों में स्पष्ट और निश्चित आर्थिक लक्ष्य प्रदान करने की एक सेवा है। □

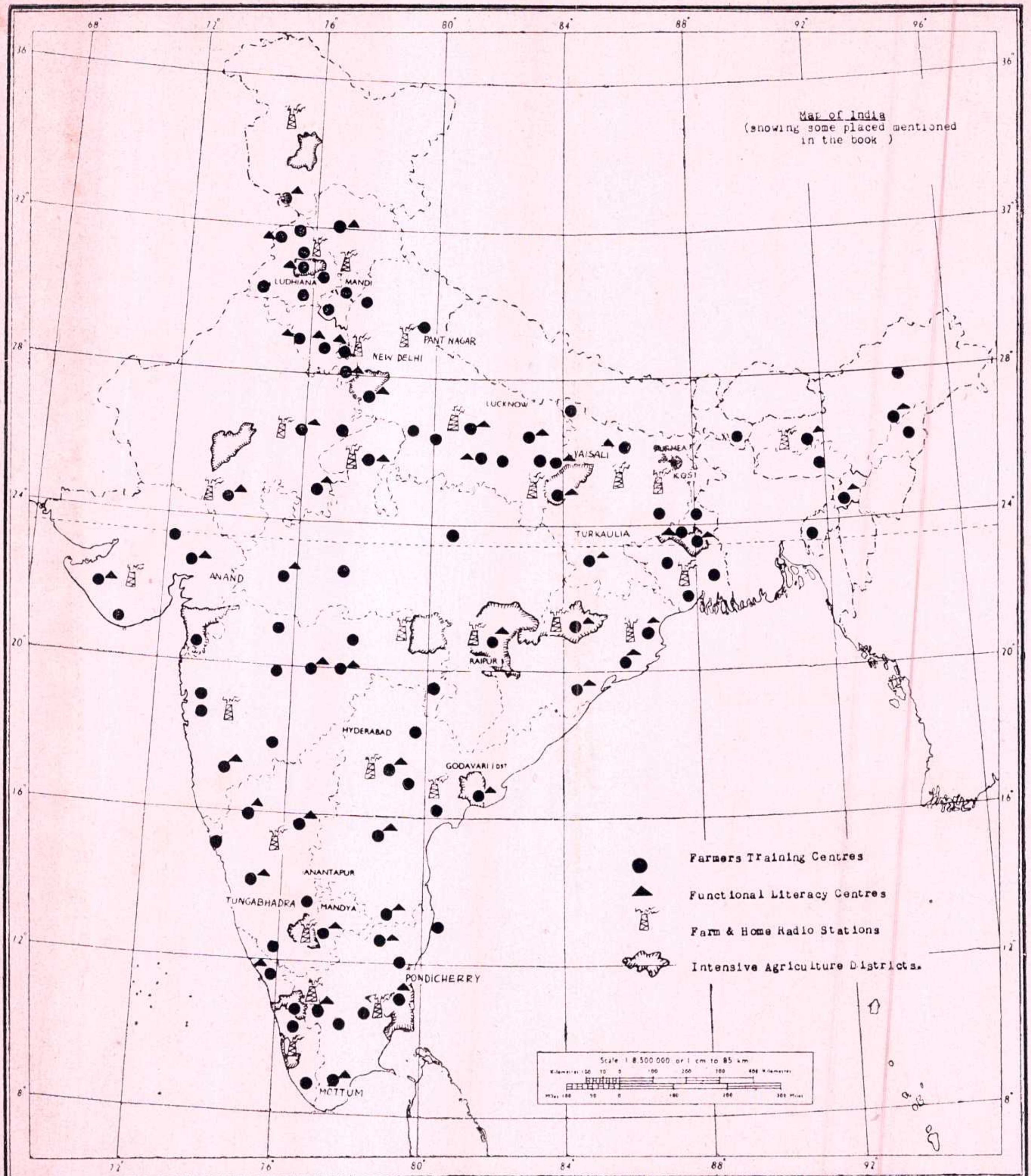

Reg. No. 7814 HD '64 5000 '65 5000 '67

Printed at the Survey of India Offices (103 P.Z.O. Printing Group)

Price Seventy Five Paise

© GOVERNMENT OF INDIA COPYRIGHT, 1967.

पुस्तक और लेखक के विषय में

अब तक किसी ने भी एक ओर उन्नतशील कृषि और दूसरी ओर प्रौढ़ शिक्षा की योजना बनाने, संयोजना करने और उसे देने के लिए उत्तरदायी लोगों के बीच की दुख:दायी खाई भरने का काम नहीं किया। यह पुस्तक पिछड़े और विकासशील समाज के सन्दर्भ में यह कार्य करती है।

यह योजनाओं के व्यक्तिगत अन्वीक्षण, कृषि विकास तथा विस्तार कार्यक्रमों की योजना निर्माण, उनके संयोजन तथा क्षेत्र के लोगों के साथ विचार-विमर्श के अनुभवों पर आधारित है।

यह पुस्तक एक लोकप्रिय और सीधी विधि में लिखी गई सचित्र पुस्तक है। यह प्रौढ़ शिक्षकों, विस्तार कार्यकर्त्ताओं, विकास प्रक्रिया विशेषज्ञों, शिक्षा नीति निर्धारिकों, किसानों की लागत तथा लाभ जानने वाले व्यक्तियों तथा ग्रामीण प्रौढ़ों के प्रशिक्षण कार्यों में संलग्न व्यक्तियों के लिए समान रुचि की होगी।

इसके लेखक श्री जगदीश चन्द्र माथुर १० साल तक यूनेस्को की अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयेतर शिक्षा समिति के सदस्य रहे हैं। इनका पूर्व इतिहास बड़ा विचित्र है। वे एक राज्य में शिक्षासचिव रह चुके हैं, आकाशवाणी के महानिदेशक रह चुके हैं तथा कृषि मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव रह चुके हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ० ए० ओ०) नामक संस्था के साथ उनके घनिष्ट सम्बन्ध रहे हैं। वे भारतीय प्रौढ़-शिक्षा संघ के उप-प्रधान भी रहे हैं। "अलादीन के नए चिराग" नामक उनकी पुस्तक प्रौढ़-शिक्षा पर जन-संचार के प्रभाव का गहन अध्ययन है। वे भारतीय प्रौढ़-शिक्षा संघ द्वारा प्रकाशित इंगलिश जरनल आफ एडल्ट एजुकेशन के अवैतनिक सम्पादक हैं। भारतीय लोक कला, लोकमंच, लोक नाटक, लोक संगीत इत्यादि में उनकी रुचि है और हिन्दी जगत के एक विख्यात है। —लेखक